श्री गुरुजी-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक

डॉ. कृष्ण कुमार बवेजा

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली-110055

www.golwalkarguruji.org

श्री गुरुजी-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक : डॉ. कृष्ण कुमार बवेजा

प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, झण्डेवाला,
नई दिल्ली-110055
दूरभाष : 011&23514672

प्रथम संस्करण : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा वि.स. 2061 (21 मार्च, 2004)

© सुरुचि प्रकाशन

मूल्य : तीस रुपए

अक्षर संयोजन : मातृभूमि, ए-31, फ्लैटिड फैक्ट्रीज़ कॉम्पलेक्स,
झण्डेवाला, नई दिल्ली-110055
दूरभाष : 23616048] 23619068

आवरण : बलराज, नई दिल्ली

मुद्रक : स्पीडोग्राफिक
62, साउथ अनारकली एक्स., नई
दिल्ली-110051

प्राक्कथन

परम पूजनीय श्री गुरुजी दिनांक 13 अगस्त, 1939 को रक्षाबन्धन पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह नियुक्त हुए। दिनांक 3 जुलाई, 1940 को उन्होंने सरसंघचालक का दायित्व ग्रहण किया। मार्च 1973 तक संघकार्य के लिए उनका देशव्यापी प्रवास सतत होता रहा। इस कालखण्ड में राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं से आत्मीय संबंध स्थापित करते हुए, उन्होंने देशहित के लिए उनको उद्युक्त किया। श्री गुरुजी द्वारा सम्पन्न महान् कार्य का अनन्यसाधारण स्वरूप होने के कारण उसके ठीक-ठीक आकलन व यथार्थ मूल्यमापन में न्यूनता रह जाना स्वाभाविक है।

श्री गुरुजी ने अपने परिश्रम और व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से, पूजनीय बालासाहब देवरस के शब्दों में, 'देवदुर्लभ कार्यकर्ता' निर्मित किये और उन्हें निरन्तर सक्रिय बनाए रखा। शनैः शनैः उचित दिशा में समाज में वैचारिक परिवर्तन लाने हेतु उन्हें आजीवन प्रयत्न करने पड़े। फलतः संघ कार्य वर्धिष्णु और जयिष्णु होता गया तथा संघ आज राष्ट्रजागरण का केन्द्र-बिन्दु बन गया है।

प्रस्तुत कृति में अभी तक प्रकाशित तथा अप्रकाशित प्रसंगों के सन्दर्भयुक्त अधिष्ठान पर श्री गुरुजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के दोनों पहलुओं पर अंगुलिनिर्देश करने का प्रयत्न किया गया है। परिणामस्वरूप कई नवीन तत्वों तथा तथ्यों का प्रकटीकरण भी हुआ है।

माननीय हो.वे.शेषाद्रि जी की प्रेरणा तथा उनके एवं माननीय मा. गो. वैद्य (बाबूराव वैद्य) के मार्गदर्शन के कारण ही यह सम्भव हो सका है। मैं अन्य सभी ऐसे महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग एवं प्रोत्साहन इस पुस्तक की रचना एवं प्रकाशन में प्राप्त हुआ है। पाठकों से अनुरोध है कि वे अपने रचनात्मक सुझाव अवश्य प्रेषित करते रहें।

- कृष्ण कुमार बवेजा

दो शब्द ....

प.पू.श्री गुरुजी का व्यक्तित्व 'कोहिनूर' जैसा शतमुखी तेज बिखेरने वाला था। उस हीरे पर जिस रंग की रश्मि पड़ती है, उसी को सौ गुना तेज से वह प्रतिभासित करता है। बस, इसी प्रकार पू. श्री गुरुजी का भी व्यक्तित्व था। उनके सामने जिस प्रकार की परिस्थिति उपस्थित होती थी, उसे अनन्त मुख से वह प्रकाशित करता एवं उस परिस्थिति के अंतर-बाह्य स्वरुप को भी सभी दृष्टि से उजागर करता; तद्नुसार उसे पार करने के उपाय भी वे आलोकित करते और उस दिशा में स्वयं सबसे आगे कदम बढ़ाते थे। दूसरों को उपदेश से नहीं अपितु स्वयं के उदाहरण से उसी दिशा में चलने के लिए उत्प्रेरित करते थे।

उनकी यह अनेक-मुखी गुण-संपदा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक बनने के पहले से ही विपुल मात्रा में प्रकट होती रही। नागपुर में अपने दृष्टिहीन मित्र श्री वामनराव वाडेगांवकर की उन्होंने अनेक प्रकार की विकट परिस्थितियों में भी परिचर्या की। उनके द्वारा पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी की हुई सेवा-शुश्रुषा ने तो उस महान कर्मयोगी को भी अभिभूत कर दिया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के नाते रहते हुए वहाँ के अन्यान्य विषयों के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए वे स्वयं अनेकों बार रात भर जागते हुए कष्ट उठाते रहे। वैसे ही उनकी असाधारण स्मरण-शक्ति, बुद्धि की कुशाग्रता बाल्यावस्था से ही आसपास के लोगों की नज़रों में चमकने लगी थी। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' के प्रतिबिम्ब के रुप में थी उनकी मनोरचना - बाहर की अत्यन्त विपरीत परिस्थिति में भी चट्टान जैसी अचल और अविकंपित। अपने स्वयं के कई प्रकार की शारीरिक कष्ट की स्थिति में खतरा मंडराते हुए भी निर्भय होकर चलते रहने का अद्भुत मानसिक नियंत्रण मानो उनके रग-रग में समाया हुआ था। दूसरी ओर लोगों के साथ व्यवहार करते समय, मिलते-जुलते समय उनकी वाणी में मानो मधु का (पू. श्री गुरुजी का बचपन का नाम 'मधु' था!) रस उमड़ पड़ता था। दीन-दुर्बलों के पास आने पर प्रेम और करुणा के भावों से उनका हृदय द्रवित हो जाता था।

साथ ही लोक-संग्रह के लिए हानिकारक हो सकने वाली क्रोध आदि स्वभावजन्य मनोवृत्ति में आमूलाग्र परिवर्तन करना भी इसी का सूचक है। ऐहिक जीवन के प्रति विरक्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति उनमें नन्हें यौवन

की अवस्था से ही पनपी हुई थी। उसके लिए पोषक स्वामी अखण्डानन्द जी का सान्निध्य - यह सब होने पर भी अपने मातृवत् हिन्दू समाज की दयनीय और अपमानित स्थिति को देखकर द्रवित हृदय हो डॉ. हेडगेवार जी के अग्निशिखा समान जलते हुए हृदय के संपर्क में आने पर अपनी मूल आध्यात्मिक प्रवृत्ति को सामाजिक और राष्ट्रीय स्वरुप देने का अतुलनीय मानसिक स्थैर्य और उसी कठोर तपश्चर्या में अंतिम क्षण तक लीन होकर शरीर त्यागने का महान् राष्ट्रयोगी का जीता-जागता उदाहरण - ऐसे अनेक अत्यन्त दुर्लभ गुणों के समुच्चय से सुशोभित हुआ था प.पू. श्री गुरुजी का व्यक्तित्व।

प.पू. श्री गुरुजी की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठन के कार्य में भूमिका की दृष्टि से, अक्षरश: हज़ारों स्वयंसेवक, हितैषी तथा अन्य महानुभावों के साथ अन्याय विषयों पर निरंतर मार्गदर्शक पत्र-व्यवहार; लगभग तेतीस वर्षों तक देश के कोने-कोने तक संघ शिक्षा वर्ग तथा अन्यान्य कार्यक्रमों के निमित्त वर्ष में दो बार निरन्तर भ्रमण; तद्द्वारा संघ के कार्यकर्ताओं के लिए, अपने राष्ट्रजीवन में सुयोग्य भूमिका निभाने की दृष्टि से आवश्यक उद्बोधन; भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् रा.स्व.संघ की भूमिका को नया आयाम देने; राष्ट्रीय दार्शनिक के नाते संघ के स्वयंसेवकों व कार्यकर्ताओं का दिशाबोध; राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के पूजनीय डाक्टरजी के सपनों को साकार करने की दिशा में राष्ट्र-जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में कार्यकर्ताओं की नियुक्ति और उनका समय-समय पर मार्गदर्शन - यह सभी दूरगामी एवं सर्वस्पर्शी था। विश्वभर के हिन्दुओं के प्रमुख प्रतिनिधि एवं हिन्दूधर्म के अनेक पंथ-सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों के सम्मिलित मंच के नाते विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना से लेकर उसके द्वारा अस्पृश्यता निवारण के लिए उन सारे धर्माचार्यों को प्रद्युक्त करने वाले, हिन्दू समाज के सर्वांगीण सुधार एवं संगठन के ऐतिहासिक कार्य में पू. श्री गुरुजी सदैव अग्रगण्य भूमिका निभाते रहे।

देशविभाजन की भीषण त्रासदी के समय प्रभावित प्रदेशों में स्वयं प्रवास करते हुए हिन्दू जनता की सुरक्षा एवं उसका मनोबल बनाए रखने वाले, उस समय राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करने वाले एकमात्र राष्ट्रनायक थे पू. श्री गुरुजी। महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् संघ पर द्वेष-बुद्धि से प्रेरित अन्यायपूर्ण प्रतिबन्ध के समय तत्कालीन सत्ताधारियों के साथ उनका

अत्यन्त प्रखर परन्तु सौहार्दपूर्ण और संयमित व्यवहार तथा कठोर किन्तु सत्यनिष्ठायुक्त पत्राचार रहा। उस समय की घोर अग्निपरीक्षा में भी संघ की अंतिम विजय पर उनका अटल विश्वास एवं राष्ट्र-जीवन की अनेकानेक दिशाओं में उनका मार्गदर्शन अचूक रहा। चीन के प्रत्यक्ष आक्रमण के पहले 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नशे में डूबे हुए देश के नेतृत्व और जनता के समक्ष चीनी आक्रमण के वास्तविक समाचार की खतरे की घण्टी बजाने वाले महान् द्रष्टा पू. श्री गुरुजी थे। अनेक बार पाकिस्तान एवं चीन के आक्रमण के समय सम्पूर्ण राष्ट्र-निष्ठा के वे धनी थे। वैसे ही पूर्व पाकिस्तान से अविच्छिन्न प्रवाह के रुप में आ रहे अपने विस्थापित हिन्दू बंधुओं के राहत व पुनर्वास, असम में आए सर्वनाशी भूकम्प के समय तत्रस्थ बंधु-भगिनियों की सेवा के लिए स्वयं जाकर जनता का आवाहन एवं मार्गदर्शन करने वाले भी वे ही थे।

इस प्रकार रा.स्व.संघ के संगठन कार्य में तथा समस्त राष्ट्र-जीवन में अप्रतिम भूमिका निभाने वाले असामान्य महापुरुष पू. श्री गुरुजी थे, इसमें दो मत नहीं हो सकते। परन्तु विदेशी शासकों के अपनी भूमि से चले जाने के पश्चात् भी उसी मानसिकता के शिकार हुए देश के नेतृत्व तथा प्रमुख समाचार माध्यमों के विरोधी प्रचार के कारण, पू. श्री गुरुजी के बारे में कई प्रकार की विकृत एवं राष्ट्रघातक प्रतिमा जनमानस में अंकित करने का कुत्सित प्रयास अनवरत होता रहा। किन्तु इस विषैली आँधी से किंचित मात्र भी विचलित न होते हुए अपने सर्वसामान्य हिन्दू मानस की नाड़ी पर उँगली रखकर उसी दृष्टि से हिन्दू जागरण तथा संगठन की दिशा में वे अनथक पथगामी रहे। अब काल पलट गया है, पू. श्री गुरुजी की देह को पंचतत्त्व में विलीन हुए भी तीस वर्ष बीत गए हैं। अब संघ और प.पू.श्री गुरुजी विषयक उस आंधी के धुंधले वायुमंडल को चीरकर उसके बीच में से पू. श्री गुरुजी का सही और तेजस्वी स्वरूप प्रकाशमान हो रहा है।

ऐसे कई पहलुओं के बारे में अब तक अप्रकाशित तथा महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करना इस पुस्तक की एक हृदयस्पर्शी विशेषता है। पुस्तक की तैयारी में इसके लेखक मित्रवर श्री कृष्ण कुमार बवेजा जी का, इस पहली परन्तु सार्थक रचना के लिए मैं उनका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

हो.वे. शेषाद्रि

अ.भा. प्रचारक प्रमुख, रा.स्व.संघ

अनुक्रम

प्रवेश

1. मेधावी छात्र एवं आध्यात्मिक जीवन **1**

वंश परिचय-1; मेधावी छात्र-4; चेन्नई वास्तव्य-6; श्री रामकृष्ण आश्रम से सम्बन्ध-8; ''गुरुजी'' सम्बोधन प्राप्त-9; अधिवक्ता श्री गुरुजी-10; सारगाछी प्रस्थान-11; डाक्टर हेडगेवार के साथ काम-14

2. सरसंघचालक (40&48) **16**

जीवन कार्य की खोज-16; सेवाभाव की पराकाष्ठा-19; शिवोभूत्वा शिवं यजेत्-21; आमूलाग्र परिवर्तन-24; विजिगीषु वृत्ति से काम में जुटें-27; वयम् पंचाधिकं शतम्-31

3. प्रतिबन्ध पर्व **32**

प्रतिबन्ध पूर्व परिदृश्य-33; संघ को कुचलने का गुप्त निर्णय-35; महात्मा गांधी जी की हत्या-36; श्री गुरुजी की गिरफ्तारी-38; संघ पर प्रतिबन्ध-39; न्याय की मांग-41; रणनाद (क्लेरियन काल)-43; सत्य सिर पर चढ़कर बोला-47; स्वागत पर्व-48

4. राष्ट्र प्रहरी **52**

कश्मीर का विलय (1947)-52; भाषावार राज्य रचना-54; पंजाबी सूबा-56; पुर्तगाली आधिपत्य की समाप्ति-57; नेपाल से भाव बन्धन प्रगाढ़ करने की दिशा में-59; आशादीप-61; आप मेरा स्वप्न साकार करेंगे : जयप्रकाश नारायण-66

5. राष्ट्र-श्रद्धा के प्रतीकों का मान-रक्षण **67**

स्वदेशी चेतना-67; सुसंस्कार-70; गो-रक्षा अभियान-73; महामहिम राष्ट्रपति से भेंट-76; कुरान शरीफ में आदेश नहीं-77; विवेकानन्द शिला स्मारक-79

6. युद्धरत भारत **83**

चीन-भारत युद्ध -83; त्याग और शौर्य की गाथा-87; भारत-पाक युद्ध (1965)-90; वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि-94; सन 71 का भारत-पाक युद्ध-96; भारत के गौरव में अभिवृद्धि-100

7. राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में **102**

स्वतन्त्र एवं सर्वांगपूर्ण संघकार्य-103; विश्व विभाग-108; प्रचार-माध्यम-109; वनवासी कल्याण आश्रम-110; भारतीय मज़दूर संघ-112

8. सामाजिक दर्शन **115**

दो प्रचलित प्रतिमान-116; कितना अद्‌भुत परिवर्तन-120; हिन्दवः सोदराः सर्वे-121; गांधीजी को सुखद आश्चर्य की अनुभूति-123; मातृशक्ति उन्नयन-126

9. शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक प्रबोधन **132**

शिक्षा का लक्ष्यः- विश्वात्मक सत्य से तादात्म्य की अनुभूति-132; वर्तमान शिक्षा पद्धति-135; सामाजिक कार्यकर्ता का प्रेरणास्पद आदर्श-140; सांस्कृतिक प्रबोधन-141; परिपूर्ण मानव-143; विश्व हिन्दू परिषद्-145; मुसलमान, ईसाई तथा श्री गुरुजी-147

10. राजनीतिक व आर्थिक चिन्तन **151**

राष्ट्र की संकल्पना-151; राष्ट्रीय एकात्मता का विश्लेषण-152; विदेश-नीति-153; राजनीति जीवन का सर्वस्व नहीं-157; नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा-158; मत (वोट) का अधिकारी कौन?-160; जनसंख्या-समस्या का समाधान-171; ग्रामों की आत्मनिर्भरता-172

11. सन्ध्या-समय और सूर्यास्त **173**

मेरे एक उल्लेखनीय रोगी-174; शूलों की शय्या पर इच्छा-मरण-178; तीन पत्र-180; संत को संतों की श्रद्धांजलि-181; देश के नेताओं के श्रद्धासुमन-182; श्रद्धावनत साहित्यकार-186; सम्पादकीय श्रद्धांजलियाँ-186; कार्यरत रहना ही सच्ची श्रद्धांजलि-188

12. बहती जीवन भागीरथी **190**

अहोभाग्य-190; प्रेरक दिशादर्शन -192; स्वभाषा का आग्रहपूर्वक उपयोग करें-193; अरविन्दाश्रम की श्री मां से शब्दातीत वार्तालाप-194; तीव्र स्मरण शक्ति-194; निर्धारित कार्यक्रम के प्रति आग्रह-195; ध्येय के साथ तादात्म्य-198; अपने हाथ से पत्र लेखन-199; बहुमुखी प्रतिभा-201; भगीरथ तपश्चर्या-204

प्रवेश

''कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनको बिना समझे ही हम घृणा करने लगते हैं। इस प्रकार के लोगों में गुरु गोलवलकर मेरी सूची में सर्वप्रथम थे। साम्प्रदायिक दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की करतूतें, महात्मा गांधी की हत्या, भारत को धर्मनिरपेक्ष से हिन्दूराज्य बनाने के प्रयास आदि अनेक बातें थीं, जो मैने सुन रखी थीं। फिर भी एक पत्रकार के नाते उनसे मिलने का मोह मैं टाल नहीं सका।

''मेरी कल्पना थी कि उनसे मिलते समय मुझे गणवेशधारी स्वयंसेवकों के घेरे में से गुज़रना होगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, मेरी समझ थी कि मेरी कार का नम्बर नोट करने वाला कोई मुफ्ती गुप्तचर भी वहां होगा, पर ऐसा कुछ नहीं था। जहां वे रुके थे, वह किसी मध्यम श्रेणी के परिवार का कमरा था। बाहर जूतों-चप्पलों की कतार लगी थी। वातावरण में व्याप्त अगरबत्ती की सुगन्ध से ऐसा लगता था मानो कमरे में पूजा हो रही हो। भीतर के कमरों में महिलाओं की हलचलें हो रही थीं। बर्तनों और कप-सासरों की आवाज़ आ रही थी। मैं कमरे में पहुंचा। महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की पद्धति के अनुसार शुभ-धवल धोती-कुरते पहने 10-12 व्यक्ति वहां बैठे थे। 65 के लगभग आयु, इकहरी देह, कंधों पर झूलती काली-घुंघराली केशराशि, मुखमुद्रा को आवृत करती उनकी मूंछें, विरल भूरी दाढ़ी, कभी लुप्त न होने वाली मुस्कान और चश्मे के भीतर से झांकते उनके काले चमकीले नेत्र, मुझे लगा कि वे भारतीय होची-मिन्ह ही हैं। उनकी छाती के कर्करोग पर अभी-अभी शल्यक्रिया हुई है, फिर भी वे पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्नचित दिखाई दे रहे हैं।

''गुरु होने के कारण शिष्यवत् चरण स्पर्श की वे मुझ से अपेक्षा करते हों, इस मान्यता से मैं झुका परन्तु उन्होंने मुझे वैसा करने का अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने मेरे हाथ पकड़े, मुझे खींचकर अपने निकट बिठा लिया और कहा, ''आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत दिनों से आप से मिलने की इच्छा थी।'' उनकी हिन्दी बड़ी शुद्ध थी।

''मुझे भी! खासकर, जबसे मैने आपका 'बंच आफ लेटर्स' पढ़ा,'' कुछ सकुचाते हुए मैने कहा।

'बंच आफ थाट्स' कहकर उन्होंने मेरी भूल सुधारी किन्तु उस ग्रन्थ पर मेरी राय जानने की उन्होंने कोई इच्छा व्यक्त नहीं की। मेरी एक हथेली को अपने हाथों में लेकर उसे सहलाते हुए वे मुझ से बोले - कहिए।

''मैं समझ नहीं पा रहा था कि प्रारम्भ कहां से करूं। मैंने कहा - सुना है, आप समाचारपत्रीय प्रसिद्धि को टालते हैं और आप का संगठन गुप्त है।

''यह सत्य है कि हमें प्रसिद्धि की चाह नहीं, किन्तु गुप्तता की कोई बात ही नहीं। मुझ से जो चाहे पूछें,'' उन्होंने उत्तर दिया।

इसी प्रकार विभिन्न विषयों पर परस्पर खुल कर बातचीत हुई।

''मैं गुरुजी का आधे घण्टे का समय ले चुका था। फिर भी उनमें किसी तरह की बेचैनी के चिन्ह दिखाई नहीं दिए। मैं उनसे आज्ञा लेने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़ कर पैर छूने से मुझे रोक दिया!

''क्या मैं प्रभावित हुआ? मैं स्वीकार करता हूं कि हां। उन्होंने मुझे अपना दृष्टिकोण स्वीकार कराने का कोई प्रयास नहीं किया अपितु उन्होंने मेरे भीतर यह भावना निर्माण कर दी कि किसी भी बात को समझने-समझाने के लिए उनका हृदय खुला हुआ है। नागपुर आकर वस्तुस्थिति को स्वयं समझने का उनका निमन्त्रण मैंने स्वीकार कर लिया है। हो सकता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उद्देश्य बनाने के लिए मैं उनको मना सकूंगा और यह भी हो सकता है कि मेरी यह धारणा एक भोले-भाले सरदार जी जैसी हो।''[1]

उल्लिखित प्रसंग के लेखक हैं- भारत की विख्यात साप्ताहिक पत्रिका 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' के तत्कालीन सम्पादक एवं प्रमुख पत्रकार सरदार खुशवन्त सिंह जी, जो प.पू.श्री गुरुजी को 17 नवम्बर 1972 को मुम्बई में मिले थे। इन्हीं श्री गुरुजी की राष्ट्रसमर्पित, कर्मयोगी जीवन-गाथा प्रस्तुत करने का यह एक प्रयत्न है।

---

1. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-2; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; संकलनकर्ता-राधेश्याम बंका, पृष्ठ 153&157. (मूल अंग्रेज़ी)

1. मेधावी छात्र एवं आध्यात्मिक जीवन

वंश परिचय

मुम्बई के दक्षिण में सह्याद्रि और समुद्र के बीच मे जो भूखण्ड है, उसे कोंकण कहते हैं। कोंकण में गोलवली नाम का एक गांव है। उस गांव में एक ब्राह्मण परिवार रहता था जिसका उपनाम पाध्ये था। वह परिवार अपनी विद्वत्ता एवं सत्प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध था।

'धर्मसिन्धु सार' ग्रन्थ का लेखन

इस पाध्ये वंश की एक शाखा श्रीक्षेत्र पंढरपुर (जिला सोलापुर) में जा बसी। वहां उन्होंने अपना नाम ग्रन्थरूप में अजरामर कर दिया। श्री गुरुजी के पूर्वज पं. काशीनाथ अनन्त उपाख्य बाबाजी पाध्ये ने 'धर्मसिन्धु सार' नामक अद्वितीय ग्रन्थ लिखा। उस ग्रन्थ को पालकी में सजाकर काशी-वाराणसी के महापण्डितों ने शक संवत् 1712 (सन 1790) में शोभायात्रा निकाली थी। यह ग्रन्थ आगे चलकर 'धर्मसिन्धु' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इससे प्राप्त निर्णय भारत भर में मान्य होते थे।

कालान्तर में उल्लिखित कुल की एक उपशाखा पैठण चली गई जहां उन्होंने 'गोलवलकर' उपनाम धारण किया। उनमें से कुछ लोग नागपुर तथा रायपुर पहुंचे और वहीं रहने लगे।

विपदा का समुद्र

श्री गुरुजी के दादा जी श्री बालकृष्ण पंत कवर्धा रियासत के न्यायालय में रीडर थे। नौकरी में कार्यरत रहते समय एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। श्री गुरुजी के पिता जी श्री सदाशिवराव को अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर उनके स्थान पर दो वर्ष तक नौकरी करने हेतु बाध्य होना पड़ा। विद्याध्ययन की भूख के कारण उन्होंने मैट्रिक पास करने के पूरे बीस वर्ष बाद इन्टर और उसके सात वर्ष बाद बी.ए. की पढ़ाई पूर्ण की।

पुत्ररत्न की प्राप्ति

श्री सदाशिवराव का विवाह आयु के पन्द्रहवें वर्ष में ही हो गया था। उस समय उनकी पत्नी की अवस्था केवल नौ वर्ष की थी। अपनी माता जी को श्री गुरुजी 'ताई' कहते थे तथा पिता जी को 'भाऊजी' कहा जाता था। 'ताईजी' का नाम लक्ष्मीबाई तथा उनके मायके का उपनाम 'रायकर' था। उन्होंने जब अपनी आरंभिक शिक्षा शुरु की, तभी उन्हें ससुराल आना पड़ा।

सन 1900 के लगभग इस दम्पति की पहली सन्तान हुई परन्तु वर्ष भर बाद ही वह जाती रही। तत्पश्चात् हुआ दूसरा बच्चा भी अल्पायु ही सिद्ध हुआ। उसके बाद उनके दो पुत्र हुए; 1903 में अमृत और 1906 में माधव। ताई-भाऊजी को नौ सन्तानें हुई किन्तु अमृत और माधव को छोड़ अन्य सभी अल्पायु रहीं।

शक संवत् 1827 की माघ कृष्ण एकादशी जिसे विजया एकादशी भी कहते हैं, (सोमवार, 19 फरवरी 1906) की प्रातःकाल जब स्वतन्त्रता के पुराने वैभव की याद दिलाते हुए राजप्रासाद में नगाड़े बज रहे थे, उनकी मंगल ध्वनि को सुनते हुए ठीक इसी समय नागपुर में श्री बालकृष्ण पन्त रायकर के घर में सकल सौभाग्यमण्डित श्रीमती लक्ष्मीबाई ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। इस बालक का नाम यद्यपि माधव रखा गया परन्तु घर पर उसे स्नेह से 'मधु' कहकर ही पुकारा जाता था। माधव के जन्म के बाद उनके मामा रायकर के घर की स्थिति धीरे-धीरे सुधरने लगी। अमृत और माधव की यह जोड़ी राम और लक्ष्मण जैसी ही सुहावनी थी और उनकी बाललीला तथा खेलकूद से सारे घर में उत्साहयुक्त चैतन्य छा जाता था। इसी समय सन 1908 में श्री सदाशिवराव को डाक-तार विभाग की नौकरी छोड़कर अपनी रुचि के अध्यापन कार्य में प्रवेश करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ।

अखण्ड और अपार प्रेम का स्थान

अमृत भी केवल नाम का ही अमृत रहा। उसने सन्निपात के कारण कौमार्यावस्था और इहलोक का साथ-साथ त्याग किया। सन 1946 में वयोवृद्ध भाऊजी ने भुसावल में कहा था, ''मेरे कई लड़के हुए। उनमें से एक मधु को छोड़कर कोई जीवित नहीं बचा, किन्तु उसने उन सभी की कमी पूर्ण कर दी है।'' एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा, ''बच्चों की आवश्यकता प्रेम के लिए ही हुआ करती है। संघ के रूप में हमें अखण्ड और अपार प्रेम का स्थान मिला है, इस बात का मुझे बहुत ही आनन्द होता है।'' यह कहते हुए 78 वर्षीय वयोवृद्ध भाऊजी के नेत्रों से अननुभूत आनन्द के अश्रु बह निकले।[1]

1. श्री गुरुजी: व्यक्ति और कार्य; ना.ह.पालकर; डॉ.हेडगेवार भवन, महाल, नागपुर; पृष्ठ-12.

'एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च' अर्थात् 'एक चन्द्रमा ही अंधियारा दूर करता है, असंख्य तारागण नहीं।' इस सुभाषित को माधव ने सार्थक कर दिखाया। स्व. सावरकर के वचन, ''वंशलता वह अमर हुई, देशहितार्थ जो निर्वंश भई'', को अपने जीवन द्वारा उसने समझाया।

मातृत्व की साक्षात् प्रतिमा ताईजी

आदर्श शिक्षक भाऊजी निर्भय एवं स्पष्टवादी भी थे। सहज, स्नेही स्वभाव तथा भावुकता ताईजी के विशेष गुण थे। दिनांक 4-10-1966 को पुणे में 'मातृपूजन' ग्रन्थ के प्रकाशन समारोह के अवसर पर श्री गुरुजी ने कहा था, ''मेरी मां सचमुच माता थी। माता के कर्त्तव्य अथवा जिसे हम मातृत्व के गुण कह सकते हैं, वे उसमें थे।''[1]

सन 1954 में भाऊजी ने इहलोक लीला समाप्त की तथा ताईजी सन 1962 में स्वर्ग सिधारीं।

एकपाठी मधु

भाऊजी ने माधवराव की छः वर्ष की आयु में 'श्री रामरक्षा स्तोत्र' की पुस्तक उसको लाकर दी। उसके संयुक्ताक्षरयुक्त संस्कृत श्लोकों को ठीक से न पढ़ पाने के कारण उसने पिता जी को कहा, ''आप मुझे रामरक्षा पढ़ कर सुनाइए, मैं इसे स्मरण कर लूंगा।'' इस पर भाऊजी ने स्पष्ट उच्चारण के साथ रामरक्षा के श्लोक पढ़कर सुनाए और कुछ बार सुनकर ही बालक माधव ने उन्हें कण्ठस्थ कर लिया। इस असामान्य स्मरण शक्ति के कारण ऐसा कहा जाने लगा कि 'मधु एकपाठी है'। इसी सन्दर्भ में श्री रामचरित मानस का उल्लेख करते हुए श्री गुरुजी कहते हैं, ''गोस्वामी तुलसीदास रचित श्री रामचरित मानस पर मेरा बड़ा प्रेम है। मेरी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, फिर भी मैं जब मिडल स्कूल में पढ़ता था, मेरी हिन्दी पुस्तक में श्री रामचरित मानस के कुछ अंश थे। मुझे वे अंश बहुत अच्छे लगे। मैने सम्पूर्ण रामचरित मानस पढ़ा। उसके अनेक अंश भी कण्ठस्थ कर लिए।''[2]

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-5; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-102-
2. अविस्मरणीय पूजनीय श्री गुरुजी (संस्मरण); लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; संकलनकर्ता- श्री कौशलेन्द्र; पृष्ठ-24-

प्रभावी वक्तृत्व कला

बैतूल की माध्यमिक पाठशाला में पढ़ते समय अपने बड़े भाई अमृत के अचानक अस्वस्थ हो जाने पर माधव ने जिस अस्खलित एवं प्रभावशाली ढंग से अंग्रेज़ी भाषण को प्रस्तुत किया, निरीक्षण पर पधारे शिक्षाधिकारी ने उस वक्तृत्वपटुता के कारण सबके सामने उसकी पीठ थपथपायी।

सन 1917 में वैनगंगा नदी के तट पर आयोजित एक विराट छात्र सम्मेलन में सम्पन्न हुई वक्तृत्व स्पर्धा में माधव सर्वप्रथम रहा। कार्यक्रम के अध्यक्ष बैरिस्टर मुलना को उसका भाषण बहुत ही पसन्द आया तथा उन्होंने विद्यालय में आकर आग्रहपूर्वक उस भाषण को दोबारा सुना।

मेधावी छात्र

एक बार शिक्षा विभाग के एक निरीक्षक माधव की प्राथमिक शाला को देखने आने वाले थे। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वह उस दिन पाठशाला नहीं गया। मेधावी छात्र होने के कारण अन्य छात्रों के द्वारा, उसे घर से उठवाकर ही पाठशाला में उपस्थित कर दिया गया। अस्वस्थ होते हुए भी, माधव ने अध्यापकों की अपेक्षानुरूप निरीक्षण महोदय के प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर देकर पाठशाला की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

पूरे नर्मदा सम्भाग में सर्वाधिक अंक एवं छात्रवृत्ति प्राप्त करते हुए 1915 में चौथी की परीक्षा, 1919 में बालाघाट से मिडल कक्षा छात्रवृत्ति सहित तथा चांदा (अब चन्द्रपुर) के जुबिली हाईस्कूल से 1922 में मैट्रिक की परीक्षा माधवराव ने उत्तीर्ण की। तदनन्तर जून में डाक्टर बनाने की हार्दिक आकांक्षा से भाऊजी ने उनको पूना के प्रसिद्ध फर्ग्युसन महाविद्यालय में पढ़ने हेतु भेजा। परन्तु विश्वविद्यालयीन नियमों की वैधानिक बाधाओं के कारण वापस आकर हिस्लाप महाविद्यालय नागपुर में प्रवेश लिया। यहां कक्षा में एक दिन पाठ पढ़ाते समय प्रोफैसर गार्डिनर ने बाइबिल से कुछ गलत हवाला दिया तो माधवराव ने खड़े होकर कहा, ''श्रीमन्, यह सन्दर्भ ठीक नहीं है। वस्तुतः बाइबिल में इस प्रकार कहा गया है कि .....'' और उन्होंने वह पूरा उद्धरण कह सुनाया। जांच करने पर माधवराव का कथन सही निकला तथा असंख्य बार बाइबिल का पाठ कर चुकनेवाले प्रोफैसर गार्डिनर ने माधवराव को अलग बुलाकर उनकी पीठ ठोकी। इसी महाविद्यालय से 1924 में अंग्रेज़ी में पारंगतता के परिणामस्वरूप पारितोषिक के साथ

उन्होंने विज्ञान-इन्टर की पढ़ाई पूर्ण की।

विश्वविद्यालयीन छात्र जीवन

लखनऊ आयुर्विज्ञान महाविद्यालय में प्रवेश पाने का प्रयत्न अनेक कारणों से सार्थक न हो पाने के कारण, अन्ततः 1924 में माधवराव काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बी.एस.सी. कक्षा में प्रविष्ट हुए। पं.मदनमोहन मालवीय के अनुपम कर्तृत्व के प्रतीक, 1916 में स्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय का एक लाख ग्रन्थों के संग्रह से युक्त पुस्तकालय, रम्य वनश्री से आच्छादित परिवेश, गंगा का पवित्र तट, वातावरण की निर्मलता और स्वास्थ्यप्रदता, सुसज्जित प्रयोगशाला, विशाल क्रीडांगण, उत्कृष्ट व्यायामशाला आदि से युक्त सम्पूर्ण परिसर माधवराव को खूब भाया। यथाक्रम परीक्षाएं उत्तीर्ण कर वे 1926 में बी.एस.सी. तथा 1928 में प्रथम श्रेणी में एम.एस.सी. (प्राणिशास्त्र) हो गए।

विश्वविद्यालयीन चार वर्षों के कालखण्ड में माधवराव ने मनःपूर्वक अध्ययन तो किया ही, किन्तु साथ ही अपनी अन्तःप्रवृत्ति के अनुसार वे आध्यात्मिक जीवन की ओर अधिक झुके। उन्होंने इस कालखण्ड को अत्यन्त आर्थिक संकटों का सामना करते हुए व्यतीत किया परन्तु किसी ने कभी भी उनके चेहरे पर व्यग्रता या चिंता के भाव नहीं देखे ।

असीम ज्ञान पिपासा

काशी के अध्ययन काल में पुस्तकालय का जितना उपयोग माधवराव ने किया, उतना अन्य किसी छात्र ने शायद ही किया हो। उन्होंने संस्कृत महाकाव्यों, पाश्चात्य दर्शन, श्रीरामकृष्ण परमहंस व स्वामी विवेकानन्द की ओजपूर्ण एवं प्रेरक विचार-सम्पदा, विभिन्न उपासना पंथों के प्रमुख ग्रन्थों तथा शास्त्रीय विषयों के अनेक सन्दर्भों को गहनता से निष्ठापूर्वक पढ़ा। सन 1942 के एक भाषण में श्री गुरुजी ने कहा था, ''मैने निश्चित ही हज़ारों पुस्तकें पढ़ी हैं।''[1] पढ़ने की तीव्र गति के कारण वे बड़े-बड़े ग्रन्थ भी एक दिन में पूरा पढ़ लेते थे।

किसी मित्र द्वारा मना करने पर कि ''इतने बुखार में आप क्यों पढ़ रहे हो?'', वे कहते, ''बुखार अपना काम कर रहा है, मुझे अपना काम करने दो।'' इसी प्रकार एक दिन बिच्छू द्वारा पैर में काटने पर जब दंश-स्थान पर दवाई लगाकर उन्होंने शान्तचित्त और एकाग्रता से अपना

1. आरती आलोक की; हरि विनायक दात्ये; ज्ञानगंगा प्रकाशन, जयपुर; पृष्ठ-18.

अध्ययन जारी रखा तो एक सहपाठी बोला, ''अरे तुम्हें तो बिच्छू ने काट लिया है, फिर भी पढ़े जा रहे हो ?'' इस पर माधवराव ने सहजता से उत्तर दिया, ''बिच्छू ने पैर में काटा है, सिर में नहीं।''

शारीरिक साधना

किशोरावस्था एवं तरुणाई में श्री गुरुजी ने भरपूर व्यायाम किया था। इस सम्बन्ध में दिनांक 21.1.1973 को श्रीमद्भगवद्गीता विद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा) की रजत जयन्ती अवसर पर वे कहते हैं, ''मैं सोचता हूं कि यदि हम लोग अपने शरीर को सुदृढ़-बलवान नहीं बनाएंगे, तो राष्ट्र के लिए परिश्रम किस प्रकार कर सकेंगे?''[1]

चेन्नई वास्तव्य

मत्स्य जीवन पर शोध करने हेतु माधवराव चेन्नई मत्स्यालय में लगभग एक वर्ष तक रहे। भाऊजी की सेवानिवृत्ति के परिणामस्वरूप हुए धन के अभाव के कारण यह शोधकार्य पूर्ण नहीं हो पाया। इस काल में स्थायी रूप से घेरे रहने वाला, उनका शीत ज्वर दूर हो गया। कठोर परिश्रम के कारण स्वास्थ्य उत्तम हो गया। भाषा की कठिनाई के कारण उनको निरंतर अंग्रेज़ी का प्रयोग करना पड़ता था जिसके फलस्वरूप इस भाषा पर उन्हें असाधारण अधिकार प्राप्त हो गया। संध्या, अध्ययन तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों का वाचन-मनन उनके दैनिक कार्यक्रम के अनिवार्य अंग बन गये। इन्हीं दिनों जब निज़ाम-हैदराबाद सपरिवार मत्स्यालय देखने हेतु आए तो माधवराव ने अपनी निर्भयता के कारण उन्हें प्रवेश पत्र खरीदकर अन्दर जाने के लिए कहा था।

जीवन दिशा-सूचक पत्र व्यवहार

चेन्नई वास्तव्य में माधवराव अबाधित रूप से अति प्रातःकाल से मध्यरात्रि तक कार्य में जुटे रहते थे। कभी कभी मिलने वाले अवकाश में वे 14-14 पृष्ठों के पत्रोत्तर लिखते थे। उनमें साहित्य, दर्शन, अध्यात्म अनेकविध विषय रहते थे।

लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगानी होगी

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु ने अत्याचारी सांडर्स को परलोकगामी बना दिया। इस घटना पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हुए, जनवरी

1. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-2; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; संकलनकर्ता- राधेश्याम बंका; पृष्ठ 72&73.

1929 के प्रथम सप्ताह में माधवराव अपने मित्र बाबूराव तेलंग को सम्बोधित पत्र में लिखते हैं, ''लाहौर का विस्फोट सुना। अतीव धन्यता अनुभव हुई । आंशिक रूप से ही क्यों न हो, उन्मत्त विदेशी शासकों द्वारा किए गए राष्ट्रीय अपमान का परिमार्जन हुआ, यह सन्तोष की बात है।'' इसी पत्र में वे आगे लिखते हैं, ''लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगानी होगी। हिन्दू और मुसलमान के बीच वास्तविक ज्ञान कराना होगा। ब्राह्मण-अब्राह्मण के बीच के विवाद को समाप्त करना होगा। मैं कोई बड़ा नेता अथवा कार्यकर्त्ता नहीं हूं, किन्तु प्रत्येक को इस कार्य में सहयोग देना ही चाहिए।

हिमालय ही स्वयं मेरे पास आएगा

एक ओर माधवराव के मन में सभी बन्धन तोड़कर सीधे हिमालय की ओर चले जाने का विचार आता था, वहीं दूसरी ओर वही मन उन्हें धिक्कारता हुआ कहता था कि, ''केवल अपने सुख के लिए सबको छोड़कर तुम कहां जा रहे हो ?'' धीरे-धीरे यह संघर्ष भी शान्त हो गया। दिनांक 28 फरवरी 1929 को श्री तेलंग को लिखे पत्र में वे कहते हैं, ''हिमालय चले जाने का मेरा पहले का विचार कदाचित् शुद्ध नहीं था। इस संसार में रह कर ही दुनियादारी के व्याघातों को सहते हुए तथा उसके सभी कर्त्तव्य-कर्मों को व्यवस्थित रूप से निभाते हुए मैं अब अपने रोम-रोम में संन्यस्त वृत्ति को व्याप्त करने का प्रयास कर रहा हूं। अब मैं हिमालय नहीं जाऊंगा, हिमालय ही स्वयं मेरे पास आएगा, उसकी शान्त नीरवता ही मेरे भीतर रहेगी।''

दूसरा कम खतरे वाला मार्ग है ही नहीं

असफलता की आशंका से न विचलित होने वाला उनका सुनियन्त्रित मन था। दिनांक 20.03.1929 के पत्र में वे श्री तेलंग को लिखते हैं, ''अंतिम सुख की साधना करते समय, उसके साथ दो-दो हाथ करने के लिए भी सिद्ध रहना चाहिए। कोई दूसरा कम खतरे वाला मार्ग है ही नहीं।''

उनके जीवन विषयक विचारों को यह जो निश्चित दिशा प्राप्त हुई, उसी के अनुसार उन्होंने अपना सारा जीवन संघमय व्यतीत किया। अन्तर्द्वन्द्व के विविध प्रसंग उपस्थित होने पर भी वे अंगीकृत मार्ग पर अविचलित चलते रहे। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा अथवा सुख-सुविधायुक्त जीवन बिताने की भावना यत्किंचित भी उनके मन में प्रवेश नहीं कर पाई।[1]

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; चं.प.भिशीकर; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ 15&17.

श्री रामकृष्ण आश्रम से सम्बन्ध

भाऊजी के नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लेने के कारण प्राणिशास्त्र विषयक शोध कर विज्ञान के डाक्टर बनने की योजना बीच में ही छोड़कर माधवराव अप्रैल 1929 में नागपुर वापस आ गए। इस समय वे अपने मामा श्री रायकर जी के यहां रहते थे। देश की विविध विकट समस्याओं को हल करने के बारे में उनके मन में अनेकों कल्पनाएं उठने लगी थीं तथा कभी-कभी वे बड़ी देर तक विचारों की तन्द्रा में डूब जाते थे। महाविद्यालयीन विद्यार्थी जीवन में प्रारम्भ हुई श्री वासुदेवराव मुले (जो अब सेवानिवृत्त हो गए थे) जी से वेदांत विषयक चर्चा हेतु भी पर्याप्त समय मिलता था। उन्होंने पन्द्रह दिन तक स्थानीय हिस्लाप महाविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया।

इसी समय नागपुर के धंतोली भाग में स्थित श्री रामकृष्ण मिशन के आश्रम के प्रमुख स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी से उनका सम्बन्ध आया तथा आध्यात्मिक विषयों पर नित्य चर्चा होने लगी। स्वामी विवेकानन्द का समग्र साहित्य भी इस काल में उन्होंने पुनः एक बार पढ़ा।

प्राध्यापक जीवन

माधवराव अध्यापन कार्य हेतु पुनः एक बार काशी की ओर मुड़े। दिनांक 2 सितंबर 1931 को मुम्बई के ख्यातनाम गायक एवं चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट श्री वामनराव देशपाण्डे को काशी से वे लिखते हैं, ''मैं गत मास की 16 तारीख को अचानक यहां आ गया हूं। यहां मुझे अस्थायी नौकरी मिली है। विश्वविद्यालय के कार्यालय का तार मुझे नागपुर में प्राप्त हुआ और तुरन्त यहां आना पड़ा।'' दिनांक 6 अक्तूबर 1931 के पत्र में वे आगे लिखते हैं, ''विश्वविद्यालय में नौकरी मिलने से मैं बहुत बड़ा बन गया हूं, ऐसी बात नहीं है। मैं जैसा और जितना था, वैसा और उतना ही हूं, क्योंकि मैं पाच फुट छः इंच लम्बा हूं और मेरा भार भी 106 पौण्ड ही है। नौकरी के लिए अभिनन्दन करने जैसा उसमें कुछ भी नहीं। उस कारण यदि आप समझते हों कि मैं ऐंठ दिखा रहा हूं, तो यह आप की भूल है।''[1]

इस प्रकार अपने स्वभाव के अनुकूल तथा रुचि के लिए पोषक, काशी के पूर्व परिचित वायुमण्डल में माधवराव प्राध्यापक बन कर पहुंच गए।

1. आरती आलोक की; हरि विनायक दात्ये; ज्ञान गंगा प्रकाशन; जयपुर; पृष्ठ 16&17.

''गुरुजी'' सम्बोधन प्राप्त

यद्यपि माधवराव प्राणिशास्त्र के प्राध्यापक थे तथापि अपने मित्रों तथा छात्रों को वे आवश्यकतानुसार अंग्रेज़ी, गणित, अर्थशास्त्र, दर्शन जैसे अन्य विषय भी पढ़ाते थे। इस दृष्टि से उन्हें स्वतः भी इन विषयों का अध्ययन करना पड़ता था। वे पुस्तकालय से अथवा खरीदकर पुस्तकों की आवश्यक व्यवस्था करते तथा बिना टालमटोल किए मनोयोग से पूर्व तैयारी करते थे। इसके अतिरिक्त अपने मेधावी छात्र-मित्रों की पुस्तकें खरीद कर देने में तथा उनका शेष शुल्क आदि चुकाने में उनके वेतन का बहुतांश व्यय हो जाता था। उनका छात्र-वर्ग उन्हें एक अत्यन्त मिलनसार, कठिनाईयों को समझने और संवेदना अनुभव करने वाले तथा सहायतार्थ सदा तत्पर रहने वाले प्राध्यापक के रूप में जानता था। उनका प्रगाढ़ विद्या-व्यासंग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। इन्हीं गुणों के कारण उनको अपने छात्रों का अत्यंत स्नेहादर-पूर्ण ''गुरुजी'' सम्बोधन प्राप्त हुआ। अपनी सार्थकता के कारण उनका यह नामाभिधान आज विश्वव्यापी बन गया है।

संघ-शाखा से सम्बन्ध

जिन दिनों श्री गुरुजी काशी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बने, लगभग तब आद्य सरसंघचालक परमपूजनीय डाक्टर केशवराव बलिराम हेडगेवार जी की प्रेरणा से श्री भैयाजी दाणी तथा अन्य कुछ छात्रों ने वहां राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक शाखा स्थापित की थी। चेन्नई से लौटने पर नागपुर रहते समय श्री गुरुजी प्रसिद्धिपराङ्मुख डाक्टर हेडगेवार जी के नाम से सुपरिचित हो गए थे। काशी शाखा में जाने वाले उनके कुछ विद्यार्थी मित्रों ने संघ के साथ हुए उनके परिचय को दृढ़ बनाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। संघ कार्य में विशेषता अनुभूत कर वे टेनिस का रैकेट तथा हाकी की स्टिक एक ओर रख कर संघ-शाखा में जाने लग गए।

सन 1932 में डाक्टर हेडगेवार जी ने उन्हें तथा एक अन्य संघ प्रेमी प्राध्यापक श्री सद्गोपाल जी को नागपुर संघ शाखा का विजयादशमी महोत्सव देखने के लिए निमन्त्रित किया। इस नागपुर-यात्रा में डाक्टरजी उन्हें भण्डारा भी घुमा लाए तथा अपने व्यक्तिगत सान्निध्य में संघ-कार्य की सुस्पष्ट कल्पना करा दी। नागपुर से लौटने के बाद श्री गुरुजी काशी-शाखा की ओर पहले से अधिक ध्यान देने लगे तथा उनके व्यवहार के कारण स्वयंसेवक अनजाने ही उनको संघचालक के नाते देखने लगे।

पूज्य मालवीय जी का संघ प्रेम

अपने विद्या व्यासंग, योगासन और ध्यान धारणा के साथ-साथ श्री गुरुजी शाखा में आकर सभी कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए योजनापूर्वक समय निकालने लगे। शाखा में कार्यक्रम कराने हेतु साधनों की कमी की आवश्यक पूर्ति वे बिना ढोल पीटे स्वत: ही करा देते थे। उनके मार्गदर्शन में किए गए योग्य प्रयत्नों से महामना मालवीय जी भी क्रमश: संघ के सच्चे स्वरूप को समझने लगे। अपने संघ प्रेम के कारण पूज्य मालवीय जी ने शाखा के लिए विश्वविद्यालय में पृथक स्थान तथा कार्यालय के लिए कमरे की व्यवस्था करा दी।

सन 1933 के जनवरी मास के अन्त में श्री गुरुजी अध्यापन सम्बन्धी निर्धारित अवधि समाप्त होने पर फरवरी में नागपुर लौट आए।

अधिवक्ता श्री गुरुजी

ताईजी की इच्छानुसार सन 1933 से नागपुर के विधि महाविद्यालय में प्रवेश लेकर श्री गुरुजी एल.एल.बी. की पढ़ाई करने लगे। सन 1935 में वे वकील बन गए। इस व्यवसाय में प्रवेश करने के 4-5 मास बाद ही उन्होंने अपने मित्र श्री दत्तोपंत देशपाण्डे के साथ मिलकर काम करने का निश्चय किया और वाकर रोड पर स्थित श्री साधु के बाड़े में अपना कार्यालय भी खोल दिया। वे गवाह-प्रमाण आदि के काम श्री देशपांडे पर छोड़ देते और स्वत: मात्र वरिष्ठ न्यायालयों में पुनर्विचार हेतु प्रस्तुत किए जाने वाले प्रार्थना-पत्रों (अपीलों) का काम हाथ में लेते। इस कार्य में अपनी कुशाग्रता श्री गुरुजी ने अत्युत्तम रीति से प्रकट की। कई मामलों में न्यायाधीशों ने भी उनकी विश्लेषण तथा प्रतिपादन-शैली की प्रशंसा की। नागपुर के प्रसिद्ध अधिवक्ता श्री विश्वनाथ राव केलकर, जो पहले क्रांतिकारी भी रहे थे, उनके प्रशंसकों में से थे।

घर गृहस्थी बसाने के पारिवारिक प्रयत्न

जब श्री गुरुजी काशी से नागपुर लौटे, उस समय उनके माता-पिता रामटेक (नागपुर से लगभग 50 किलोमीटर) में रहते थे। 1931 में वहां उन्होंने एक छोटा सा मकान भी खरीद लिया था। घर गृहस्थी सम्बन्धी पारिवारिक प्रयत्नों के सम्बन्ध में पुणे के दिनांक 4.10.1969 के एक भाषण में श्री गुरुजी कहते हैं, ''प्रत्येक मां की यह इच्छा रहती है कि मेरे लड़के का विवाह हो। फिर मैं तो अपनी मां का अनेक सन्तानों से बचा हुआ

इकलौता पुत्र था। मेरा बड़ा भाई था परन्तु उसकी मृत्यु हो चुकी थी। मैं विवाह करूं, इसके लिए मेरे माता-पिता ने बहुत प्रयत्न किए, किन्तु ईश्वरेच्छा कुछ भिन्न थी।''[1]

अकोला संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी

नागपुर लौटने के बाद श्री गुरुजी का संघ से सम्बन्ध कम नहीं हुआ था, परन्तु नि:संदेह उनका ध्यान श्री रामकृष्ण आश्रम और वैराग्य की ओर अधिक खिंचता जा रहा था।

सन 1934 में उनको तुलसीबाग में लगने वाली संघ की केन्द्रीय शाखा का कार्यवाह नियुक्त किया गया। उसी समय पूजनीय डाक्टरजी द्वारा प्रारम्भ की गई मंगलवार की साप्ताहिक अधिवक्ता बैठक में वे उपस्थित रहते तथा उनकी विचार प्रस्तुतीकरण की रचनात्मक शैली तथा प्रतिपादन में अभिव्यक्त आत्मविश्वास से अन्य प्रतिभागी बन्धु अत्यधिक प्रभावित होते। इसी वर्ष विदर्भ के अकोला नगर में सम्पन्न हुए संघ शिक्षा वर्ग के श्री गुरुजी सर्वाधिकारी रहे तथा विधि महाविद्यालय की विजयादशमी-दीपावली की छुट्टियों में संघ कार्य के विस्तार हेतु मुम्बई गए।

आध्यात्मिक वृत्ति का उत्तरोत्तर प्रखर होना

इसी कालखण्ड में उनकी आध्यात्मिक वृत्ति प्रखर होती गई तथा पर्याप्त समय ध्यान-धारणा व तत्त्व चिन्तन में बीतने लगा। श्री रामकृष्ण आश्रम में उनका आवागमन बढ़ जाने के कारण पूर्व परिचित स्वामी भास्करेश्वरानन्द तथा अन्य साधकों से आध्यात्मिक सत्संग सुलभ होने लगा। इन्हीं दिनों श्री गुरुजी का अमिताभ महाराज (स्वामी अमूर्तानन्द) से निकट का सम्पर्क आया।

स्वामी अखण्डानन्द जी का नागपुर आगमन

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के अध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्द जी कोलकाता से मुम्बई जाते हुए सन 1936 में एक दिन के लिए नागपुर ठहरे थे। उनके इस वास्तव्य में जब कुछ साधकों ने स्वामी जी से दीक्षा प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने उनको सारगाछी आने हेतु कहा।

सारगाछी प्रस्थान

अमिताभ महाराज श्री गुरुजी के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थे। उनके ही शब्दों में- ''श्री गुरुजी को देखकर मुझे ऐसा लगा मानो मेरे सामने

1. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-2; राधेश्याम बंका; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ-3.

एक अग्निपुंज खड़ा है, जिस पर केवल कुछ राख जमी है। वह राख हटते ही उनके व्यक्तित्व का तेज अधिक प्रखरता से प्रकट होगा।''[1] इन्हीं की प्रेरणा से स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी के आदेशानुसार अमिताभ महाराज से ही परिचय पत्र लेकर श्री गुरुजी ने सारगाछी हेतु प्रस्थान किया। किसी के अनुसार यह सन 1936 का फरवरी महीना है तो किसी के अनुसार जुलाई अगस्त है। किन्तु खार, मुम्बई के रामकृष्ण आश्रम के अध्यक्ष स्वामी निरामयानन्द कहते हैं, ''माधवराव अक्तूबर के अन्त में सारगाछी पहुंचे होंगे। इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि माधवराव दीपावली (13 नवम्बर) से तीन-चार दिन पहले सारगाछी में थे।''[2]

विद्वत्ता और गुणवत्ता की प्रशंसा

श्री गुरुजी के सहयोगी वकील श्री दत्तोपंत देशपाण्डे तथा दो-तीन अन्य निकटस्थ मित्रों को ही उनके अकस्मात् प्रस्थान की जानकारी थी। पूजनीय डाक्टरजी के सम्मुख उनका विषय निकलने पर, वे कभी भी अपने मुख से उपहास अथवा आलोचना का शब्द नहीं निकालते थे अपितु श्री गुरुजी की विद्वत्ता और गुणवत्ता की प्रशंसा ही उनके द्वारा सुनी जाती। उनको अटूट विश्वास था कि श्री गुरुजी अवश्य वापस आएंगे और संघकार्य में जुटेंगे।

महान् कर्मयोगी स्वामी अखण्डानन्द जी

स्वामी अखण्डानन्द जी ने मुर्शिदाबाद जिले के एक छोटे से गांव सारगाछी (कोलकत्ता से लगभग 180 किलोमीटर) में सेवा कार्य प्रारम्भ किया जहां कालान्तर में आश्रम बना। विश्ववंद्य गुरुभाई स्वामी विवेकानन्द जी को जब यह जानकारी मिली तो उन्होंने दो अच्छे कार्यकर्ता तथा पर्याप्त धन वहां भिजवा दिया।

सन् 1898 में एक बार बेलूर मठ में बैठे, स्वामी विवेकानन्द जी कुछ लोगों से बातचीत कर रहे थे कि अचानक मुर्शिदाबाद से स्वामी अखण्डानन्द जी वहां आ पहुंचे। उन्हें देखकर स्वामी जी के मुख से एकाएक निकल गया, ''वह देखिए, कितने महान् कर्मयोगी पधार रहे हैं! देखिए, जनहित तथा असंख्य बन्धुओं के लिए वे कितनी निष्ठा से तथा निर्भयतापूर्वक कर्मयोग में रत हैं।''[3]

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी, चं.प.भिशीकर, पृष्ठ-24.
2. आरती आलोक की, हरि विनायक दात्ये, पृष्ठ-36.
३. The complete works of Swami Vivekananda, Vol VII p.-110.

सारगाछी का साधक-जीवन

ज़िला और उससे अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रचारक के नाते कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओं के सिंदी (महाराष्ट्र) में सम्पन्न हुए शिविर में, सारगाछी-साधना का अपना अनुभव सुनाते हुए दिनांक 16.3.1954 को श्री गुरुजी कहते हैं, ''मुझे अपने अनुभव की स्मृति हो रही है। अपने बारे में कुछ कहना उचित नहीं तथापि कह रहा हूं। मैं एक बार एक स्थान पर भगवान् का नाम लेने के लिए गया। उन्होंने कहा - भगवान् को छोड़ो, पहले बर्तन मांजो। मैने शक्ति भर ईमानदारी से बर्तन मांजे।

''इसके बाद उन्होंने कहा - अच्छा अब झाड़ने बटोरने का काम करो। फिर उन्होंने कहा - बगीचे के पेड़ पौधों में पानी दो। उन्होंने जैसे-जैसे कहा, मैं वैसे-वैसे करता चला गया। उनके किसी कथन के प्रति मैंने अपनी अरुचि नहीं दिखलाई। उन्होंने जैसे रखा, मैं वैसे ही रहा। अन्त में उन्होंने कहा - अब भगवान् का स्मरण करो।

''अपने को गन्दगी उठाने के लिए कहा जाए तो गन्दगी भी उठानी चाहिए। जहां रख दिया जाए वहीं काम करना चाहिए। कार्य के लिए पूर्ण समर्पण होना चाहिए। आदेश के अनुसार 'विदाउट रिज़र्वेशन' चलना चाहिए। तभी कार्य करने की पात्रता उत्पन्न होती है। अपने लिए कुछ भी शेष न रहे। मन-शरीर-बुद्धि सब कुछ बिक गया अपना कुछ भी नहीं रहा। इस पूर्ण समर्पण से ही अपने अन्तःकरण में छिपे हुए समस्त गुण फूट पड़ते हैं। उनके सामने कोई खड़ा नहीं रह सकता।''[1]

देखना, इन्हें कभी कटाना नहीं

आश्रम में पहुंचकर श्री गुरुजी ने दाढ़ी तथा सिर के बाल बढ़ा लिए थे। तारुण्य के तेज से परिपूर्ण मुखमण्डल को वे सुशोभित करते थे। एक दिन बाबा जी (स्वामी अखण्डानन्द जी) ने उनके बिखरे हुए मुलायम बालों पर अपना स्नेहपूर्ण हाथ फेरते हुए कहा, ''ये बाल तेरे खूब फबते हैं। देखना, इन्हें कभी कटाना नहीं।'' श्री गुरुजी ने उनकी इस इच्छा का आजीवन पालन किया। बाबा जी के इस आशीर्वाद में ही श्री गुरुजी की दाढ़ी और जटा का रहस्य छुपा है।

सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य संस्मरणीय दिन

नियोजित कार्यक्रमानुसार दिनांक 13.01.1937 को मकरसंक्रमण के

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-3; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-33.

शुभ पर्व पर श्री गुरुजी ने पूज्य बाबा जी से दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् अपने मन मे जो भावोर्मियां उमड़ पड़ीं, उनका श्री गुरुजी ने इन शब्दों में वर्णन किया है, ''सुवर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य मेरे जीवन का वह संस्मरणीय दिन था, क्योंकि असंख्य जन्मों के पश्चात् प्राप्त होने वाला सौभाग्य मुझ पर प्रसन्न हुआ था। सद्गुरु की असीम कृपा उस दिन मुझ पर हुई थी। सचमुच उस दिन के अनुभव अत्यन्त पवित्र हैं, जो शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है। सद्गुरु का वह स्पर्श, उनका वह प्रेम, अपना दैवी प्रसाद मुझे देते समय उनका सम्पूर्ण आविर्भाव, इनमें से किसी का भी मुझे विस्मरण होना असंभव है। मेरा सारा शरीर रोमांचित हो रहा था। मुझे अनुभव हुआ कि मैं सम्पूर्णत: बदल गया हूं। एक मिनट पूर्व मैं जो था, वह नहीं रहा हूं।''[1]

दीक्षा प्राप्ति के उपरान्त व्यक्तिगत सुखसुविधा एवं कठिनाई के विचार से ऊपर उठकर श्री गुरुजी ने सारगाछी आश्रम में नियमपूर्वक गुरुसेवा जारी रखी। पूज्य बाबा जी के आहार-विहार, दवा-पानी, पथ्यापथ्य तथा अन्य सेवा-शुश्रूषा में निमग्न श्री गुरुजी को दिन बीतने का पता ही नहीं लगता था।

कृतज्ञता से ओत-प्रोत अन्त:करण

श्री गुरुजी के अमिताभ महाराज के साथ अत्यन्त आत्मीयता के सम्बन्ध थे। दिनांक 30.06.1960 को वे अमिताभ महाराज को लिखते हैं, ''कल रात बोलते-बोलते सारगाछी वास्तव्यकाल की अमृतमय स्मृतियां ताज़ा हो उठीं। मन की क्या अवस्था हुई, उसे व्यक्त नहीं कर पा रहा हूं। वह असीम भाग्य मुझे आपके कारण ही प्राप्त हो सका। उसका स्मरण होते ही कृतज्ञता से अन्त:करण भर जाता है।''[2]

डाक्टर हेडगेवार के साथ काम

अपना स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो जाने के कारण, बाबा जी ने पत्र भेजकर दिसम्बर 1936 में अमिताभ महाराज को नागपुर से सारगाछी बुलवा लिया था। अत्यन्त अस्वस्थ होते हुए भी एक रात देर तक बाबा जी अपने दोनों शिष्यों को अध्यात्म के रहस्य सुनाते रहे। रात के साढ़े तीन बज चुके थे। अमिताभ महाराज ने तब उन्हें विश्राम करने की सलाह दी तो वे

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; चं. प.भिशीकर; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ-28.
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-85.

कहने लगे, ''अब अंतिम समय आता दिखाई दे रहा है। इसके बाद तुम शायद मेरी वाणी नहीं सुन पाओगे।'' अमिताभ महाराज ने बाबाजी से पूछा- ''माधवराव की हिमालय जाने की इच्छा अतिशय प्रबल है।'' श्रीमान् बाबा बोले, ''यह डाक्टर हेडगेवार के साथ काम करेगा, ऐसा लगता है। गुरु भाव से समाज सेवा में वह हिमालय का दर्शन अवश्य करे परन्तु एकान्तवास न करे, इसका ध्यान रखना।''[1]

स्वामी अखण्डानन्द जी का निर्वाण

आवश्यक सेवा-शुश्रूषा और वैद्यकीय उपचारों की व्यवस्था होते हुए भी बाबाजी का स्वास्थ्य संभल नहीं सका। अत्यन्त कठिनाई से उन्हें कोलकाता लाया गया जहां दिनांक 7 फरवरी 1937 को अपराह्न तीन बज कर सात मिनट पर उनका निर्वाण हो गया। रात्रि लगभग आठ बजे अन्तिम यात्रा निकली। स्वामी अभेदानन्द जी सबसे आगे थे। श्री गंगा जी के किनारे शव को मन्त्राग्नि दी गई।

भावी सरसंघचालक की उपलब्धि

सन 1937 के मार्च मास में, होली के आसपास अमिताभ महाराज श्री गुरुजी को साथ लेकर नागपुर वापस आ गए। परमश्रद्धेय श्री बाबा जी से प्राप्त दीक्षा की गुरुदक्षिणा के प्रतीकस्वरूप एक मास श्री रामकृष्ण आश्रम में रहकर श्री गुरुजी ने स्वामी विवेकानन्द जी के शिकागो व्याख्यान का मराठी अनुवाद किया। इसके बाद अमिताभ महाराज ने उनके मामा जी श्री रायकर को बुलवाकर कहा कि वे श्री गुरुजी को पूजनीय डाक्टरजी के पास पहुंचा दें। इस प्रकार डाक्टर साहब को भावी सरसंघचालक प्राप्त हुए।

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ-31.

2. सरसंघचालक (40&48)

जीवन कार्य की खोज

स्वामी अखण्डानन्द जी का श्री गुरुजी के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बन जाने के कारण, सारगाछी से लौटने के पश्चात् कुछ उदासी आना स्वाभाविक ही था। नागपुर में ठहरने पर वे दिन में कम से कम दो बार रामकृष्ण आश्रम अवश्य जाते थे। शेष समय पठन-पाठन, गायन-वादन तथा अंध विद्यालय जाने में लगता था। उनकी वकालत की तख्ती यद्यपि पूर्ववत् अपने स्थान पर स्थापित हो गई थी परन्तु अपने व्यवसाय को जमाने में उन्होंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। एक दिन अंधविद्यालय में जाने पर वहां के एक अंध अध्यापक ने आत्मीयतापूर्वक उनसे पूछा, ''सुना है, आजकल आपने केश बढ़ा लिए हैं। क्या यह सच है'' इस पर मुक्त हास्य करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''हां बढ़ा तो लिए हैं। मुझे वकालत में केस नहीं मिल रहे थे, इसलिए सोचा कि केस* ही क्यों न बढ़ा लूं।'' वकालत में पटु होते हुए भी उदासीनता के कारण उनके व्यवसाय की यह स्थिति हो गई थी।

इसी समय एक नए समाचार पत्र का संपादन-भार, जिसमें 250 रुपये वेतन था, स्वीकार करने का जब उनसे आग्रह किया तब उन्होंने कहा, ''मेरे लिए 25 रूपये ही पर्याप्त हो जाते हैं, फिर 250 रूपये मासिक वाली नौकरी करने का आग्रह मुझसे क्यों किया जा रहा है?'' अत: धनार्जन कर वैभव सम्पन्न जीवन का विचार उस समय उनको इष्ट नहीं था।

सन 1938 में स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी ने 'शिकागो परिषद्तील विवेकानन्दांची व्याख्याने' नामक एक मराठी पुस्तक प्रकाशित की, जिसका अंग्रेज़ी से मराठी में अनुवाद श्री गुरुजी ने ही किया था। इस पुस्तक की प्रस्तावना में अनुवादक की प्रशंसा करते हुए स्वामी भास्करेश्वरानन्द जी ने लिखा है, ''जिस महापुरुष के ये शब्द हैं, उसकी मूल भावना के साथ अनुवादक पूर्णरूपेण समरस हो चुका है, यह बात इस अनुवाद से स्पष्ट है।''

श्री गुरुजी के मन में श्री रामकृष्ण परमहंस का यह कथन कि 'जनता को दरिद्रनारायण मानकर उसकी सेवा करना ही ईश्वर की सच्ची

* मराठी में केश को केस कहते हैं।

सेवा है' तथा स्वामी विवेकानन्द का यह कथन कि 'व्यक्तिमात्र में नारायण का दर्शन किया जाए', जड़ जमाए हुआ था। अत: उनका मन इसी प्रकार के किसी कार्यक्षेत्र की खोज में था। नागपुर में रहते हुए वे कभी-कभी प.पू.डाक्टर जी के घर भी जाते थे।[1]

संघ संस्थापक का उज्ज्वल आदर्श

जन्मजात देशभक्त, समकालीन सभी सार्वजनिक कार्यों में प्रत्यक्ष सक्रिय सहभाग, देशी-विदेशी विचारधाराओं का अध्ययन और इन सब के चलते हुए स्वयं अपना गहन, मौलिक और दूरदर्शी चिन्तन पूजनीय डाक्टरजी की विशेषता थी।[2]

श्री गुरुजी - कार्यक्षेत्र का निश्चय

तृतीय सरसंघचालक पूजनीय बालासाहब देवरस कहते हैं, ''डाक्टरजी 1938 से संघ कार्य के बारे में कुछ चिन्तित से दिखाई देने लगे थे। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था जिसके कारण वे मन चाहा दौरा नहीं कर पाते थे। दूसरे आज जैसे संघ कार्य के वट वृक्ष के समान विस्तार उस समय नहीं हो पाया था। गुरुजी के साथ सम्पर्क बढ़ने पर वे प्रसन्न हुए और हम लोगों से कहने लगे कि 'मुझे अंग्रेजी व हिन्दी दोनों भाषाओं में धाराप्रवाह विचार रख सकने की जिसकी क्षमता है, ऐसा पुरुष मिल गया है।' हम लोगों ने जब गुरुजी का प्रथम अंग्रेज़ी भाषण सुना, तब उनका अंग्रेज़ी भाषा पर असाधारण प्रभुत्व देखकर हम स्तम्भित रह गए। डाक्टरजी के व्यक्तित्व में ऐसा कुछ अवश्य था कि एक बार मिलने के लिए आया हुआ व्यक्ति बार-बार उनके सम्पर्क में आने की इच्छा करने लगता। गुरुजी का भी वही हुआ और वे डाक्टर जी की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट हुए।''[3]

नागपुर के 1938 के संघ शिक्षा वर्ग में श्री गुरुजी सर्वाधिकारी के नाते रहे। इन्हीं दिनों श्री गुरुजी ने श्री भैयाजी दाणी के सुझाव एवं नागपुर के एक प्रख्यात वकील श्री विश्वनाथ केलकर के आग्रह पर, विख्यात क्रान्तिकारी श्री बाबाराव सावरकर की 'राष्ट्र मीमांसा' नामक 109 पृष्ठों वाली पुस्तक का मराठी से अंग्रेज़ी में उत्तम अनुवाद एक ही दिन में किया था।

1. श्री गुरुजी : व्यक्ति और कार्य; पृष्ठ 70&71.
2. प्रस्तावना; श्री दत्तोपंत ठेंगडी; जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ-120.
3. हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीति; श्री बालासाहब देवरस; जागृति प्रकाशन, नोएडा (उ.प्र.); पृष्ठ-18.

सुसंगत आचरण

श्रीगुरुजी ने संघकार्य क्यों स्वीकार किया, इस विषय पर प.पू. डा. जी की उपस्थिति में दैनिक 'तरुण भारत' नागपुर के सम्पादक स्व. ग.त्र्यं.माडखोलकर उपाख्य भाऊसाहब के साथ 1939 में हुई प्रदीर्घ चर्चा में वे कहते हैं, ''मेरा रुझान अध्यात्म के समान ही राष्ट्र संगठन के कार्य की ओर भी प्रारम्भ से ही है। वह कार्य संघ में रहकर अधिक परिणामकारिता से मैं कर सकूंगा, ऐसा अनुभव बनारस, नागपुर और कोलकाता के वास्तव्य में मुझे हुआ। इसलिए मैंने संघ कार्य में ही स्वयं को समर्पित कर दिया। मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द के तत्त्वज्ञान, उपदेश तथा कार्यपद्धति से मेरा यह आचरण सुसंगत है। मुझे विश्वास है कि संघ मे रहकर उन्हीं का कार्य मैं आगे चलाऊंगा।''

अति उत्तम, सर्वथा उचित

1939 के फरवरी मास में डाक्टरजी द्वारा सिंदी (महाराष्ट्र) में कार्यकर्ताओं की एक महत्त्वपूर्ण बैठक आयोजित की गई। दस दिनों तक चलनेवाली इस बैठक में उनके दाएं हाथ माने जाने वाले श्री अप्पाजी जोशी एवं श्री बालासाहब देवरस सहित प्रमुख कार्यकर्ता उपस्थित थे। नए सहयोगी के रूप में श्री गुरुजी को भी इस बैठक में आमन्त्रित किया गया था। इस बैठक की कार्यवाही में श्री गुरुजी ने खुल कर अपने विचार प्रस्तुत किए। अनेक विषयों पर उनके विचार काफी आक्रामक और तीक्ष्ण हुआ करते थे, किन्तु एक बार डाक्टरजी द्वारा समालोचना के बाद जो निर्णय दिया जाता उसे सभी शान्त-वृत्ति और मन से स्वीकार करते। श्री गुरुजी के मन का संतुलन एवं नेतृत्व के प्रति उनका श्रद्धा और विश्वास देखकर बैठक में उपस्थित सभी बन्धु मुग्ध रह गए। इस बैठक में पू. डा. जी ने श्री अप्पाजी जोशी से पूछा कि 'भावी सरसंघचालक के रूप में श्री गुरुजी आपको कैसे लगते हैं?' बैठकों के निरीक्षण का स्वयं का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए श्री अप्पाजी ने उत्तर दिया- 'अति उत्तम, सर्वथा उचित।'[1]

कोलकाता संघ शाखा का शुभारम्भ

सिंदी बैठक की समाप्ति के उपरान्त बंगाल में संघ कार्य प्रारम्भ करने हेतु पू. डाक्टरजी ने श्री गुरुजी को कोलकाता भेजा जहां वर्ष प्रतिपदा

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ 38&41.

के शुभ मुहूर्त पर, 22 मार्च 1939 के दिन उन्होंने उत्तरी कोलकाता में शाखा प्रारम्भ की। डाक्टरजी ने अप्रैल मास में ही श्री गुरुजी को नागपुर वापस बुलवा लिया जहां उन्होंने संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया।

शिक्षा वर्ग की समाप्ति के बाद, श्री गुरुजी को साथ लेकर डाक्टरजी 'भगवा झेंडा' मराठी चित्रपट का उद्घाटन करने हेतु पुणे गए। तत्पश्चात् वे विश्राम हेतु देवलाली गए जहां डाक्टरजी को बुखार आ गया। इसी अवस्था में नासिक जाकर संघ-कार्यक्रम में भाग लेने के फलस्वरूप यह बुखार और तेज़ हो गया जिसे उतरने मे दो मास लग गए।

सेवाभाव की पराकाष्ठा

दो मास के इस कालखण्ड में डबल निमोनिया के कारण एक बार डाक्टरजी की स्थिति इतनी खराब हो गई कि चिकित्सकों ने उनके सम्बन्धियों को बुलाने का परामर्श भी दे दिया। परन्तु श्री गुरुजी के सेवाभाव की पराकाष्ठा के कारण वे स्वस्थ हो गए। इसी प्रकार की सेवा दो-ढाई वर्ष पूर्व उन्होंने अपने गुरुदेव स्वामी अखण्डानन्द जी की सारगाछी में की थी। 1934-35 मे मुम्बई में शल्यक्रिया के अवसर पर श्री गुरुजी ने अपने अन्धमित्र वामनराव वाडेगांवकर की जो परिचर्या की उस पर वे गद्गद् होकर कहा करते, ''अजी, इस एम.एस.सी. हुए महापण्डित ने मेरी सम्पूर्ण सेवा शुश्रुषा इतनी मृदुता से की कि मैं उसे आजीवन नहीं भूल सकता।''

डाक्टर जी एक महान् विभूति

श्री गुरुजी देवलाली की रुग्णावस्था में डाक्टर जी से अत्यन्त प्रभावित हुए। निद्रा में डाक्टर जी का अचेत बड़बड़ाना संघ के बारे में ही होता था। इस सन्निपात की अवस्था में भी संघ उनकी आत्मा से एकरूप है, ऐसा श्री गुरुजी ने स्पष्ट अनुभव किया। 3 जुलाई, 1940 को डा.जी की तेरहवीं पर, सरसंघचालक के नाते अपने प्रथम उद्बोधन मे वे कहते हैं, ''उनमें मां का वात्सल्य, पिता का उत्तरदायित्व तथा गुरु की शिक्षा का समन्वय था। ऐसे व्यक्ति की पूजा करने में मुझे अतिशय गर्व मालूम होता है। उनके प्रति यह सद्भाव तथा यह आदरवृत्ति मुझमें एक दिन में उत्पन्न नहीं हुई है। आदमियों को परखने की मेरी वृत्ति अत्यन्त छानबीन की है। आरम्भ में मैं उन्हें एक निराली पद्धति से काम करने वाला एक नेता ही समझता था। उसके अतिरिक्त मेरे मन में डाक्टरजी के प्रति किसी भी प्रकार

की भावनाएं नहीं थी। किन्तु पन्द्रह-सोलह दिन के निरन्तर सहवास से मुझे अनुभव हुआ कि इस सर्वसाधारण की तरह रहनेवाले व्यक्ति में सचमुच ही कुछ असाधारणता है। किसी प्रकार का सहारा न होते हुए भी इतना प्रचण्ड कार्य करनेवाला व्यक्ति सचमुच में एक महान् विभूति ही हो सकता है।''[1]

श्री गुरुजी का मन अब संघकार्य में पूर्णरूपेण सुस्थिर हो गया। स्वास्थ्य में सुधार होनेपर प.पू. डाक्टरजी 7 अगस्त को श्री गुरुजी के साथ नागपुर लौट आए तथा आगामी रक्षाबन्धन महोत्सव (13.8.1939) पर सरकार्यवाह के नाते उनकी नियुक्ति की घोषणा भी कर दी।

डाक्टर जी का अन्तिम हृदयस्पर्शी भाषण

रोगनिवारक गर्म पानी के झरने में स्नानादि के उपचार हेतु डाक्टरजी 6 फरवरी 1940 को राजगीर (बिहार) पहुंचे जहाँ से 20 अप्रैल को वापस आकर वे प्रतिवर्ष के समान 15 दिनों के लिए (1 से 15 मई) पुणे वर्ग में चले गए तथा नागपुर संघ शिक्षा वर्ग का दायित्व श्री गुरुजी ने सम्भाला। पुणे वर्ग में आए हुए स्वयंसेवकों से भावपूर्ण विदाई लेकर जब डाक्टरजी 16 मई को नागपुर लौटे तो उन्हें काफी तेज़ बुखार चढ़ आया। दिन प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही जा रहा था तथा औषधोपचार का भी कोई अनुकूल परिणाम नहीं आया। सर्वाधिकारी का दायित्व सम्हालते हुए श्री गुरुजी डाक्टरजी के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखते थे। 2 जून को 'शिवाजी का राजा जयसिंह को पत्र' विषय पर श्री गुरुजी ने जो वर्ग में भाषण दिया, उसे सुनने के लिए प.पू. डाक्टरजी भीषण बीमारी की अवस्था में भी उपस्थित हुए।

8 जून को श्री गुरुजी के आग्रह के फलस्वरूप वर्ग के सार्वजनिक समारोह में प.पू. डाक्टरजी ने आना स्थगित किया। 9 जून प्रातःकाल के अपने अन्तिम हृदयस्पर्शी दीक्षान्त भाषण में उन्होंने कहा, ''आज अपने सामने मैं हिन्दू राष्ट्र की एक छोटी सी प्रतिमा देख रहा हूं। मैं यहां कुछ अधिक बोल नहीं पाऊंगा। मेरा आप से इतना ही कहना है कि हममें से प्रत्येक स्वयंसेवक संघ-कार्य को ही अपने जीवन का प्रमुख कार्य समझे और इसी मार्ग पर चलते-चलते अपने हिन्दू समाज को इतना शक्तिशाली बनाये कि दुनिया की कोई शक्ति हिन्दू समाज की ओर तिरछी नज़रों से देखने का साहस न जुटा पाए। 'संघ कार्य ही मेरे जीवन का कार्य है' इस

1. श्री गुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-1; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 72&73.

मन्त्र को अपने हृदय में अंकित कर सारे कार्यकर्ता अपने-अपने स्थानपर लौटें।''[1]

संघ के इस कार्य को आप स्वयं संभालिए

20 जून को प.पू. डाक्टर जी का रक्तचाप बहुत बढ़ गया। चिकित्सकों ने मिलकर निर्णय किया कि अब तो लम्बर पंक्चर करना ही होगा। प.पू. डाक्टर जी समझ गए कि अब अन्त समय सन्निकट है। अतः श्री गुरुजी को अपने पास बुलाकर उन्होंने कहा, ''संघ के इस कार्य को आप स्वयं सम्भालिए तथा तत्पश्चात् मेरे शरीर का जो करना हो कीजिए।'' शोकाकुल श्री गुरुजी बोले ''डाक्टर जी यह आप क्या कह रहे हैं? आप इस बीमारी से शीघ्र ही अच्छे हो जाएंगे।'' इस पर पू. डाक्टर जी ने हंसते हुए कहा, ''यह तो ठीक है, परन्तु मैंने जो कुछ कहा है, उसे अवश्य ध्यान में रखिए।''

संघ-कार्य की इस रूप में व्यवस्था होने के कुछ ही समय बाद लम्बर पंक्चर करने पर असह्य कष्ट के कारण पू. डाक्टर जी अचेत हो गए। उसी अचेतनावस्था में शुक्रवार दिनांक 21 जून को प्रातः 9 बजकर 27 मिनट पर उनके प्राण अनन्त में विलीन हो गए।

शोकसंतप्त अवस्था में श्री गुरुजी ने अपने सहयोगियों से कहा, ''अब रोते बैठने के लिए अपने पास समय कहां? एक हाथ से आंसू पोंछकर दूसरे हाथ से हमें कार्य करना होगा।''

शिवोभूत्वा शिवं यजेत्

3 जुलाई को रेशमबाग नागपुर स्थित डाक्टर जी की पवित्र समाधि की साक्षी में दिवंगत सरंसघचालक की तेरहवीं पर उनको श्रद्धासुमन समर्पित करने का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इसी कार्यक्रम में नागपुर प्रांत संघचालक माननीय बाबासाहब पाध्ये ने नूतन सरसंघचालक की नियुक्ति की घोषणा करते हुए कहा, ''आद्य सरसंघचालक की अन्तिम इच्छानुसार माननीय माधवराव जी गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक नियुक्त किए गए हैं और अब वे ही हम सबके लिए डाक्टर हेडगेवार जी के स्थान पर हैं। मैं अपने नए सरसंघचालक को अपना प्रथम प्रणाम समर्पित करता हूं।''

अपने दायित्व को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हुए श्री गुरुजी ने

1. डॉ. हेडगेवार (चरित्र); नारायण हरि पालकर; प्रथमावृत्ति, विक्रमी सं. 2019; पृष्ठ 418&20.

कहा, ''डाक्टरजी जैसे महापुरुष के सामने जो नतमस्तक नहीं हो सकता, वह जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे महान् व्यक्ति की पूजा करने में मैं अत्यन्त गर्व का अनुभव करता हूं। चन्दन-पुष्प आदि से पूजा करना तो सर्वसामान्य मार्ग है। जिसकी पूजा करनी हो, उसके समान बनने का प्रयत्न करना चाहिए - यही उसकी सच्ची पूजा है। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' -यही हमारे धर्म की विशेषता है।''[1]

परिस्थिति की चुनौती

प.पू. डाक्टरजी ने अत्यन्त विश्वास के साथ कार्य का दायित्व श्री गुरुजी पर सौंपा था। जहां एक ओर डाक्टरजी का सम्पूर्ण जीवन सार्वजनिक कार्यों में बीता था, संघ के बाहर भी उनका व्यापक परिचय था तो दूसरी ओर श्री गुरुजी मूलत: आध्यात्मिक प्रवृत्ति के तथा संघ में नए ही थे। संघ के बाहर के क्षेत्र में भी वे अपरिचित ही थे। सत्ता की राजनीति में सक्रिय हिन्दुत्ववादी अनेक लोगों की यह इच्छा बलवती होने लगी कि संगठन उनकी योजनानुसार कार्य करे। ऐसी परिस्थिति में श्री गुरुजी ने अत्यन्त दृढ़ता एवं संयम का परिचय दिया।

नागपुर के विजयादशमी उत्सव में प.पू. डाक्टरजी की उपस्थिति में 22 अक्तूबर 1939 को श्री गुरुजी ने कहा था, ''आज संघ ने चौदह वर्ष पूरे कर लिए हैं और पन्द्रहवें में प्रवेश कर लिया है। हम यौवन की ओर बढ़ रहे हैं। बहुत प्रकार की गतिविधियां हैं परन्तु संघ ने सभी को छोड़कर सिर्फ एक कार्य चुना है, वह है हिन्दुओं का संगठन। हमने 'राजनीति' के लेबल वाले सभी कामों से अपने को उस अर्थ में अलग रखा है कि हम किसी भी वर्तमान राजनीतिक दल अथवा संस्था से जुड़े नहीं हैं। हमें अपनी दिशा में, अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर बिना दूसरों के साथ भ्रमित हुए कार्य करते रहना है।''[2]

इसी भावना के अनुरूप, सरसंघचालक के नाते 3 जुलाई 1940 के अपने प्रथम भाषण में वे कहते हैं, ''हमारे डाक्टर जी ने मतभेदों के कोलाहल में डूब जाने वाला पिलपिला संगठन हमारे अधीन नहीं किया है। हमारा संगठन एक अभेद्य किला है। इसकी दीवारों पर चंचु-प्रहार करनेवालों

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-1, पृष्ठ 72&73.
2. डा. केशव बलिराम हेडगेवार; राकेश सिन्हा; प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार; पृष्ठ-121-

की चोंचें वहीं टूटकर गिर जायें, इतनी दृढ़ और मज़बूत परकोटाबंदी स्वयं डाक्टरजी ने कर रखी है।''[1]

संघ पर व्यक्तिपूजक और प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाने वालों को 21 जुलाई 1940 को डाक्टरजी के मासिक श्राद्ध के अवसर पर दिए गए अपने ओजस्वी भाषण में श्री गुरुजी कहते हैं, ''डाक्टरजी के पश्चात् भी सारे स्वयंसेवक पूर्ववत् कार्य कर रहे हैं, यह इसी बात का प्रमाण है कि डाक्टरजी ने हमें अन्धश्रद्धा नहीं अपितु तत्वनिष्ठा और राष्ट्र-निष्ठा सिखाई है।''[2]

एक तथा तीन प्रतिशत स्वयंसेवक

1939 में प्रारम्भ हुआ द्वितीय विश्वयुद्ध ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए प्राणघातक संकट था। परिस्थिति का सम्यक् लाभ उठा सकने हेतु संघशक्ति शीघ्रातिशीघ्र देशव्यापी बने, यह डाक्टरजी की उत्कट इच्छा थी। अत: 18.3.1940 को राजगीर (बिहार) लौटने के बाद, चन्द्रपुर (विदर्भ) में आगामी दिनों में आयोजित होने वाले प्रौढ़ स्वयंसेवकों के शिविर के सम्बन्ध में 20.3.1940 के एक पत्र में वे लिखते हैं, ''अपने संघ को प्रभावी बनाने के लिए आपके सम्मुख एक ही विचार रखता हूं कि तीन वर्षों में (1940 से 42 तक) अपने प्रान्त में गणवेशधारी तरुण स्वयंसेवकों की संख्या जनसंख्या के हिसाब से ग्रामों में एक प्रतिशत तथा नगरों में तीन प्रतिशत हो जानी चाहिए।''[3]

डाक्टरजी के इस संदेश का अर्थ श्री गुरुजी ने अपने प्रारम्भिक देशव्यापी प्रवास में समझाना प्रारम्भ किया।

समर्पण-भावना का दिव्य प्रवाह

श्री गुरुजी के सम्मुख प्रमुख चुनौती तीव्रगति से कार्य विस्तार करने की थी। इस दृष्टि से विचारपूर्वक योजना तैयार की गई। विभिन्न प्रांतो में पूरा समय संघ का ही कार्य करनेवाले प्रचारक भेजने का निश्चय हुआ। इस दृष्टि से अपने प्रवास में श्री गुरुजी ने तरुण स्वयंसेवकों के अन्त:करण को छूनेवाले भावना-प्रधान भाषण दिए। उनके मन की बेचैनी 1942 में वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर 17 मार्च को व्यक्त किए गए इन उद्गारों में प्रकट

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-1; पृष्ठ-74.
2. वही; पृष्ठ-75.
3. डा. हेडगेवार (चरित्र); ना.ह.पालकर; विक्रमी सं. 2019, पृष्ठ-401.

होती है, ''हमारा अहोभाग्य है कि हम आज जैसी संकटपूर्ण परिस्थिति में उत्पन्न हुए हैं। संसार में उसी का नाम अमर होता है जो संकटकाल में कुछ कर दिखाता है। एक वर्ष के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन के सारे विचार स्थगित कर दीजिए। इस असिधारा व्रत को अपनाकर एक वर्ष के लिए संन्यासी बन जाइये। अपने प्रति चाहे जितना कठोर बनना पड़े उसके लिए तैयार हो जाइये।''[1]

इस आवाहन ने स्वयंसेवकों के अन्त:करण को छू लिया। पूजनीय बालासाहब देवरस ने भी प्रचारक निकालने हेतु प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। 'अभी नहीं तो कभी नहीं' (नाऊ आर नैवर) - यह उनकी घोषणा थी। फलस्वरूप सैकड़ों तरुण स्वयंसेवक प्रचारक बने। राष्ट्र हेतु समर्पण-भावना के एक दिव्य प्रवाह के दर्शन हुए।

आमूलाग्र परिवर्तन

सरसंघचालक बनने के बाद प.पू. गुरुजी ने अपने स्वभाव में योग्य परिवर्तन किया। दिनांक 17 जून 1973 को नागपुर में श्री गुरुजी की तेरहवीं पर दिए गए श्रद्धांजलि भाषण में तृतीय सरसंघचालक पूजनीय बालासाहब देवरस इस विषय में कहते हैं, ''सरसंघचालक पद का भार ग्रहण करने के बाद अत्यन्त श्रद्धा तथा लगन के साथ वे कार्य में जुट गए। उनके स्वभाव में आमूलाग्र परिवर्तन हो गया। प्रारम्भ में वे क्रोधी स्वभाव के थे परन्तु संघ कार्य प्रारम्भ करने पर उन्होंने अपना क्रोधी स्वभाव बदल डाला। वे हम लोगों से कहते थे कि यद्यपि वे शीघ्रकोपी हैं तथापि दीर्घद्वेषी नहीं हैं।''[2]

भारत छोड़ो आन्दोलन '1942'

प.पू. डाक्टर जी के सूत्र को आगे बढ़ाते हुए श्री गुरुजी ने इस आन्दोलन में स्वयंसेवकों को व्यक्तिश: भाग लेने की छूट दी थी। संघ के स्वयंसेवकों ने कई स्थानों पर सहभाग किया था, पुलिस के डंडे खाए थे, गोलियां झेली थीं, कारावास में भी गए थे। विदर्भ में चिमूर तहसील कचहरी पर तिरंगा फहराते समय पुलिस की गोलियों से छलनी हुआ कार्यकर्ता संघ का स्वयंसेवक ही था। देशभर में संघ स्वयंसेवकों ने इसी उत्स्फूर्तता से सन् 1942 के आन्दोलन में यथाशक्ति अपना योगदान दिया था।

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; चं. प.भिशीकर; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ-56.
2. हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीति; बालासाहब देवरस; पृष्ठ&19.

अरुणा आसफ अली जी का आश्रय स्थल

'बयालीस की बिजली' कहकर जिन अरुणा आसफ अली जी का आन्दोलन की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर बड़ा गौरव और सम्मान किया गया दिल्ली के हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' में अगस्त 1967 में छपी एक भेंटवार्ता में वे कहती हैं, ''बयालीस के आन्दोलन में जब मैं भूमिगत थी, तब मुझे दिल्ली के प्रांतसंघचालक लाला हंसराज जी ने अपने घर में दस-पन्द्रह दिन आश्रय देकर सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया था। मेरे उनके यहां निवास का पता उन्होंने किसी को नहीं चलने दिया था। अंत में भूमिगत कार्यकर्ता को इतने दिन एक ही स्थान पर नहीं रहना चाहिए, इसी ख्याल से मैं जरीवाला घाघरा और चुनरी ओढ़कर एक बारात में भंगड़ा करते-करते वहां से निकल आई। वह वेश लाला जी की धर्मपत्नी ने मुझे दिया था। यथासमय मैं जब उसे लौटाने गई तो उन्होंने उसे वापस लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि इसे हमारी ओर से शुभकामनाओं के साथ दिया उपहार समझो।'' इसी भेंटवार्ता में अरुणा जी आगे स्पष्ट शब्दों में कहती हैं, ''हमारा आन्दोलन असफल ही रहा। 8 अगस्त की रात में ही कार्यकारिणी के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया जाएगा, इसकी नेताओं को कोई पूर्व कल्पना नहीं थी। वे तो जेलों में जा बैठे। बाहर हम लोगों का मार्गदर्शन करनेवाला कोई नहीं था। जिसकी जो समझ में आया, उसने वही किया। कहीं कोई सूत्रबद्धता थी ही नहीं। हमारे उस आन्दोलन के फलस्वरूप स्वराज्य आया, ऐसा मुझे कतई नहीं लगता।''[1]

दिल्ली के सुरुचि प्रकाशन ने 'आर.एस.एस एंड फ्रीडम मूवमेंट' नामक एक अंग्रेजी पुस्तिका प्रकाशित की है। लेखक हैं श्री चितरंजन। उसमें लिखा है कि 'सुविख्यात वेदमूर्ति पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जब औंध के संघचालक थे तब उन्होंने 'पत्री सहकार' प्रयोग के जनक क्रांतिवीर भूमिगत नाना पाटील को कई दिनों तक अपने घर में आश्रय दिया था। श्री नाना पाटील के सहयोगी श्री किसनवीर भूमिगत रहकर कार्य करते समय सातारा ज़िले में वाई नामक स्थान पर वहां के संघचालक श्री दत्तोपंत गोखले के यहां रहे थे। सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री अच्युतराव पटवर्धन भूमिगत कार्य की आवश्यकतानुसार अपना मुकाम बदलते हुए भी अनेक संघ स्वयंसेवकों के घरों में ही रहे थे। यही नहीं, संघ से आजीवन उग्र द्वेष

1. राष्ट्राय नम:, मो.ग.तपस्वी; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ 85&86.

रखनेवाले गांधीवादी साने गुरुजी भी पुणे संघचालक श्री भाऊसाहब देशमुख के घर में गुप्त रूप से रहे थे।''[1]

निर्विवाद देशभक्ति एवं मूल्याधिष्ठित जीवन निष्ठा

सोलापुर कांग्रेस समिति के एक प्रमुख कार्यकर्ता 12 दिसम्बर 1948 को प्रकाशित अपने निवेदन में कहते हैं, ''सन 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में मैं स्वयं सहभागी हुआ था। उन दिनों पूंजीपति और किसान वर्ग सरकार से डरा हुआ था। इसलिए हमें उनके घरों में कभी प्रश्रय नहीं मिलता था। हमें संघ कार्यकर्ताओं के घरों में आश्रय लेते हुए ही भूमिगत कार्य करना पड़ता था। संघ के लोग अत्यन्त हर्ष से भूमिगत रहने में हमारी सहायता करते थे। हमारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करते थे। यही नहीं, हममें से कोई बीमार पड़ जाता तो संघ स्वयंसेवक डाक्टर लोग हमारा इलाज भी किया करते थे। जो संघ स्वयंसेवक वकील थे, वे निडर होकर हमारे लिए कानूनी लड़ाई लड़ते थे। इन लोगों की देशभक्ति और मूल्याधिष्ठित जीवन निष्ठा निर्विवाद थी।''[2]

पूर्वानुमान के अनुसार अंग्रेज सरकार ने भीषण दमनचक्र चलाकर दस-पन्द्रह दिनों के अंदर ही आन्दोलन को कुचल डाला। संघ की सीमित शक्ति, आंदोलनकर्ताओं की योजना-विहीनता एवं दिशाशून्यता तथा आन्दोलन में एकसूत्रता की कमी के कारण देशव्यापी संघर्ष के अधिक काल तक न चल पाने की सम्भावना आदि सभी पक्षों का सम्यक् विचार करते हुए संघ को संगठन के नाते इस आन्दोलन मे भाग नहीं लेना चाहिए, श्री गुरुजी द्वारा लिया गया यह निर्णय समय की कसौटी पर खरा उतरा।

कार्य के स्थायी स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करें

दिनांक 19.8.1942 को श्री वसन्तराव देव, सूरत (गुजरात) को लिखे पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''....सम्प्रति चारों ओर हो रही गड़बड़ समाचार पत्रों से मालूम होती है, परन्तु अपना कार्य कैसे स्थायी स्वरूप का है एवं इन घटनाओं का स्वयं पर प्रभाव न होने देते हुए उसे (अपना कार्य) करना कितना आवश्यक है, यह आप जानते ही हैं। चारों ओर कुछ भी हो रहा हो, तो भी अपना कार्य बढ़ता ही है, क्योंकि सभी को संगठित तथा समष्टि जीवन की महत्ता हर बार समझ में आयी है। इसीलिए हमें अपने

1. राष्ट्राय नमः; पृष्ठ-86.
2. वही; पृष्ठ 86&87.

काम में यत्किंचित भी कमी न रखते हुए, उलटे अधिक दृढ़ता से, जुटे रहना चाहिए।....''[1]

आत्मरक्षा का प्रकृति सिद्ध अधिकार

भारतीय जनता में स्वतन्त्रता की तीव्र आकांक्षा का प्रकटीकरण भारत छोड़ो आन्दोलन से हुआ। स्थान-स्थान पर योग्य कार्यकर्ताओं के कारण 1942 के बाद के काल में संघ की शाखाओं का तेज़ी से विस्तार हुआ। 1940 से ही मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए पृथक राज्य की मांग उठानी शुरू कर दी थी। 1945 के कांग्रेस-अधिवेशन में विभाजन की कल्पना को अस्वीकार कर दिया गया था। श्री गुरुजी अपने देशव्यापी प्रवास में गुंडागर्दी, छोटे-बड़े अत्याचार तथा दंगे आदि कराने की धमकियों के सम्मुख अविचलित रहने का आग्रह अपने उद्बोधनों में करते थे। चारों ओर की संघर्षमयी परिस्थिति के सन्दर्भ में 1946 में नागपुर के विजयादशमी महोत्सव पर उन्होंने कहा था, ''प्रतिकार न करने की भाषा पराक्रमी वृत्ति की द्योतक नहीं है। मुझे तो संघर्ष अनिवार्य दिखाई देता है। आप भले ही प्रतिकार न करें, परन्तु उतने से ही आप पर आक्रमण करने के लिए तैयार बैठे लोग अपनी काली-करतूतों से बाज़ थोड़े ही आनेवाले हैं? यह कभी न भूलिए कि काली मंदिर में बलि के लिए ले जानेवाला अजापुत्र (बकरा) अप्रतिकार की ही साक्षात मूर्ति होता है। हमें बलि के बकरे नहीं बनना है। आत्मरक्षा प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रकृतिसिद्ध अधिकार है।''[2]

विजिगीषु वृत्ति से काम में जुटें

प्रांतीय सम्मेलन की दृष्टि से मार्गदर्शन करते हुए दिनांक 4.3.1946 को प्रांत संघचालक मा. बाबासाहब पाध्ये को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''चारों ओर का वातावरण जितना प्रक्षुब्ध तथा बाह्य दृष्टि से प्रतिकूल हो उतनी ही कार्यकर्ताओं की ताकत बढ़नी चाहिए, निष्ठा होनी चाहिए तथा हम सफल होंगे ही इस विश्वास से, निश्चय से तथा विजिगीषु वृत्ति से सब को काम में जुट जाना चाहिए।''[3]

1. अक्षर प्रतिमा (प.पू. गुरुजी का पत्र व्यवहार), खण्ड-1; संकलक: श्री बा.ना.वऱ्हाडपांडे; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 7&8.
2. श्री गुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-1; पृष्ठ 94&95.
3. पत्ररूप श्री गुरुजी; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 398&99.

असह्य वेदना की अनूभूति

दिनांक 9.8.1947 को प.पू. श्री गुरुजी गुजरात प्रांत के कर्णावती (अहमदाबाद) नगर में पधारे थे। तत्कालीन परिस्थिति का अत्यन्त उद्‌बोधक विश्लेषण करते हुए स्वयंसेवकों व उपस्थित नागरिकों के सम्मुख अपने बौद्धिक वर्ग में वे कहते हैं, ''सीमावर्ती प्रांतों में रहनेवाले अपने बन्धुओं की आज दीन-हीन, लाचार अवस्था हुई है। जिन नेताओं पर विश्वास रखकर वे लोग निश्चिंत बैठे थे, उन्होंने उन लोगों को दु:ख में ढकेल दिया। इस अपार दु:ख को हृदय में धारण कर मैं अपना नियोजित प्रवास कर रहा हूं। इस परिस्थिति में मैं प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकता। वह मेरे लिए असम्भव है। देश के नेताओं के बारे में मैं टीका-टिप्पणी करना नहीं चाहता। उनके बारे में मेरे मन में विपरीत भाव हैं, ऐसी भी बात नहीं है; परन्तु एक बात निश्चित है कि वर्तमान परिस्थिति में मुझे प्रसन्नता नहीं है।

''प्रथम प्रसूति में पुत्र को जन्म देकर माता की मृत्यु हो गई हो, उस समय घर के लोग आनन्द उत्सव नहीं मनाते, परिवार पर एक असीम दु:ख की छाया छा जाती है। मुझे एक ऐसा प्रसंग याद है कि एक गृहस्थ के घर पुत्र का जन्म हुआ, परन्तु थोड़े ही समय में गृहस्वामी की मृत्यु हो गई। बालक माता की गोद में था परन्तु माता के हृदय में आनन्द नहीं था। उसका जीवन स्वामी उसे अकेला छोड़ चला गया था। उसका जीवन सर्वस्व नष्ट हुआ था। उस माता के लिए जीवन अर्थशून्य, रसहीन हो गया था। उस माता के समान आज मेरी अवस्था है। अपना और अपने अखिल हिन्दू समाज का सम्बन्ध उस आर्य पत्नी जैसा है। अपने ही बन्धुओं का यह वियोग मेरे लिए असह्य घटना है। इस भाव को व्यक्त करते हुए मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता। सम्पूर्ण हिन्दू समाज को हम एकात्मता की दृष्टि से देखते हैं और वह दु:खग्रस्त है, ऐसा जब हमें दिखाई देता है तो असह्य वेदना होती है।''[1]

स्वयंस्फूर्त शौर्ययुक्त कर्तव्य-पालन

मराठी पुरुषार्थ मासिक के एक लेख में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''सन 1947 वर्ष इस तरह बीता कि वह हम सबको अनेक कारणों से स्मरणीय रहेगा। मातृभूमि का अत्यन्त दु:खदायी विभाजन हुआ तथा अनेकानेक बन्धुओं का अमानुष उत्पीड़न हुआ। उन्हें असंख्य यातनाएं सहनी पड़ीं। जो

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-1; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 152&53-

अपने बन्धुओं की रक्षा करना स्वाभाविक कर्त्तव्य मानते हैं, वे स्वयंस्फूर्ति से आगे बढ़कर उचित उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं, कर्त्तव्यपूर्ति के लिए प्राणों की परवाह भी नहीं करते। संघ के स्वयंसेवकों ने यही किया। अलौकिक शौर्य और बुद्धिमता प्रकट कर अनेक परिवारों की रक्षा की। यह सब काम इस प्रकार किया कि सभी लोग उनके प्रति धन्योद्‌गार व्यक्त करें।

''और हुआ भी वैसा। इस सब दौड़धूप के समय, सारी परिस्थिति का निरीक्षण कर स्वयंसेवकों को अधिक उत्साहित करने के लिए मैं अमृतसर में कुछ दिनों के लिए रहा था। काफिलों में मैंने चक्कर लगाया। तब मुझे ऐसे व्यक्ति आकर मिले जो आज बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष चरणों पर मत्था टेका और कहा - आपका संघ न होता तो हमारी रक्षा नहीं हो पाती। हमारे बाल-बच्चे स्त्रियां सुरक्षित न रह पाते। सेना के अधिकारी मिले। वे भी आदरपूर्वक स्वयंसेवकों तथा उनके अदम्य साहस का उल्लेख करते और कहते - इन्हें तुमने क्या और कैसी शिक्षा दी? ये इतने साहसी और सूरमा कैसे बने? जो बात हमारी सेना के जवान नहीं कर सके, वह पराक्रम ये लोग कैसे दिखा सके? मैं उन लोगों से कहता - संघ मेरा नहीं आपका है। स्वयंसेवकों ने केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है।''[1]

सच्चा मानव संगठन

श्री ए. एन. बाली अपनी पुस्तक 'Now it can be told' में लिखते हैं, ''पश्चिमी पाकिस्तान से आए शरणार्थी भारत में चाहे जहां भी रह रहे हों, एक स्वर से यही कहेंगे कि सच्चे मानव संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने ही उनका साथ दिया।''[2]

देशभक्ति पूर्ण काम

दिनांक 11 अगस्त 1948 को प.पू. श्री गुरुजी के लिखे पत्र के उत्तर में प्रथम गृहमन्त्री सरदार पटेल ने यह स्वीकारोक्ति की है, ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने संकटकाल में हिन्दू समाज की सेवा की, इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसे क्षेत्रों में जहां उनकी सहायता की आवश्यकता थी, संघ के नवयुवकों ने स्त्रियों तथा बच्चों की रक्षा की तथा उनके लिए काफी काम किया। किन्तु मुझे विश्वास है कि संघ के लोग अपने देश-प्रेम को कांग्रेस के साथ मिलकर ही सफल कर सकते हैं।''[3]

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 154&55.
2. 'Now it can be told'; श्री ए.एन. बाली; आकाशवाणी प्रकाशन, जालंधर; पृष्ठ-139.
3. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-18.

सर्वस्वार्पण ही जीवन लक्ष्य

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (विख्यात कांग्रेसी नेता) दिनांक 2 अक्तूबर 1949 के अपने एक वक्तव्य में कहते हैं, ''देश विभाजन के दुर्दिनों मे संघ के स्वयंसेवकों ने पंजाब और सिंध में अतुलनीय वीरता प्रकट की। उन नवयुवकों ने आततायी मुसलमानों का सामना करके हज़ारों स्त्रियों और बच्चों के मान और जीवन बचाए। अनेक नवयुवक इस कर्त्तव्य पालन में काम आए। ..संघ कर राष्ट्रवादी संस्था है। वह सम्पूर्ण हृदय से भारतमाता की पूजा करता है। ..संघ के नवयुवकों के लिए भारतभूमि माता जैसी पूज्य है जिसपर सर्वस्व अर्पण करना ही वे अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं।''[1]

संकट का यथाशक्ति उपयुक्त प्रतिकार

मार्च 1960 में संघ के विभागीय व उससे ऊपर के स्तर के कार्यकर्ताओं का एक अखिल भारतीय वर्ग इन्दौर में हुआ था। इस वर्ग में 9 मार्च को विशिष्ट परिस्थिति में संघ द्वारा अपनाई गई नीति के बारे में अपने भाषण में श्री गुरुजी ने कहा था, ''देश में समय-समय पर निर्माण होनेवाली परिस्थिति के कारण मन में तूफान उठता है। 1942 में भी अनेकों के मन में तीव्र आन्दोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया। परन्तु संघ के स्वयंसेवकों के मन में उथल-पुथल चल ही रही थी। संघ अकर्मण्य लोगों की संस्था है, इसकी बातों में कुछ अर्थ नहीं है, ऐसा केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं तो कई अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वे बड़े रुष्ट भी हुए।

''इसके बाद देशभर में एक अस्थिर-सी परिस्थिति लोग अनुभव करने लगे। मुसलमानों ने मार-पीट और दंगा-फसाद शुरू कर दिया। विभाजन के पूर्वरंग की कृष्णछाया फैलने लगी थी। उस संकट का दृढ़ता से मुकाबला करने का विचार अपने लोगों के मन में आया और फिर कार्य-विस्तार में जुट गए। परन्तु काफी विलम्ब हो चुका था। जब नाक में पानी घुसने लगे तब तैरना सीखने का विचार मन में आने से क्या लाभ? कुछ अल्प सा कार्य हुआ और संकट का यथाशक्ति प्रतिकार हुआ।''[2]

1. साप्ताहिक आकाशवाणी; जालन्धर; 2-10-1969; पृष्ठ 6&7
2. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-4; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-40.

वयम् पंचाधिकं शतम्

श्री गुरुजी ने सितम्बर 1947 में पंडित नेहरू व सरदार पटेल से भेंट कर प्रस्तुत नाजुक घड़ी में संघ द्वारा सरकार को पूर्ण सहयोग करने का आश्वासन दिया। उन्होंने सार्वजनिक रूप से भी शासन के प्रति सहयोग की बात कही। शिवाजी पार्क, मुम्बई में मकर संक्रान्ति उत्सव पर दिनांक 14 जनवरी, 1948 को एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था, ''हमारे देश का यह संक्रमण काल है। दासता की काली रात्रि अभी समाप्त हुई है। हमारे कर्णधार नेताओं के कन्धों पर नए दायित्वों का भारी बोझ है। नया काम है, हो सकता है कि वे कुछ भूल भी कर बैठें। पर हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे हमारे अपने हैं। हमें कटुता से परे रहना होगा। युधिष्ठिर के उदात्त आदर्श से प्रेरणा लेते हुए हम अपने विचार और व्यवहार को उसके अनुरूप ढालें। पाण्डवों को नीचा दिखाने के निश्चय से आए हुए कौरव जब स्वयं गंधर्वों के बंदी हो गए तो युधिष्ठिर ने अर्जुन को कौरवों की सहायता करने का आदेश देते हुए कहा था कि आपसी झगड़े में हम पांच हैं और वे सौ हैं, पर जब शत्रु सामने हो तो हम एक सौ पांच हैं - वयं पंचाधिकं शतम्।''[1]

सरदार पटेल की बोधक चेतावनी

एक ऐसा वर्ग भी कांग्रेस में था जो संघ को राष्ट्रभक्ति का एक श्रेष्ठ स्रोत मानता था। दिनांक 6 जनवरी 1948 को आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित सरदार पटेल अपने भाषण में कहते हैं, ''कांग्रेस में जो लोग सत्तारूढ़ हैं, सोचते हैं कि वे अपनी सत्ता के बल पर संघ को कुचल सकेंगे। डंडे के बल पर आप किसी संगठन को दबा नहीं सकते। डंडा तो चोर डाकुओं के लिए होता है। आखिर संघ के लोग चोर-डाकू तो हैं नहीं। वे देशभक्त हैं और अपने देश से प्रेम करते हैं।''[2]

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-1; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 130&31.
2. राष्ट्राय नमः; पृष्ठ 103.

3. प्रतिबन्ध पर्व

संघ के स्वयंसेवक विस्थापितों की सेवा में समाज के सहयोग से अहोरात्र संलग्न थे। इस सम्बन्ध में अपनी पुस्तक 'गुरुजी गोलवलकर एवं आर.एस.एस.' में पृष्ठ 16 पर श्री ब्राइट लिखते हैं, ''संघ ने इन दिनों रेडक्रास सोसायटी की भूमिका निभाई थी। आज़ादी के पूर्व व बाद में हुए दंगो में, मुस्लिम उन्माद के शिकार निर्दोष लोगों को बचाकर लाने में, संघ ने अत्यन्त उपयोगी भूमिका निभाई थी। उन संकटपूर्ण दिनों में संघ ने जो सेवा की, उसकी तत्कालीन उप प्रधानमन्त्री सरदार पटेल ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।''[1]

दिल्ली की रक्षा

10 सितम्बर 1947 को दिल्ली के लाल किले पर पाकिस्तानी झण्डा फहराने तथा सत्ताधिष्ठित प्रमुख नेताओं की हत्या करने का षड्यंत्र मुसलमानों द्वारा रचा गया था। इस गुप्त षड्यंत्र की पूर्ण जानकारी अपने प्राण संकट में डालकर स्वयंसेवकों ने प्राप्त की और उसे सरदार पटेल के पास पहुंचाया। इस घटना के सम्बन्ध में प्रख्यात विद्वान तथा समाजसेवी भारतरत्न डा. भगवानदास प्रयाग से प्रकाशित 'क्राइसिस' में (पृष्ठ 19 पर) लिखते हैं, ''यदि उन आत्म बलिदानी और उच्च आदर्श से प्रेरित संघ के जवानों ने नेहरू जी व सरदार पटेल को समय पर सूचना न दी होती तो आज की सरकार का अस्तित्व ही न होता।''[2]

संघ की युवाशक्ति

पढ़े लिखे युवकों में संघ के प्रति आकर्षण तेज़ी से बढ़ने लगा था। देश को अखण्ड रखने में कांग्रेस असफल हुई थी। परिणामत: सुदूर ग्रामीण युवकों के मन में भी संघ के प्रति आस्था व विश्वास हिलोरें लेने लगा था।

तरुणों के इस आकर्षण और उस कारण कांग्रेस में बढ़ रही बेचैनी के बारे में सुप्रसिद्ध सर्वोदयी श्री. श्री.ना.बनहट्टी ने नागपुर के साप्ताहिक 'समाधान' में लिखा था, ''संघ की संगठित शक्ति से प्रभावित हो कर देश का प्रतिभावान, चारित्र्यसम्पन्न तथा समर्पित युवा वर्ग संघ की ओर आकर्षित हो रहा है। संघ कार्य का देशव्यापी विस्तार, देशभर के शिक्षित, बुद्धिमान, युवा वर्ग पर उसका प्रभाव और किसी भी संकटकाल में संघ के

1. पहली अग्नि परीक्षा; ना.गं.वझे, माणिकचन्द्र वाजपेयी; अर्चना प्रकाशन, भोपाल (1993); पृष्ठ 26.
2. वही; पृष्ठ 27&28.

स्वयंसेवकों द्वारा प्रदर्शित संयम जैसे दुर्लभ गुणों को कांग्रेस अपने लिए चुनौती समझने लगी है। जिन आध्यात्मिक गुणों के कारण कांग्रेस स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानती थी, उन्हीं गुणों का संघ में हो रहा विकास कांग्रेस को अस्वस्थ कर रहा है।

धर्म रक्षण हेतु संघ शक्ति

सिख बन्धु भी तेज़ी से संघ के निकट आ रहे थे। इसे निम्न घटना से आंका जा सकता है। जुलाई 1947 में संघ शिक्षा वर्ग पंजाब के संगरूर स्थित गुरुद्वारा मस्तवाना साहिब परिसर में ही चल रहा था। श्री गुरुजी के वहां पधारने पर सम्पूर्ण पेप्सू के गुरुद्वारों के जत्थेदार वहां आए। श्री गुरुजी को सरोपा भेंट किया गया। इस अवसर पर गुरुद्वारा प्रमुख ने कहा, ''आज हमारा अहोभाग्य है कि यहां ऐसे महापुरुष पधारे हैं जिन्होंने अपने कर में धर्मरक्षा का कंकण बांधा है। वे अपने तपोबल से ऐसी शक्ति खड़ी कर रहे हैं जिससे निश्चित ही धर्म की रक्षा होगी।''

इसी के साथ साथ देश विभाजन की विभीषिका के भुक्तभोगी सिख समाज पर पं. नेहरू का प्रभाव क्षीण होता जा रहा था। इसका विवेचन करते हुए पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र अपनी पुस्तक 'लिविंग एन एरा' के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ 26 पर लिखते हैं, ''किसी समय उनका (पं. नेहरू) जो थोड़ा-बहुत प्रभाव सिख समाज पर था वह लगभग समाप्त हो गया है।''[1]

प्रतिबन्ध पूर्व परिदृश्य

वास्तव में उन दिनों सारे देश में संघ की शाखाओं की संख्या, दैनिक उपस्थिति तथा स्वयंसेवकों के उत्साह व प्रभाव में सर्वत्र बाढ़ सी आ रही थी। महाराष्ट्र में मुम्बई का सन 1947 का गुरूपूर्णिमा उत्सव दादर के शिवाजी मैदान पर हुआ। वहां 15 हजार स्वयंसेवक तथा 75 हज़ार जनता श्री गुरुजी को सुनने आई। इसी वर्ष संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में वाराणसी, प्रयाग, लखनऊ आदि स्थानों पर हुए उनके प्रवास में हज़ारों गणवेशधारी स्वयंसेवकों के साथ एक से दो लाख संघ प्रेमी जनता हर स्थान पर उपस्थित हुई। सन 1947 में बंगलौर के कर्नाटक प्रांत के शिविर की उपस्थिति आठ हज़ार तथा 6 नवम्बर 1947 को अकोला में आयोजित बरार के संघ शिविर में 15 हज़ार स्वयंसेवकों ने भागीदारी की।

1. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ 32&33.

दिनांक 30.10.1947 को पुणे के सर परशुराम भाऊ कालेज के विशाल प्रांगण में श्री गुरुजी ने एक लाख से ऊपर जनता को मन्त्रमुग्ध कर राष्ट्र समर्पित जीवन जीने की प्रेरणा दी। दिनांक 1-2.11.1947 को चिंचवड (पुणे) के निकट आयोजित होने वाले महाराष्ट्र प्रांत के स्वयंसेवकों के शिविर पर सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा देने के कारण पुनर्निधारित विभिन्न शिविरों में 1312 ग्रामों के 1.46 लाख स्वयंसेवक उपस्थित हुए। चिंचवड के कार्यक्रम में सरदार पटेल पधारने वाले थे।

खण्डवा, जबलपुर, बिलासपुर, छिंदवाडा और रीवा, इन पांच विभागों से बने महाकौशल प्रांत में 600 शाखाएं, 36 हज़ार दैनिक उपस्थिति तथा 150 प्रचारक और विस्तारक थे। आन्ध्र प्रान्त के अकेले गुंटूर ज़िले में 31 स्थानों पर शाखाएं तथा 3000 दैनिक उपस्थिति थी। डा. पट्टाभि सीतारमैया, टी.एस. प्रकाशम्, आचार्य एन.जी.रंगा जैसे प्रख्यात नेता आम सभाओं में संघ कार्य व स्वयंसेवकों के व्यवहार की प्रशंसा कर रहे थे।[1]

इसके विपरीत दूसरी ओर कांग्रेस, विशेषत: पं.नेहरू की लोकप्रियता रसातल की ओर बढ़ रही थी। उनकी तुष्टिकरण की नीति व विचारधारा से जनता का मोहभंग हो गया था। कांग्रेस में संघ विरोधी नेहरू व संघ समर्थक पटेल, इस प्रकार का ध्रुवीकरण हो रहा था। अत: सत्ता में बने रहने हेतु तत्पर कांग्रेसी नेतृत्व तथा राष्ट्रवाद के उभार से भयभीत कम्युनिस्टों व सोशलिस्टों ने संघ के ऊपर प्रहार करना प्रारम्भ किया था परन्तु जनता संघ के साथ थी। समाचार पत्रों की कुछ तत्कालीन टिप्पणियां निम्नांकित है :-

समाज संगठन की अपार क्षमता

दैनिक अंग्रेज़ी हितवाद ने दिनांक 28.10.1947 के अंक में लिखा है, ''संघ में हिन्दू समाज को जाति, पंथ और भाषा के संकुचित स्वार्थों से ऊपर उठकर संगठित करने की अपार क्षमता है।.....जो लोग संघ में हिटलर के नाज़ी संगठन के कीटाणु देखते हैं, वे भयंकर गलती करते हैं।''

फासिस्ट मनोवृत्ति का द्योतक आत्मघाती आघात

चिंचवड (पुणे) के कार्यक्रम पर मुम्बई प्रांत के गृहमन्त्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा प्रतिबंध घोषित करने पर नागपुर के 'महाराष्ट्र' ने अपने 28.10.1947 के अंक में टिप्पणी की, ''अपनी जान हथेली पर रखकर दिल्ली, संयुक्त प्रान्त आदि में निराश्रित बन्धुओं की सेवा करनेवाली तथा

1. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ 29&31.

किसी भी दल की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं के मार्ग में बाधक न होते हुए और किसी पर भी आक्रमण न करते हुए हिन्दुओं का संगठन करने वाली रा.स्व.संघ जैसी विधायक संस्था पर इस प्रकार आघात किया जाना आत्मघाती है। सबलों के सामने नाक रगड़ने और दुर्बलों को दबाने की, तथा जिस फासिस्ट मनोवृत्ति का पं. नेहरू बार-बार धिक्कार करते हैं, उसी मनोवृत्ति का यह द्योतक है।''

अनुशासित राष्ट्रीय शक्तियां

दैनिक अंग्रेजी 'दि ट्रिब्यून' (चण्डीगढ़) ने दिनांक 26.11.1947 को तीखा सम्पादकीय लिखते हुए कहा कि ''पं. नेहरू ने पूर्व पंजाब सरकार को निर्देश दिया है कि वह रा.स्व.संघ और अकाली दल पर पाबन्दी लगाकर उन्हें खत्म कर दे। यह खबर इतनी खराब है कि उसे सच होना ही नहीं चाहिए और अगर यह सच है तो इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए। ..... हम ज़ोर देकर कहना चाहते हैं कि संघ और अकाली दल इस सीमावर्ती राज्य की जनता के हृदयों में गहराई मे बैठे हैं। उन्हें जनता राज्य के रक्षक के रूप में मानती है। ..... इन संगठनों को साम्प्रदायिक संगठन कहना या उन्हें निजी सेनाओं के रूप में निरूपित करना कृतघ्नता है। वास्तव में तो वे हमारी राष्ट्रीय शक्तियां हैं, जिनके पास सेना के समान अनुशासन तो है, परन्तु कोई हथियार नहीं है। भारत सरकार को उन पर गर्व करना चाहिए।''[1]

संघ को कुचलने का गुप्त निर्णय

पूजनीय बालासाहब देवरस 'पहली अग्नि परीक्षा' पुस्तक के लिए प्रस्तावना में, संघ पर लगे प्रतिबन्ध के बारे में लिखते हैं, ''सत्ता की राजनीति ने केन्द्रीय नेतृत्व को अंधा बना दिया था। इसलिए उसने समाज को अनुशासित करने वाले, उसमें सांस्कृतिक जीवन मूल्य और राष्ट्रीय चारित्र्य का संस्कार करने वाले और अपने आप को स्वार्थ, सत्ताप्राप्ति की चाह तथा प्रसिद्धि से दूर रखकर मौन साधक की भांति राष्ट्रनिर्माण के कार्य में अखण्ड रूप से लगे इस महान् संगठन द्वारा बढ़ाए गए सहयोग की उपेक्षा कर दी तथा संघ को उसके वास्तविक रूप में देखने से इन्कार कर दिया। उन्होंने संघ को अपनी सत्ता के लिए एक संभावित चुनौती माना। उस राष्ट्रीय संकट की घड़ी में सच्चे देशनेता के नाते उन्हें भारतरत्न

1. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ 42&44.

डा.भगवानदास के उस परामर्श पर विचार करना चाहिए था जिसमें उन्होंने कहा था कि 'राष्ट्र की सेवा में अहर्निश लगे हुए संघ के लक्षावधि देशभक्त स्वयंसेवकों की शक्ति का दमन नहीं उसका सदुपयोग करो।'

''परन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि निर्णय की उस घड़ी में, सत्ता की राजनीति ही प्रभावी रही और उस दिन से आगे भी वही राजनीति विकृततर बनती गई तथा राष्ट्रीय समन्वय तथा सहयोग की भावना का निरन्तर ह्रास होता चला गया। अक्तूबर 1947 में ही कांग्रेस ने संघ को कुचलने का निर्णय गुप्त रूप से ले लिया था।''[1]

सभी आघातों को विफल करने का संकल्प

दिनांक 29.1.1948 को प्रधानमन्त्री पं. नेहरू ने अमृतसर की सभा में घोषणा की कि 'हम संघ को जड़-मूल से नष्ट करके ही रहेंगें।' दि. 30 जनवरी को चेन्नई के मुत्तय्या चेयिार विद्यालय में संघ कार्यकर्ताओं के समक्ष बोलते समय पं. नेहरू के इस वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''संघ पर होने वाले सभी आघातों को हम विफल करेंगे। हमारा (संघ का) कार्य किसी की कृपा से नहीं बढ़ा। किसी की बुरी दृष्टि से वह समाप्त भी नहीं होगा।'' उनके उक्त उद्‌गारों की परीक्षा का काल सन्निकट है, सम्भवत: इसकी कल्पना श्री गुरुजी को भी न रही हो।

महात्मा गांधी जी की हत्या

दिनांक 30 जनवरी को सायंकाल चेन्नई में प्रतिष्ठित नागरिकों के कार्यक्रम में अपना भाषण समाप्त कर श्री गुरुजी चाय पीना प्रारम्भ कर ही रहे थे कि उनको दिल्ली में हुई महात्मा गांधी जी की हत्या की जानकारी दी गई। चाय की प्याली वैसी ही रखकर श्री गुरुजी कुछ देर तक मौन बैठे रहे, फिर कहा- ''देश का दुर्भाग्य है।'' आगामी प्रवास स्थगित कर वे तुरन्त विमान द्वारा नागपुर लौटे। चेन्नई छोड़ने के पूर्व उन्होंने पं.नेहरू, सरदार पटेल तथा श्री देवदास गांधी को सांत्वना-परक संदेश तार द्वारा भेजे। उसमें उन्होंने लिखा था, ''प्राणघातक क्रूर हमले के फलस्वरूप एक महान् विभूति की दु:खद हत्या का समाचार सुनकर मुझे बड़ा आघात लगा। वर्तमान कठिन परिस्थिति में इससे देश की अपरिमित हानि हुई है। अतुलनीय संगठक के तिरोधान से जो रिक्तता पैदा हुई है, जो गुरुतर भार कंधों पर आ पड़ा है उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भगवान् हमें प्रदान करें।'' इसी के साथ

1. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ-14-

साथ दि. 30 tuojh को ही सभी शाखाओं के लिए श्री गुरुजी ने यह संदेश तार द्वारा प्रसारित करवाया कि ''आदरणीय महात्माजी की दु:खद मृत्यु के निमित्त तेरह दिनों तक शोक पालन किया जाए तथा नित्य कार्यक्रम स्थगित रखे जाएं।''

महात्माजी की हत्या का समाचार सुनते ही दिल्ली-निवासी पंजाब प्रान्त संघचालक लाला हंसराज जी गुप्त, दिल्ली नगर संघचालक श्री हरिचन्द्र जी तथा पंजाब प्रान्त प्रचारक श्री वसन्तराव ओक अपनी शोक संवेदना प्रकट करने हेतु दिल्ली के बिरला भवन गए तथा वहां उपस्थित अनेक कांग्रेसी नेताओं तथा महात्माजी के आत्मीय जनों से मिले।

नागपुर पहुंचते ही श्री गुरुजी ने पं. नेहरू एवं सरदार पटेल को अपने अंत:करण की व्यथा प्रकट करते हुए पत्र लिखे। इन पत्रों के कुछ अंश इस प्रकार हैं :-

महान संगठक का आकस्मिक तिरोधान

''उस महान् संगठक के आकस्मिक तिरोधान से अपने कन्धों पर जो उत्तरदायित्व आ पड़ा है, उसे हमें कुशलता से वहन करना होगा।'', श्री गुरुजी ने सरदार पटेल को प्रेषित पत्र में लिखा।

एकान्तिक राष्ट्रनिष्ठा

पं. नेहरू को लिखे पत्र में वे कहते हैं, ''वर्तमान प्रक्षोभक परिस्थिति में संतुलित विवेकबुद्धि, मधुरवाणी और राष्ट्रहित के प्रति एकान्तिक निष्ठा सहित सावधानी से सारे क्रियाकलाप करते हुए राष्ट्रनौका को पार ले जाने का उत्तरदायित्व हम सब पर है।''

संघ के स्वयंसेवकों ने नागपुर तथा अन्यत्र शोकसभाओं का आयोजन कर गांधीजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलियां समर्पित की।

प्रतिकार न करते हुए शान्त रहने का आग्रह

दिनांक 31 जनवरी की रात्रि को आकाशवाणी से समाचार प्रसारित होने लगे कि महाराष्ट्र में संघ स्वयंसेवकों तथा संघ कार्यालयों पर हिंसात्मक आक्रमण हो रहे हैं। नागपुर के स्वयंसेवकों ने तुरन्त ही केन्द्रीय कार्यालय तथा श्री गुरुजी के निवासस्थान की रक्षा का प्रबन्ध करते हुए श्री गुरुजी से मार्गदर्शन की प्रार्थना की। श्री गुरुजी बोले, ''शांत रहो, चाहे प्राण ही क्यों न चले जाएं, किन्तु प्रतिकार का तनिक भी प्रयत्न न करो।''

प्रेमयुक्त व्यवहार का आदेश

एसोसिएटिड प्रेस को प्रकाशन हेतु दिनांक 1 फरवरी को दिए वक्तव्य में श्री गुरुजी ने कहा, ''प्रेम और सेवा के सिद्धान्तों पर श्रद्धा होने से ही मैं अपने सभी स्वयंसेवक बन्धुओं को सब से प्रेमपूर्वक व्यवहार करने का आदेश देता हूं। गैर समझदारी से कोई खीझकर, उत्तेजना से बोले या कोई अनावश्यक उन्माद दिखाए तो भी वह सब, उस महात्मा के प्रति देशवासियों के मन में प्रेम और आदर के कारण हो रहा है, इसे सभी स्वयंसेवक बन्धु ध्यान रखें।''

दूषित पूर्वाग्रह के कारण इस सात्विक निवेदन को भी वृत्तपत्रों में उचित स्थान नहीं मिल सका।

श्री गुरुजी की गिरफ्तारी

भारत में सर्वदूर एवं विशेषत: नागपुर का वातावरण दिनांक 1 फरवरी को अत्यन्त प्रक्षुब्ध हो उठा। पंडित नेहरू से लेकर छोटे-बड़े कांग्रेसी कार्यकर्ताओं तथा सोशलिस्टों व कम्युनिस्टों के भाषण, घोषणा एवं भित्तिपत्र संघ के विरुद्ध लोगों की हिंसक एवं क्षुद्र भावनाओं को भड़काने वाले थे। यह प्रचार किया जा रहा था कि गांधीजी की हत्या के लिए संघ तथा उसके स्वयंसेवक ही उत्तरदायी हैं। उसी दिन दोपहर में नागपुर में रेशमबाग स्थित पूजनीय आद्य सरसंघचालक डा. हेडगेवार जी की समाधि तथा तुलसी वृन्दावन को संघद्वेष के नशे में उन्मत्त लोगों ने तोड़ा। श्री गुरुजी के निवास पर भी भीड़ ने पथराव किया। परन्तु उन्होंने उपस्थित सभी स्वयंसेवक बन्धुओं को उत्तेजित न होने का परामर्श दिया।

उसी रात्रि उन्हें महात्मा गांधी जी की हत्या के अभियोग में भारतीय दंड विधान की धारा 302 व 120 के अन्तर्गत बन्दी बनाकर नागपुर कारागृह ले जाया गया। गिरफ्तारी से पूर्व कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुजी से कुछ सूचनाएं लिख कर देने हेतु निवेदन किया था। उस पर वे बोले, ''देखो मैं जा रहा हूं। लिखकर कुछ रखना अनावश्यक है। मुझे विश्वास है कि अन्त में संशय का भ्रमपटल दूर होगा और हम निष्कलंक प्रमाणित होंगे।'' दिनांक 3 फरवरी को भूतपूर्व सरकार्यवाह श्री मल्हारराव जी काले ने तार भेजकर सब शाखाओं को आदेश दिया कि 'श्री गुरुजी को गिरफ्तार किया गया है। हर कीमत पर शांत रहें।'

संघ पर प्रतिबन्ध

केन्द्रीय सरकार ने दिनांक 2 फरवरी को संघ कार्य को अवैध घोषित करने वाला अध्यादेश जारी किया जिसमें संघ पर हिंसात्मक कार्यवाही करने के आरोप लगाए गए और कहा गया कि ''हिंसा के इस उग्र आविष्कार का कड़ाई से नियन्त्रण करना सरकार अपना कर्त्तव्य मानती है। इस कर्त्तव्य की पूर्ति के प्रथम पग के रूप में संघ को अवैध घोषित किया जा रहा है।'' बाद में 4 फरवरी को सम्पूर्ण देश में संघ पर प्रतिबन्ध लगाए जाने की अधिकृत घोषणा भी कर दी गई। लगभग 20 सहस्र स्वयंसेवकों को बिना किसी जांच पड़ताल के कारागृह में बन्द किया गया।[1]

गांधीजी के प्राणप्रिय सिद्धान्तों की हत्या

एन्थोनी एलेन्ज मित्तम द्वारा लिखित 'फिलॉसफी एंड एक्शन ऑफ आर.एस.एस. फॉर हिन्द स्वराज्य', नामक पुस्तक की प्रस्तावना में श्री जमनादास मेहता लिखते हैं, ''विश्व के इतिहास में इसके पूर्व ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जब गांधीजी के समान आध्यात्मिक व्यक्तित्व का दुरुपयोग निजी स्वार्थ पूर्ति हेतु इस प्रकार किया गया हो। कुख्यात 'संघ का शिकार' इतिहास के जिन पन्नों पर अंकित है वे भी उतने ही काले हैं जितनी कि 30 जनवरी की त्रासदी । इनमें से एक अवसर पर गांधीजी की हत्या हुई थी, दूसरे अवसर पर गांधीजी के निकटस्थ अनुयायियों ने ही 'संघ शिकार' अभियान चलाकर उनके प्राणप्रिय सिद्धान्तों सत्य व अहिंसा की हत्या की थी।''[2]

संघ विसर्जित

कारागृह में श्री गुरुजी को यह समाचार ज्ञात हो चुका था कि संघ पर प्रतिबन्ध लग गया है। 5 फरवरी को उनके मित्र श्री दत्तोपंत देशपाण्डे जब उनसे जेल में मिलने आए तो उन्हें संघ के विसर्जन सम्बन्धी एक वक्तव्य श्री गुरुजी ने लिखकर दिया तथा कहा कि वे उसे प्रकाशित कर दें। इस वक्तव्य में श्री गुरुजी ने लिखा, ''रा.स्व.संघ की आरम्भ से यही नीति रही है कि सरकारी प्रतिबन्धों का पालन करते हुए ही अपने कार्यक्रम किए जाएं। इस समय सरकार ने उसे अवैध घोषित कर दिया है, अत: मैं यही उचित समझता हूं कि प्रतिबन्ध हटने तक संघ को विसर्जित किया

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड 2; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 2&10.
2. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ 23&24.

जाए। तथापि सरकार ने संघ पर जो आरोप लगाए हैं उन्हें मैं पूर्णतया अस्वीकार करता हूं।''

यह उल्लेखनीय है कि संघ के विसर्जन सम्बन्धी श्री गुरुजी का वक्तव्य सर्वप्रथम 6 फरवरी को पाकिस्तान पत्र डॉन ने छापा। डॉन में छपने के बाद ही भारत के अन्य पत्रों में उसे प्रकाशित किया।

कारागार में पूछताछ करने आए तत्कालीन डी.आई.जी. श्री हीराचन्द को श्री गुरुजी ने निर्भीक एवं सटीक उत्तर दिए। अकस्मात् 7 फरवरी को गांधी हत्या सम्बन्धी अभियोग वापस लेकर, सरकार ने सुरक्षा कानून के अन्तर्गत 6 मास की नज़रबंदी का नया आदेश श्री गुरुजी के लिए जारी किया।[1]

गांधी हत्या से संघ का कोई सम्बन्ध नहीं

गांधीजी की हत्या से संघ का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं था, सरदार वल्लभभाई पटेल को यह बात तुरन्त ही मालूम हो गई थी। उन्होंने उसे प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू को पत्र द्वारा सूचित भी किया था। वह पत्र दि. 27 फरवरी 1948 को लिखा गया था, जो अब प्रकाशित हो चुका है।* उस पर अधिक टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। सरदार पटेल ने लिखा- ''बापू की हत्या की जांच में हो रही प्रगति पर मैने प्राय: प्रतिदिन ध्यान दिया है। सभी प्रमुख अपराधियों ने अपनी गतिविधियों के लम्बे और विस्तृत वक्तव्य दिए हैं। उन वक्तव्यों से यह बात भी स्पष्ट रूप से उभर कर आती है कि इस सारे मामले में संघ कहीं भी संलिप्त नहीं है।'' यदि सरकार में ज़रा भी न्यायबुद्धि होती, तो संघ पर लगा ग्रहण गांधी जी के मासिक श्राद्ध दिन तक भी न टिकता।[2]

शक्ति के कारण संकट, शक्ति से संकट मुक्ति

ईश्वर-चिन्तन का इतना अच्छा योग श्री गुरुजी को सारगाछी के बाद अब मिला था। ईश्वर-चिन्तन से बचे समय में वे मन ही मन विभिन्न संघ-शाखाओं तथा उनके स्वयंसेवकों का चिन्तन करते थे।

यह पूछे जाने पर कि प्रामाणिकता तथा निष्पाप भावना से काम करने पर भी अपने ऊपर यह संकट क्यों आया, वे आत्मविश्वासपूर्वक उत्तर

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2; पृष्ठ-10-
* Sardar Patel's Correspondence 1945-50; Vol.VI, Edited by Durga Das. Navajivan Publishing House, Ahamedabad- 300014, Page-56.
2. आरती आलोक की; पृष्ठ-156

देते थे, ''शक्ति के कारण ही आपत्ति आयी और शक्ति के प्रभाव से वह दूर हो जाएगी। इस आपत्ति की कसौटी पर यदि संघ खरा उतरता है तो उसकी अधिक उन्नति ही होगी।''

'विस्तृत कारागार'

दिनांक 6 अगस्त 1948 को श्री गुरुजी निर्धारित समय पर रिहा कर दिए गए और वे पुन: नागपुर स्थित अपने घर लौटे। रिहाई के तुरन्त बाद ही यह समाचार मिला कि उनकी गतिविधियों पर कड़े बंधन सरकार ने लगा दिए हैं। सरकारी आदेश पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्री गुरुजी ने केवल इतना कहा कि 'मेरे लिए कारागृह की दीवारें अधिक विस्तारित कर दी गई हैं।'

श्री गुरुजी पर लगाए गए बन्धनों में सम्भवत: भूल से ही 'किसी को पत्र न लिखें' वाला बन्धन लिखना रह गया था। उसी का लाभ उठाकर श्री गुरुजी ने पं. नेहरू तथा सरदार पटेल को पत्र लिखकर संघ पर लगाए अकारण प्रतिबंध पर अपनी चिन्ता व्यक्त की।

न्याय की मांग

किन्तु सितम्बर की 24 तारीख तक न तो नेहरू जी से और न ही सरदार पटेल की ओर से कोई पत्रोत्तर प्राप्त हुआ। इसलिए श्री गुरुजी ने दि. 24 सितम्बर की पुन: दोनों के नाम पत्र भेजे।

इसके बाद पं.नेहरू और सरदार पटेल दोनों के पत्र आए। सरदार पटेल का पत्र 11 अगस्त के पत्र के उत्तर में था तो पं. नेहरू का पत्र 24 सितम्बर के पत्र के जवाब के रूप में था। सरदार पटेल ने अपने पत्र में लिखा, ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने संकटकाल में हिन्दू समाज की सेवा की, इसमें कोई संदेह नहीं। आप पर लगे प्रतिबंधों के बारे में मैं मध्य प्रान्त की सरकार से पूछताछ कर रहा हूं।''

नेहरूजी ने अपने पत्र में लिखा कि ''संघ साम्प्रदायिक है। संघ के नेता जो कुछ बोलते हैं, वह कृति में दिखाई नहीं देता।'' इस पत्र में संघ पर लगाए गए आरोपों के निराधार और झूठे सिद्ध होने तथा संघ पर से प्रतिबन्ध हटाए जाने सम्बन्धी श्री गुरुजी की मांग का कोई उल्लेख नहीं था।

सरदार पटेल से भेंट

संघ पर लगी पाबन्दी को हटाने की दृष्टि से राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के नाम लाखों पत्र भेजे गए। कारण चाहे जो हो, सरकार ने

13 अक्तूबर को श्री गुरुजी की गतिविधियों पर लगी सारी पाबन्दियां हटा लीं। 17 अक्तूबर को दिल्ली आगमन पर हज़ारों नागरिकों ने उनका भव्य स्वागत किया। श्री गुरुजी ने 17 व 23 अक्तूबर को सरदार पटेल से भेंट की। दोनों मुलाकातों में सरदार पटेल का यही आग्रह रहा कि 'संघ कांग्रेस में विलीन हो जाए।' श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में इसे अस्वीकार कर दिया।

न्यायबुद्धि जागृति का भरसक प्रयास

इस बीच 30 अक्तूबर को सरदार पटेल ने अचानक श्री गुरुजी के पास मौखिक संदेश भिजवा कर सूचित किया कि 'इससे आगे विचार विनिमय सम्भव नहीं, अत: आप नागपुर वापस चले जाएं।' इस संदेश का अर्थ समझने में श्री गुरुजी को देर नहीं लगी। उन्होंने 2 नवम्बर को दिल्ली में ही एक पत्रकार परिषद् आमन्त्रित की और संघ पर लगाए गए आरोपों का निराकरण करने वाले दो विस्तृत पत्रक प्रकाशनार्थ दिए। संघ को राजनीतिक दल में रूपान्तरित करने का प्रश्न उन्होंने स्पष्टत: ठुकरा दिया। दि. 3 से 13 नवम्बर तक पूरे दस दिन दिल्ली में ही रहकर श्री गुरुजी ने सरकार की न्यायबुद्धि जागृत करने का भरसक प्रयत्न किया। दि. 3 नवम्बर को पत्र लिखकर नेहरू जी से भेंट हेतु समय मांगा एवं दि. 8 नवम्बर के पत्र में श्री गुरुजी ने इस हेतु पुन: स्मरण करवाया। नेहरू जी ने दि. 10 नवम्बर के अपने पत्रोत्तर में दि. 3 व 8 के पत्रों की प्राप्ति स्वीकारते हुए लिखा, ''मुझे यह प्रतीत नहीं होता कि इस प्रकार की भेंट से कोई लाभ हो सकेगा। चूंकि प्रश्न गृह विभाग के हाथ में है, यह उचित है कि आप उससे सीधा पत्रव्यवहार करें।'' दि. 5 नवम्बर को श्री गुरुजी ने सरदार पटेल के नाम भी एक विस्तृत पत्र भेजा जिसमें कहा गया था कि अप्रचार से सत्य दीर्घकाल तक नहीं ढका जा सकता। इस पत्र में दि. 2 नवम्बर को सायंकाल दिल्ली के ज़िलाधीश द्वारा भेजी गई निर्बंध आज्ञा का उल्लेख किया गया था। उस निर्बंध आज्ञा के पृष्ठ पर श्री गुरुजी ने निम्नलिखित वाक्य अंग्रेज़ी में लिखे थे- 'मै समझता हूं कि यह आज्ञा पूर्णत: अनावश्यक और हमारे राज्य के कानून मानने वाले व्यक्ति की नागरिक स्वतन्त्रता का अपहरण है। मैं यह भी समझता हूं कि इस आज्ञा को स्वीकार करने से अन्याय तथा अनुचित कार्य का मैं भी भागी बनूंगा। इस आज्ञा को स्वीकार कर मैं स्वतन्त्र राज्य के नागरिक के कर्त्तव्यपालन से गिर जाऊंगा। अत: मुझे यह कहना पड़ता है कि मैं इस असाधारण आज्ञा को स्वीकार नहीं कर सकता।'

दि. 12 व दि.13 को श्री गुरुजी ने पुन: पं. नेहरू के नाम दो पत्र व दि. 13 को सरदार पटेल के नाम एक पत्र लिखा। किन्तु सरकार की ओर से बार-बार यह रट लगाई जाती रही कि 'पाबंदी हटाना सम्भव नहीं है। स्वयंसेवकों का व्यवहार नेताओं की नीति से मेल नहीं खाता। अत: भेंट वार्ता से कोई लाभ नहीं होगा। श्री गुरुजी को तत्काल नागपुर वापस लौट जाना चाहिए।' दि. 12 को सरकार की ओर से प्रसारित एक प्रैस विज्ञप्ति में तो यहां तक धमकी दी गई कि अगर श्री गुरुजी नागपुर वापस नहीं जाएंगे तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाएगा।

अन्तत: दि. 13 रात्रि को श्री गुरुजी को, स्वतन्त्रता के पूर्व कहे जाने वाले 'काला-कानून' (1818 का बंगाल स्टेट प्रिज़नर्स एक्ट) के अन्तर्गत गिरफ्तार कर के दि. 14 को प्रात: विमान से नागपुर लाकर नागपुर के कारागृह में रखा गया।[1]

सत्याग्रह पर्व

केवल विचार-विनिमय कर संघ पर लगाया गया प्रतिबंध हटाने के पक्ष में सरकार अनुकूल नहीं है, इसलिए उचित समय देखकर शांतिपूर्ण सत्याग्रह करना आवश्यक है, यह अब लगभग निश्चित हो गया था।

रणनाद (क्लेरियन काल)

श्री गुरुजी ने दि. 13 नवम्बर को सभी स्वयंसेवकों को सम्बोधित करते हुए एक पत्र लिखा जिसमें सरकार की सर्वथा अयोग्य हठवादिता के उल्लेख के साथ अपना संघ कार्य प्रारम्भ करने हेतु माननीय सरकार्यवाह को दी गई आज्ञा का स्पष्ट उल्लेख है। पत्र के साथ एक संदेश भी आंदोलन हेतु श्री गुरुजी ने दिया जो रणनाद (क्लेरियन काल) के नाम से प्रसिद्ध है। इस संदेश के अन्त में कहा गया था कि 'यह धर्म का अधर्म से, न्याय का अन्याय से, विशालता का क्षुद्रता से तथा स्नेह का दुष्टता से सामना है। विजय निश्चित है क्योंकि धर्म के साथ श्री भगवान् और उनके साथ विजय रहती है।'

'तो फिर हृदयाकाश से जगदाकाश तक भारत की जयध्वनि ललकार उठो और कार्य पूर्ण करके ही रहो। भारत माता की जय।'

सत्याग्रह प्रारम्भ

चारों ओर का वातावरण श्री गुरुजी की पुन: गिरफ्तारी से क्षुब्ध हो

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; चं.प.भिशीकर; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ 83&91.

उठा। सारे देश में योजनापूर्वक शांतिपूर्ण आन्दोलन की तैयारियां होने लगी। सरदार पटेल ने 5 दिसम्बर के अपने भाषण में कहा, ''कुछ लोग कहते हैं कि संघ सत्याग्रह प्रारम्भ करने जा रहा है। मैं उन्हें चेतावनी देता हूं कि इस ढंग की चुनौतियों का सामना करने के लिए हम तैयार हैं।''

9 दिसम्बर को सरकार्यवाह श्री भैयाजी दाणी के नेतृत्व में देश भर में शाखाएं प्रारम्भ करने का आन्दोलन भारत के सहस्रावधि नगरों तथा ग्रामों में प्रारम्भ हुआ। 'भारत माता की जय' तथा 'संघ अमर रहे ' के नारों में स्थान-स्थान पर लगने वाली शाखाओं को देखने के लिए असंख्य जनता उमड़ने लगी। लाखों दीवारें 'संघ पर हुआ अन्याय दूर करो' की मांग से रंग गईं। संघ पर लगाए गए आरोपों का खण्डन करते हुए उसकी विशुद्ध राष्ट्रीय भूमिका को प्रकट करने वाले पर्चों तथा पुस्तिकाओं की वर्षा होने लगी। संघ के इस आन्दोलन में हिन्दू समाज की एकात्मता व्यक्त होती थी। आंदोलन जाति, सम्प्रदाय, भाषा, पंथ, प्रांत जैसे बाह्य भेदों की अवहेलना करते हुए चलने लगा। हज़ारों युवकों ने नौकरी को लात मार दी, असंख्य छात्रों ने अध्ययन स्थगित कर दिया।[1]

कुल 77090 स्वयंसेवक सत्याग्रह करके गिरफ्तार हुए तथा विभिन्न अवधि के लिए कारागृह में रहे।[2]

अमानवीय अत्याचार

आंदोलन को दबाने के लिए पुलिस ने सत्याग्रहियों से अमानवीय व्यवहार किया। 26 दिसम्बर को चेन्नई के दैनिक 'हिन्दू' में विधायक स्वामी व्यंकटाचलम चेट्टी ने एक पत्र प्रकाशित करते हुए लिखा, ''विधि की कैसी विडम्बना है कि कांग्रेस जन आज सत्ता में हैं और वे संघ के नौजवानों पर पुलिस द्वारा चलाए जा रहे दमन चक्र का औचित्य इस आधार पर साबित कर रहे हैं कि ये नौजवान जिस संस्था से सम्बन्धित हैं, वह अवैध घोषित है तथा इनके विरुद्ध शक्ति को बढ़ा चढ़ाकर बताया जा रहा है और कि सरकार इन्हें जेल में भेजकर हीरो (पराक्रमी पुरुष) नहीं बनाना चाहती।''

13 दिसम्बर के चेन्नई के सत्याग्रह का वर्णन करते हुए 14 दिसम्बर के दैनिक 'हिन्दू' ने लिखा, ''उस दिन लगातार तीन बार सत्याग्रह

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2; पृष्ठ 39&44.
2. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ-166.

हुआ। पुलिस ने भीषण लाठी चार्ज किया, लाठियां दर्शकों पर भी बरसीं। 13 सत्याग्रही तो इतनी बुरी तरह घायल हुए कि कोतवाली ले जाने के स्थान पर पुलिस को बाध्य होकर उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा।''

आरती उतारकर सत्याग्रह हेतु विदाई

दिल्ली के दैनिक विश्वमित्र ने राजस्थान के बारे में अपने 17 दिसम्बर 1948 के अंक में लिखा, ''बीकानेर के सभी भागों में सत्याग्रह ज़ोरों से चल रहा है। बंदियों को छः छः माह के कठोर कारावास की सजा दी जा रही है। फिर भी माताएं अपने पुत्रों का स्वयं अपने हाथों से तिलक कर तथा उनकी आरती उतार कर सत्याग्रह हेतु विदाई दे रही हैं।''

पं. नेहरू की घोषणा

दि. 20 दिसम्बर 1948 को जयपुर में चल रहे कांग्रेस अधिवेशन में भाषण देते हुए पं. नेहरू ने इस आन्दोलन को 'संघ के बच्चों का दुराग्रह' बताते हुए घोषणा की कि 'हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर आन्दोलन को दबा देंगे। हम इन लोगों को फिर कभी सिर नहीं उठाने देंगे।'[1]

श्री. केतकर की सिवनी कारागार में श्री गुरुजी से भेंट

प्रसिद्ध मराठी पत्र 'केसरी' के सम्पादक श्री ग.वि.केतकर 12 व 19 जनवरी 1949 को श्री गुरुजी से सिवनी कारागार में मिले तथा कहा कि संघ यदि सत्याग्रह स्थगित कर दे तो बाहर के निष्पक्ष नेता मध्यस्थता करने का यथासंभव प्रयत्न करेंगे। इन भेदों के परिणामस्वरूप यह सोच कर कि इन वार्ताओं का कुछ अच्छा परिणाम निकल सकता है, आंदोलन स्थगित करने का निश्चय किया गया। 19 जनवरी को उनका इस विषय में वक्तव्य श्री केतकर ने प्रकाशित किया तथा 22 जनवरी को, बाहर रहकर सारे आन्दोलन का सूत्र संचालन करने वाले प्राध्यापक श्री महावीर जी की ओर से भी आंदोलन स्थगित करने की घोषणा हुई। श्री गुरुजी के इस निर्णय का सर्वत्र स्वागत हुआ।

सरकार को प्रतिबन्ध हटा देना चाहिए

चण्डीगढ़ से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक 'दि ट्रिब्यून' ने दिनांक 22 जनवरी 1949 के अपने अंक में लिखा, ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता ने आन्दोलन को बिना शर्त स्थगित कर प्रकरण के अन्तिम

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2; पृष्ठ-45.

निपटारे के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। अब आगे का कदम उठाने का कार्य सरकार का है, जिसे प्रतिबन्ध हटा देना चाहिए।''

लिखित संविधान एवं सरदार पटेल से पत्र व्यवहार

दूसरे मध्यस्थ तमिलनाडु के पूर्व महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) तथा उदार मतवादी गणमान्य नेता श्री. टी.आर.व्यंकटराम शास्त्री के सुझावानुसार श्री गुरुजी ने एक पत्र सहित संघ का लिखित संविधान 11.4.1949 को सरदार पटेल को प्रेषित किया। 3.5.49 को पत्रोत्तर प्राप्त होने पर श्री गुरुजी ने 17 मई को पुन: पत्र लिखा जिसका उत्तर 24 मई को दिया गया। दिनांक 1 जून को श्री गुरुजी ने एक और पत्र सरदार पटेल को लिखा, जिसमें श्री गुरुजी ने कहा, ''मेरे सरल और सत्य शब्द यदि सरकार को अरुचिकर लगते हों तो इसके आगे लेखन-संन्यास ही उत्तम होगा।'' इसके उत्तर में भारत सरकार के सचिव श्री आय्यंगार ने अपने 11 जून के पत्र में लिखा, ''इन परिस्थितियों में सरकार समझती है कि पत्राचार चालू रखने से कोई लाभ नहीं होगा।'' दिनांक 7 जून को श्री गुरुजी का स्थानान्तरण सिवनी कारागृह से बैतूल कारागृह में कर दिया गया।

प्रतिबन्ध न तो न्यायपूर्ण है और न युक्तिसंगत ही

सरकार की प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा से पूर्व प्रेषित तथा दिनांक 13 जुलाई, 1949 के 'दि हिन्दू' नामक पत्र में प्रकाशित वक्तव्य में श्री टी. आर. व्यंकटराम शास्त्री जी कहते हैं, ''....अब मैं समझता हूं कि योग्य समय आ गया है, जबकि मैं किसी अनौचित्य की आशंका के एक वक्तव्य दे सकता हूं।

''...जिस सम्प्रदायवाद के अत्युग्र वातावरण में रहने के लिए हम बाध्य हुए हैं उससे मैं यह अनुभव किए बिना नहीं रह सकता कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अत्यन्त विच्छिन्न हिन्दू समाज को एक सूत्रबद्ध करने का अच्छा कार्य कर रहा है। यह अन्य बुराईयों को दूर करने में भी सहायक हो सकता है, जो हमारी आंखों के सामने बढ़ रही हैं और सरकार का जिनकी ओर ध्यान जाना चाहिए।

''.....अब इस आशा के साथ मैं अपना कथन समाप्त करता हूं कि सरकार देखेगी कि किस प्रकार से प्रतिबन्ध हटाकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को पूर्वकाल के समान ही कार्य करने दिया जाए। मेरे विचार से प्रतिबन्ध और प्रमुख कार्यकर्ताओं को जेल में रखना न न्यायपूर्ण है, न तो बुद्धिमानी

है और न युक्तिसंगत ही है।''[1]

प्रतिबंध हटा

संघ के स्वयंसेवकों का मनोबल दिनोंदिन वृद्धिंगत हो रहा था। जनमानस में भी उनके बारे में पूर्ववत् आस्था उत्पन्न हो रही थी। अतएव अखिल भारतीय जनाधिकार समिति के अध्यक्ष पं. मौलिचन्द्र शर्मा के रूप में एक तृतीय मध्यस्थ के द्वारा सरकार के द्वारा स्वयं होकर ही वार्तालाप के पुनरारंभ का नाटक रचा गया। वे श्री गुरुजी को 10 जुलाई को बैतूल जेल में मिले। बातचीत के बाद संघ की भूमिका पुन: सुस्पष्ट करते हुए पं. मौलिचंद्र शर्मा को श्री गुरुजी ने एक निजी पत्र लिखा। इसी पत्र को आधार बनाकर दि.12 जुलाई सायंकाल केन्द्रीय शासन ने संघ पर से प्रतिबन्ध हटाने की घोषणा रेडियो पर की। दि. 13 प्रात:काल श्री गुरुजी बैतूल कारागृह से मुक्त हुए तथा दोपहर की ग्रांट ट्रंक एक्सप्रैस से वे नागपुर आ गए। स्टेशन पर 30 हज़ार जनता ने गगनभेदी जयजयकार से उनका स्वागत किया।

सत्य सिर पर चढ़कर बोला

कहावत है कि 'सत्य सिर पर चढ़कर बोलता है।' उसी के अनुसार संघ के बारे में फैलाए गए भ्रम का निराकरण अंतत: स्वयं सरकार को ही करना पड़ा। मुम्बई विधानसभा में जब कुछ सदस्यों ने प्रश्न पूछे कि क्या संघ के नेतृत्व ने सरकार को कोई अभिवचन दिया है जिसके कारण संघ पर से पाबन्दी हटाई गई है तो गृहविभाग द्वारा बिना संकोच के उत्तर दिया गया कि ''अनावश्यक प्रतीत होने के कारण ही रा.स्व.संघ पर से बिना शर्त प्रतिबन्ध उठाया गया है। सरसंघचालक जी ने किसी भी प्रकार का अभिवचन या आश्वासन नहीं दिया है। (मुम्बई विधानसभा कार्यवाही, दिनांक 14.10.1949, पृष्ठ 2126)[2]

प्रतिबन्ध काल के समय सहयोग करनेवाले श्रेष्ठ महानुभावों से प्रत्यक्ष भेंट कर तथा आवश्यक पत्र लिख कर प. पू. श्री गुरुजी ने कृतज्ञता व्यक्त की। इनमें पं. नेहरू, सरदार पटेल, डा. बाबासाहब अम्बेडकर, श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी, श्री काकासाहब गाडगिल, राजर्षि पुरुषोत्तम टंडन, श्री नानासाहब खापर्डे, श्री गोपाल स्वामीजी अय्यंगार, श्रीमान् त्रिलोकी नाथ जी भार्गव आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित थे।

---

1. राष्ट्राय नम:; मो.ग.तपस्वी; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ 566&71.
2. पहली अग्निपरीक्षा; पृष्ठ 236&37.

स्वागत पर्व

असत्य पर सत्य की विजय हुई। 12 जुलाई 1949 की सायंकाल तक संघ विरोधियों द्वारा नष्टप्राय समझा गया, उपेक्षा का पात्र बना हुआ संघ, देखते ही देखते भारत की कोटि-कोटि जनता का आकर्षण केन्द्र ही नहीं आशा केन्द्र भी बना हुआ दिखाई देने लगा। विगत लगभग दो वर्षों से भ्रामक दूषित प्रचार का शिकार बना संघ और उसके सरसंघचालक श्री गुरुजी जनता के शिरोभूषण बन गए। पुणे (24 जुलाई), नागपुर (29 जुलाई), दिल्ली (21 अगस्त), अमृतसर (28 अगस्त), लखनऊ (1 सितम्बर), पटना (4 सितम्बर), कोलकाता (8 सितम्बर), इन्दौर (12 सितम्बर), मुम्बई (6 नवम्बर), मदुरै (17 दिसम्बर) तथा अन्यत्र जहां भी वे गए सामान्य जनता ने ही नहीं प्रभावी जननेताओं ने भी उनका हार्दिक राजसी स्वागत किया। उनकी स्वागत सभाओं में लाखों लोग आए। सबने उनकी देवतुल्य वाणी को मन्त्र-मुग्ध होकर सुना तथा सराहा। अनेक संस्थाओं ने उन्हें मानपत्र अर्पित किए तथा उनसे देश का मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की।

साप्ताहिक ब्लिटज़ की टिप्पणी

देशभर में हो रहे इन स्वागत समारोहों तथा विशाल जनसभाओं के दृश्यों को देखकर संघ के प्रति सहानुभूति रखने वाले ही नहीं संघ के कट्टर विरोधी भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। संघ प्रतिबन्ध के दौरान संघ के विरुद्ध दिन-रात जनता को उभाड़ने वाले मुम्बई के अंग्रेजी साप्ताहिक ब्लिटज़ ने भी दिल्ली की 21 अगस्त की विराट सभा का वर्णन करते हुए लिखा, ''प्रतिबन्ध हटते ही संघ प्रमुख श्री गोलवलकर की लोकप्रियता आसमान की बुलंदियों को छूने लगी है। रिहाई के बाद सरदार पटेल और डॉ. राधाकृष्णन् के समान राष्ट्रीय नेता उनका सार्वजनिक अभिनन्दन कर रहे हैं। पुणे में दो लाख लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। दिल्ली में उनकी सभा में तीन लाख जनता उन्हें मन्त्रमुग्ध हो कर सुन रही थी। सभा में उपस्थिति हज़ारों गणवेशधारी स्वयंसेवकों में बड़ी संख्या में सरकारी कर्मचारी थे। नागपुर में विश्वविद्यालय छात्र-संघ ने उनका सफल स्वागत समारोह आयोजित किया। जयपुर व अमृतसर में उन्हें स्वागत कर रही लाखों की जनमेदिनी के बीच से सजी हुई कार में ले जाया गया।

बी.बी.सी. का प्रसारण

ब्रिटिश आकाशवाणी बी.बी.सी. संघ को दक्षिणपन्थी हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन ही घोषित करती रही थी। उसे भी अपने समाचार प्रसारण में कहना पड़ा कि ''नेहरू और सरदार पटेल के बाद कौन? इस प्रश्न का उत्तर वामपंथियों के नेता नहीं, संघ प्रमुख गोलवलकर हैं। वे जब दिल्ली में आए तो ढाई लाख लोग उनका भाषण सुनने उपस्थित हुए। भारत में केवल नेहरूजी ही इतनी बड़ी भीड़ जुटा सकते हैं। 19 मास तक प्रतिबन्धित रहनेवाली संस्था के प्रमुख का इतना भव्य स्वागत व इतनी बड़ी सभा अपने-आप में एक मिसाल है।'' उसे यह भी कहना पड़ा कि ''संघ को नाज़ी संगठन तथा संघ प्रमुख को तानाशाह प्रचारित किया जाता है। पर श्री गोलवलकर में तो ऐसा कुछ नहीं दिखाई पड़ा जिससे उनकी तुलना योरोपीय तानाशाह हिटलर या मुसोलिनी से की जा सके।

अनुशासन, लगन और आस्था का ज्वलन्त उदाहरण

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध दैनिक अमृत बाज़ार पत्रिका ने 28 अगस्त 1949 के अपने अंक में अपने दिल्ली स्थित संवाददाता डा. श्री धरणी के हवाले से लिखा, ''जब श्री एम.एस.गोलवलकर दिल्ली स्टेशन पहुंचे और उनका एक भारी भीड़ द्वारा स्वागत किया गया तो रंग-ढंग से प्रकट होता था कि एक विजेता के सभी गुण उनमें मौजूद हैं। हमारे देश की राजधानी में आयोजित सार्वजनिक सभा में उन्हें सुनने के लिए ऐसा विशाल जनसमूह एकत्रित हुआ जिसे दिल्ली के इतिहास में अभूतपूर्व कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता था कि इस विजय में उनकी स्थिति पं. नेहरू और सरदार पटेल से कम नहीं है। वहां पर एकत्रित विशाल जनसमूह का प्रबन्ध कांग्रेस की किसी भी सभा से उत्तम था। जब शान्ति की आवश्यकता होती तो ऐसी शान्ति हो जाती थी कि आलपिन गिरने पर उसकी आवाज़ भी सुनाई दे जाए और जब उत्साह प्रकट करने का अवसर आता तो सहस्रों कण्ठों से हर्ष ध्वनि और तालियों की गड़गड़ाहट एक साथ होती थी। काली टोपी पहने स्वयंसेवकों पर जनता को उतना ही भरोसा जान पड़ता था जैसा सेना तथा पुलिस के प्रबन्धकों पर रहता है। इन सबका कुछ मतलब है। अनुशासन, लगन और आस्था से क्या सम्भव है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण था। इससे यह भी प्रतीत होता था कि भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर एक नवीन नक्षत्र का उदय हुआ है।

सर्वविदित परीक्षाफल

श्री गुरुजी ने अपने भाषणों में कहा, ''प्रतिदिन हम संघ स्थान पर परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर, हमें शील दो, धैर्य दो, चारित्र्य दो। तो उन्होंने यह भी सोचा होगा कि जिन्हें दान देना है वे कितने योग्य हैं इसकी परीक्षा भी की जानी चाहिए। इसलिए यह ईश्वर द्वारा ली गई परीक्षा ही है, जिसका परीक्षाफल सर्वविदित है।''[1]

सत्कार पर्व

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने नागपुर की 9-10-11 जनवरी 1956 की अपनी बैठक में प. पू.श्री गुरुजी की 51 वीं वर्षगांठ सम्पूर्ण भारत में सम्पन्न करने का निर्णय लिया। श्री गुरुजी ने सत्कार कार्यक्रम की स्वीकृति इस आश्वासन पर दी कि इस अवसर का सदुपयोग संघ विचार व कार्य से समाज को परिचित कराने तथा संकलित निधि का उपयोग केवल संघ पर प्रतिबन्ध व उसके निवारण हेतु हुए विशाल सत्याग्रह के फलस्वरूप ऋणभार से मुक्त होने तथा संघ कार्य वृद्धि में ही होगा।

कार्यकारी मण्डल ने सार्वजनिक निवेदन किया तथा देश के कुछ प्रमुख नागरिकों जैसे पुणे के महर्षि कर्वे, भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री प्रेमनाथ डोगरा, हिन्दू महासभा के अध्यक्ष श्री एन.सी. चटर्जी, गोरखपुर के श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, झूसी (प्रयाग) के संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, श्री नानासाहब खापर्डे आदि ने इसका स्वागत किया।

रूपरेखा

कार्यक्रम की यह रूपरेखा निश्चित की गई कि 18 जनवरी 1956 के पश्चात् 51 दिन सभी प्रांत अपनी भाषा में आवाहन, पत्रक, वृत्तपत्रीय लेख, विशेषांक, संक्षिप्त जीवन परिचय एवं विपुल साहित्य तैयार करें तथा स्वयंसेवकों की टोलियां देश के न्यूनतम एक प्रतिशत समाज को इस काल में सम्पर्क कर संघ विचार व कार्य का परिचय दें। तत्पश्चात् श्री गुरुजी के लिए श्रद्धानिधि देने का निवेदन करें। प्रत्येक प्रांत में सार्वजनिक सत्कार के कार्यक्रम निर्धारित तिथि पर महानुभावों की एक स्वागत समिति गठित कर विशाल स्तर पर आयोजित करें।

शुभारम्भ

विजया एकादशी तदनुसार 8 मार्च 1956 को श्री गुरुजी के घर वेद

1. पहली अग्नि परीक्षा; पृष्ठ 241&44.

मन्त्रों के उच्चारण के मध्य जन्मदिन के विभिन्न आयोजन शास्त्रोक्त रीति से परम श्रद्धेय ताईजी की छत्रछाया में सम्पन्न हुए। इसी प्रकार देश के सभी प्रान्तों में जन्मदिवस के धार्मिक अनुष्ठान आयोजित हुए।

उसी दिन सायंकाल नागपुर में प्रथम सार्वजनिक सत्कार कार्यक्रम विख्यात इतिहासकार डा. राधाकुमुद मुखर्जी की अध्यक्षता में हुआ। हज़ारों गणवेशधारी स्वयंसेवकों सहित 1 लाख महिला व पुरुष कार्यक्रम में उपस्थित थे तथा श्री गुरुजी को सवा लाख राशि श्रद्धानिधि के रूप में अर्पित हुई। लगभग 100 स्थानीय संस्थाओं ने अभिनन्दन करते हुए उनकी दीर्घायु की मंगलकामना की।

समारोप कार्यक्रम

नागपुर से प्रारम्भ सत्कार व श्रद्धानिधि भेंट के कार्यक्रम कर्णावती (अहमदाबाद), जयपुर, पटना, कटक, गोहाटी, कानपुर, मदुरई, बंगलौर, तिरुअनन्तपुरम, पुणे, अकोला, गुंटूर एवं सभी प्रान्त केन्द्रों पर आयोजित हुए। श्री गुरुजी सभी कार्यक्रमों में उपस्थित रहते हुए अन्तिम कार्यक्रम हेतु 8 अप्रैल 1956 को दिल्ली पहुंचे। उसी दिन पाकिस्तान में भारत के पूर्व हाई कमिश्नर व संस्कृत के विद्वान डॉ. सीताराम की अध्यक्षता में दिल्ली का विशाल सार्वजनिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जिसमें पंजाब व जम्मू-काश्मीर के स्वयंसेवक तथा नागरिक भी भाग लेने के लिए आए। देशभर की संकलित निधि 20 लाख से ऊपर प्राप्त हुई।

दैनंदिन संघ कार्य विस्तार हेतु पोषक

संघ तथा समाज में संघ के प्रति सहानुभूति और श्री गुरुजी के प्रति आदर एवं स्नेहभाव हृदय में रखने वाले बन्धु, भगिनी तथा माताओं के सहयोग से सम्पन्न विभिन्न कार्यक्रमों में सत्कार के प्रत्युत्तर में श्री गुरुजी ने जो भाषण दिए, उनमें उन्होंने संघ कार्य को महान् तथा सर्वोपरि व स्वत: को गौण बताया। अनुशासन बल तथा संगठित राष्ट्रजीवन की निर्मिति हेतु सभी के सहकार्य हेतु उन्होंने निवेदन किया।

श्रेष्ठ महानुभावों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा तथा स्तुति गान सुनने के पश्चात् भी श्री गुरुजी की भाषा विनम्र, मधुर तथा मृदु होती थी। प्रासंगिक कार्यक्रमों का सदुपयोग दैनंदिन संघ कार्य विस्तार हेतु प्रेरक तथा पोषक मान कर करना चाहिए, यह उनकी धारणा थी।[1]

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ 168&73.

4.राष्ट्र प्रहरी

स्वातंत्र्योपरान्त भारत के नवनिर्माण के समय, उपस्थित हो रही विविध समस्याओं का हल ढूंढना भी आवश्यक था। कश्मीर विलयन की समस्या उन में से एक थी।

कश्मीर का विलय (1947)

संघ ने प्रारम्भ से ही यह प्रयास किया कि जम्मू-कश्मीर का विलय भारत मे हो और यथाशीघ्र हो। संघ ने सबसे पहले तो स्वतन्त्र कश्मीर का सपना संजोने हेतु महाराजा को प्रेरित करनेवाले, वहां के प्रधानमन्त्री श्री रामचन्द्र काक द्वारा अपनाई जा रही देशद्रोही भूमिका का काला चिट्ठा सप्रमाण उनके सामने प्रस्तुत कर श्री काक को पदच्युत करवाया। तत्पश्चात् महाराजा का मन विलय के पक्ष में करने हेतु बहुआयामी प्रयास किए। पहले तो जनजागरण प्रारम्भ किया गया, फिर व्यापक हस्ताक्षर अभियान विलय के पक्ष में जम्मू क्षेत्र में चलाया गया व जम्मू के संघचालक पं. प्रेमनाथ डोगरा के नेतृत्व में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन महाराजा को सौंपा।

प्रख्यात अधिवक्ता रायबहादुर बद्रीदास पंजाब प्रांत के संघचालक थे। वे महाराजा के महत्त्वपूर्ण मामलों में उनकी ओर से अदालत में पैरवी करते थे। वे सन 1947 के सितम्बर मास में श्रीनगर आकर महाराजा से मिले तथा उन्हें विलय हेतु राज़ी करने का भरपूर प्रयास किया। उत्तर प्रदेश के संघचालक बैरिस्टर नरेन्द्रजीतसिंह की ससुराल महाराजा के प्रमुख दीवान के यहां थी। इस नाते उनके भी महाराजा से निकट के सम्बन्ध थे। वे भी महाराजा को प्रभावित करने का प्रयास करते रहते थे। श्री बलराज मधोक के समान जिन कार्यकर्ताओं का निकट सम्बन्ध महाराजा से था, वे पाकिस्तानी खतरे व उसकी नीयत की भी जानकारी उनको देते रहते थे। ये सारे प्रयास श्री गुरुजी की प्रेरणा से व उनकी जानकारी में चल रहे थे।

श्री गुरुजी का श्रीनगर आगमन

महाराजा से भेंट कर उन्हें राजी करने हेतु बैरिस्टर (नरेन्द्रजीत सिंह जी) व दिल्ली प्रांत प्रचारक श्री वसंतराव ओक के साथ श्री गुरुजी 17 अक्तूबर, 1947 को विमान द्वारा श्रीनगर पहुंचे। पंजाब प्रान्त प्रचारक श्री माधवराव मूले भी वहां उपस्थित थे। 18 अक्तूबर को महाराजा से मिलने, श्री गुरुजी उनके निवास 'कर्ण महल' पहुंचे। महाराजा हरिसिंह व महारानी तारा दोनों श्री गुरुजी के स्वागत के लिए द्वार पर उपस्थित थे।

लगभग साढ़े दस बजे चर्चा प्रारम्भ हुई। महाराजा के भेंट के समय संघ का अन्य कोई अधिकारी वहां उपस्थित नहीं था। श्री गुरुजी को विदा करते समय महाराजा ने कहा कि मैं आपके सुझाव पर अवश्य विचार करूंगा। विदाई के समय उन्होंने श्री गुरुजी को दो बहुमूल्य कश्मीरी शाल भी भेंट किए।

श्री गुरुजी के इस प्रवास में सरदार पटेल ने सहयोगी की भूमिका निभायी। श्रीनगर से वापस लौटकर उन्होंने महाराजा की अनुकूल मन:स्थिति से सरदार पटेल को अवगत कराया। सौभाग्य से तब तक श्री मेहर चन्द महाजन जम्मू-कश्मीर के प्रधानमन्त्री का पदभार सम्हाल चुके थे। वे भी महाराजा को बताते रहे कि श्री गुरुजी का परामर्श सही है। अंतत: महाराजा ने विलय का निर्णय किया और 26 अक्तूबर को राज्य के विलय पत्र पर हस्ताक्षर हो गए। यह कहा जा सकता है कि श्री गुरुजी की यह भेंट महाराजा को विलय का निर्णय करवाने में निर्णायक रही क्योंकि इस भेंट के बाद ही विलय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। पाकिस्तानी हमले ने उस निर्णय पर अन्तिम मुहर लगवाई।[1]

अद्‌भुत शौर्य और क्षमता का प्रकटीकरण

दि. 27 अक्तूबर को सुबह से ही भारतीय सैनिक श्रीनगर के हवाई अड्डे पर उतरने लगे। किन्तु उधर के हवाई अड्डे की स्थिति विमान उतरने लायक नहीं थी। वह पूरा हिमाच्छादित था। ऐसी स्थिति में भारतीय सैनिकों के आने से पूर्व ही संघ के सैकड़ों स्वयंसेवकों ने हवाई अड्डे पर पहुंच कर उसे साफ कर दिया। इस अवसर पर संघ के स्वयंसेवकों का अद्‌भुत शौर्य और क्षमता प्रकट हुई। पाकिस्तानी आक्रांताओं के आक्रमण सम्पूर्ण सीमा पर फैल रहे थे। जम्मू की 20 हज़ार मुस्लिम आबादी भी उनको सहयोग देने की तैयारी में थी किन्तु स्वयंसेवकों ने पहले ही उस शरारत पर काबू पा लिया और जम्मू की रक्षा की। जम्मू के बिना कश्मीर के बचने की कोई आशा नहीं रह जाती। तत्पश्चात् 500 स्वयंसेवकों ने 7 दिन तक लगातार चौबीसों घण्टे कार्य कर जम्मू हवाई अड्डे को भारतीय डाकोटा के उतरने लायक बना दिया तथा इस प्रकार भारतीय सेना के सुरक्षित आगमन के लिए सड़कों की आवश्यक मरम्मत इतने कम समय में पूर्ण करने का भी कीर्तिमान स्थापित किया।[2]

1. ज्योति जला निज प्राण की; माणिक चन्द्र वाजपेयी, श्रीधर पराडकर; सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ 229&32.
2. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ 160&61.

वर्तमान कश्मीर समस्या का हल

कश्मीर समस्या के हल के बारे में अक्तूबर 1967 में 'आर्गेनाइज़र' के सम्पादक से बातचीत करते हुए श्री गुरुजी कहते हैं, ''कश्मीर को अधिकार में रखने का एक ही रास्ता है और वह है सम्पूर्ण विलय। धारा 370 समाप्त करनी चाहिए। हमारे राष्ट्रीय हित क्या हैं, इस का निर्णय कर हमें उनकी रक्षा हेतु कदम बढ़ाना चाहिए। तथाकथित विश्वमत की हम चिन्ता न करें। जूनागढ़, हैदराबाद या गोवा के सम्बन्ध में क्या यह विश्वमत कभी आपके पक्ष में था ? भारत के हितों की दृष्टि से ही भारत का प्रशासन चलना चाहिए, परकीय राष्ट्रों के हितों में उनकी आज्ञानुसार नहीं। केवल विश्वमत पर आधारित हमारी नीतियां हुई तो इसका अर्थ होगा कि हम वृद्ध आदमी, उसका पुत्र और उनके गधे की कहानी दोहरा रहे हैं।''[1] आज भी श्री गुरुजी के ये विचार समीचीन लगते हैं।

हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत एक

'कश्मीर के भविष्य का प्रश्न कश्मीरी जनता का ही प्रश्न है, पं. नेहरू के इस मत का प्रतिवाद करते हुए दि.18.02.1957 के 'पाञ्चजन्य' में छपे अपने वक्तव्य में श्री गुरुजी ने कहा, ''इलाहाबाद में हुए प्रधानमन्त्री नेहरू के भाषण से कुछ गलतफहमी पैदा हो गई है। उन्होंने इलाहाबाद में कहा था कि कश्मीर का प्रश्न कश्मीरियों का अपना है, उसमें भारतीयों को दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। यह भाषण मन्त्रिमण्डल के निर्णय की भावना के विपरीत है और इसके कारण यह संदेह उत्पन्न हो सकता है कि कश्मीर और भारत दोनों अलग हैं। हमारे प्रधानमन्त्री को चाहिए कि वे ऐसा वक्तव्य दें कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक और अविभाज्य है तथा ऐसी भ्रांत बातें करना छोड़ दें, जिसके कारण कश्मीर के प्रश्न को क्षति पहुंचे तथा राष्ट्रीय एकता को एक प्रकार का धक्का लगे।''[2]

भाषावार राज्य रचना

सन् 1952 के बाद देश में भाषानुसार प्रांत रचना की मांग बलवती होने लगी। इस प्रश्न को आधार बनाकर भावनाएं भड़काने का कार्य कुछ नेताओं ने प्रारम्भ कर दिया। राज्य पुनर्गठन आयोग के गठित होने पर विभिन्न प्रकार की मांगे तथा परस्पर विरोधी दावे सम्मुख आने लगे। इन्हीं दिनों

१. Spotlights, M.S.Golwalkar,Sahitya Sindhu, Bangalore (1975), p.p. 75-76.

2. पाञ्चजन्य; 18- 2- 1957; पृष्ठ-11-

मुम्बई में प्रान्तीयता विरोधी सम्मेलन प.पू.श्री गुरुजी की अध्यक्षता में हुआ था। श्री. जमनादास मेहता स्वागताध्यक्ष थे तथा मुम्बई के महापौर श्री दाह्याभाई पटेल ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। इस अवसर पर अपने अत्यन्त प्रखर तथा विचार प्रवर्तक, अध्यक्षीय भाषण (दि. 31.05.1954 के 'पाञ्चजन्य' में छपे) में श्री गुरुजी ने कहा, ''मैं एक देश, एक राज्य का समर्थक हूं। एक ओर सारे संसार का एक राज्य बने ऐसा कहा जाता है और दूसरी ओर सम्पूर्ण भारत एक राज्य हो, ऐसा विचार किसी ने रखा तो कुछ लोगों की भौंहे तन जाती हैं।

''वास्तव में भारत में एक ही केन्द्र शासन होना चाहिए और शासन व्यवस्था की दृष्टि से राज्य के स्थान पर विभाग होने चाहिए। आज हमारे नेतागण महाराष्ट्रीय, गुजराती आदि भिन्न संस्कृतियों की बातें करते हैं। किन्तु हमारी तो आसेतु हिमाचल एक ही संस्कृति है तथा संस्कृति तो राष्ट्र की आत्मा होती है। इस कारण हमें देश की संस्कृति, परम्परा, राष्ट्रधर्म तथा कुलधर्म की रक्षा करनी चाहिए। देश को धर्मशाला बनाकर काम नहीं चलेगा। सौदेबाज़ी की भाषा रोककर हमें राष्ट्र का विचार करना चाहिए।''[1]

सरकारी दमन प्रवृत्ति का बड़ा विरोध

भाषानुसार प्रांत रचना का विरोध करते समय श्री गुरुजी ने अपने राष्ट्रीय विवेक को सदैव जागृत रखा। इस विवेकशीलता की अनुभूति संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन के समय भी हुई। भाषा के आधार पर आन्ध्र का राज्य निर्माण करने को मान्यता प्रधानमंत्री पं. नेहरू द्वारा प्रदान कर दी गई थी किन्तु गुजरात और महाराष्ट्र को मिलाकर विशाल द्विभाषी राज्य बनाया गया। इस निर्णय के विरोध में संयुक्त महाराष्ट्र समिति के नेतृत्व में छिड़े आन्दोलन को कुचलने हेतु जब मुम्बई सरकार ने दमननीति को अपनाया तो इस प्रवृत्ति का कड़ा विरोध करते हुए दि. 23-07-1956 को दिए एक वक्तव्य में श्री गुरुजी कहते हैं, ''सरकार गुण्डों की सहायता से सत्याग्रह को कुचलना चाहती है। सरकार द्वारा प्रोत्साहित गुंडाशाही को सहना असम्भव है। इस गुंडागर्दी का यदि मैंने विरोध नहीं किया तो माना जाएगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं किया। मैं कर्त्तव्यच्युत नहीं रह सकता।''[2]

इसी प्रकार जब प्रतापगढ़ में श्री छत्रपति शिवाजी की मूर्ति के अनावरण कार्यक्रम पर संयुक्त महाराष्ट्र समिति ने पं. नेहरू के आगमन व

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-3; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 70&71.

2. वही; पृष्ठ 137&38-

अनावरण कार्यक्रम का कड़ा विरोध करने का निश्चय किया तो श्री गुरुजी को यह अत्यन्त अनुचित लगा। इस अवसर पर दि. 25.11.1957 को 'ऑर्गेनाइज़र' में प्रकाशित एक परिपत्र में उन्होंने कहा, ''छत्रपति शिवाजी की मूर्ति का अनावरण करने हेतु मान्यता देते समय पं. नेहरू को झुकना पड़ा है। आज तक अपनी ही अहंकारी प्रवृत्ति में डूबे रहने के कारण उन्होंने अनेकों बार शिवाजी का अपमान किया है। आज सम्पूर्ण भारत के शासनसूत्रधार पं.नेहरू विलम्ब से ही क्यों न हो, एक असामान्य राष्ट्रपुरुष के प्रति आदर व्यक्त करने हेतु पधार रहे हैं। शिवाजी महाराज न केवल महाराष्ट्र के अपितु सम्पूर्ण भारत के वन्दनीय महापुरुष हैं। साथ ही इस युगपुरुष की यथार्थ महत्ता समूचे विश्व को बताने वाला यह प्रसंग है। यह एक अपूर्व योग हमें प्राप्त हुआ है, इसमें अपशकुन नहीं होना चाहिए। ऐसा प्रयत्न कोई न करे। ऐसा करने से शिवाजी के बारे में अनादर तथा अश्रद्धा का भाव ही प्रगट होगा। इस कारण मैं सभी बन्धु, भगिनी तथा माताओं से आग्रहपूर्वक विनती करता हूं कि वे विवेकबुद्धि से काम लें। अपना विवेक जागृत रख, इस कार्यक्रम में भाग लें।''[1]

श्री गुरुजी के इस वक्तव्य के फलस्वरूप अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं व्यक्त हुईं। परन्तु परिपत्र के कारण संयुक्त महाराष्ट्र के समर्थकों को विचार करने हेतु बाध्य होना पड़ा तथा परिस्थिति को नया मोड़ मिला।

पंजाबी सूबा

कुछ समय पश्चात् पंजाबी सूबे का विवाद निर्माण हुआ तथा उसमें से ही पंजाब और हरियाणा दो शासकीय राज्य निर्मित हुए। इस विवाद के परमोच्च शिखर के समय भी श्री गुरुजी ने राष्ट्रीय एकता तथा सब भारतीय भाषाएं राष्ट्रीय भाषाएं हैं, की अपनी भूमिका को दृढ़ता से प्रस्तुत किया। श्री महीप सिंह, खालसा कालेज, मुम्बई को दि. 12.09.1955 के लिखे पत्र में वे कहते हैं, ''भाषा का प्रेम भी क्यों न हो, वह यदि विच्छेद के लिए प्रयुक्त हो, तो त्याज्य ही मानना चाहिये।''[2]

राष्ट्रीय एकात्मता का पोषण

संघ के भूतपूर्व सरकार्यवाह श्री माधवराव मूले पंजाब से सम्बन्धित अपने एक संस्मरण में कहते हैं, ''श्री गुरुजी का अथक और

1. साप्ताहिक 'आर्गेनाइज़र' नई दिल्ली; 25-11-1957; पृष्ठ-7-
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 455.

असीम परिश्रम राष्ट्रीय एकात्मता और अखण्डता के प्रति समर्पित था। राजनैतिक स्वार्थ की आंधी में बड़े-बड़े लोगों के पैर उखड़ते देखे गए हैं। ऐसे व्यामोह एवं स्वार्थ की आंधी के बीच भी श्री गुरुजी को हमने राष्ट्रहित में अडिग पाया है। पंजाब की ही बात है। पंजाबी और हिन्दी का भाषाई आन्दोलन चल रहा था। हिन्दुओं में आपसी तनाव था। केशधारी और गैर केशधारी बन्धुओं के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ था। जब श्री गुरुजी पंजाब के दौरे पर आए तो इस विवाद के सम्बन्ध में उनके विचार सुनने के लिए अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना आदि सभी स्थानों के कार्यक्रमों में जनता बड़ी संख्या में उपस्थित हुई। श्री गुरुजी ने विवाद में उलझे हुए दोनों पक्षों को इस कटुता के लिए ज़िम्मेदार ठहराया। उन्होंने कहा, ''सत्य स्वीकार न करने के कारण ही यह झगड़ा खड़ा हुआ। पंजाब में पंजाबी मातृभाषा है, इसे सभी को स्वीकार करना चाहिए। साथ ही सिख बन्धुओं को अपने को हिन्दू कहलाने में कदापि इन्कार नहीं करना चाहिए।''[1]

पुर्तगाली आधिपत्य की समाप्ति

अंग्रेजों के सन् 1947 में भारत छोड़ने के पश्चात् भी पुर्तगाली शासक गोवा में डटे हुए थे। गोवा को पुर्तगालियों के शिकंजे से मुक्त करवाने हेतु पुणे में 'गोवा विमोचन समिति' की स्थापना की गई। केन्द्रीय शासन से आवश्यक अनुरोध करने के उपरान्त 1955 में 'गोवा मुक्ति आन्दोलन' प्रारम्भ किया गया जिसमें स्वयंसेवकों ने सोत्साह भाग लिया। राजाभाऊ महंकाल नाम का एक स्वयंसेवक पुर्तगालियों द्वारा दागी गई गोलियों से शहीद भी हो गया। निर्मम अत्याचारों के बावजूद भी सत्याग्रह चलता रहा। पुर्तगालियों के उपनिवेश के विरोध के स्थान पर भारत सरकार ने सत्याग्रहियों पर ही बन्धन लगाने प्रारम्भ किए। आन्दोलन एवं सरकारी नीति का सूक्ष्मता से अवलोकन कर रहे प.पू.श्री गुरुजी ने दि. 20.08.1955 को मुम्बई से प्रकाशित अपने वक्तव्य में कहा, ''गोवा में पुलिस कार्रवाई करने और गोवा को मुक्त कराने का इससे ज्यादा अच्छा अवसर कोई नहीं आएगा। इससे हमारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी तथा आस-पास के जो राष्ट्र सदा हमें धमकाते रहते है, उन्हें भी पाठ मिल जाएगा।

''भारत सरकार ने गोवा मुक्ति आन्दोलन का साथ न देने की घोषणा कर मुक्ति-आन्दोलन की पीठ में छुरा मारा है। भारत सरकार को

1. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-1; राधेश्याम बंका; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ-335.

चाहिए कि भारतीय नागरिकों पर हुई इस गोलीबारी का प्रत्युत्तर दे और मातृभूमि का जो भाग अभी तक विदेशियों की दासता में जकड़ा हुआ है, उसे अविलम्ब मुक्त करने के उपाय करे। झूठी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का विचार हृदय से निकाल कर कदम आगे बढ़ाना चाहिए। मुम्बई में पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर जो गोली चलाई, वह वीरता गोवा की सीमा पर दिखाई जाती, तो आठ दिनों में पुर्तगाली गोवा से भाग खड़े होते। घर के लोगों पर ही गोली चलाने में कोई वीरता नहीं है। प्रदर्शनकारियों को चाहिए कि वे हड़ताल और प्रदर्शन के समय किसी भी अवस्था में शान्ति भंग न होने दें।[1]

श्री गुरुजी गोवा के प्रश्न को विशुद्ध राष्ट्रीय प्रश्न मानते थे। वे कहते थे कि यदि पं. नेहरू स्वयं तिरंगा ध्वज हाथ में लेकर गोवा मुक्ति आन्दोलन का नेतृत्व करते हैं तो अपेक्षित संख्या में स्वयंसेवकों को सत्याग्रह में भेजने की उनकी तैयारी है।

दादरा और नगर हवेली की मुक्ति

श्री गुरुजी की इच्छा के अनुरूप दिनांक 2 अगस्त, 1954 को एक-सौ स्वयंसेवकों ने दादरा और नगर हवेली की पुर्तगाली बस्तियों पर अचानक आक्रमण कर दिया। इसका नेतृत्व पुणे के संघचालक स्वर्गीय विनायक राव आपटे कर रहे थे। अनेक प्रमुख संघ कार्यकर्ताओं ने इस कार्य में भाग लिया। उन्होंने गुरिल्ला रणनीति अपनाई और सेल्वासा के पुलिस मुख्यालय पर आक्रमण करके वहां के 175 सैनिकों को बिना शर्त आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। वहां राष्ट्रीय तिरंगा फहराकर उसी दिन वह प्रदेश केन्द्रीय सरकार को सौंप दिया गया। दिनांक 2 अगस्त, 1968 को जब इस ऐतिहासिक घटना की रजत-जयन्ती मनायी गयी तो सेल्वास की जनता ने 100 स्वतन्त्रता-सेनानियों को आमन्त्रित करके उनका अभिनन्दन किया। सन 1987 मे महाराष्ट्र प्रदेश सरकार ने भी उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में मान्यता दी और सम्मान प्रदान किया।[2]

गोवा के बारे में भी ऐसी योजना चल ही रही थी कि सन 1962 में सरकार ने ही फौजी कार्यवाही करके गोवा को मुक्त करा लिया। भले ही यह कार्रवाई देर से की गई तो भी देश ने तथा प.पू. श्री गुरुजी ने इसका स्वागत किया।

गोवा की स्वतन्त्रता के बाद पं. नेहरू तथा अन्य राजनीतिक नेताओं

1. श्री गुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-3; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-136.
2. कृतिरूप संघ दर्शन; हो.वे.शेषाद्रि; सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली; 2003 (वि.2059); पृष्ठ-26.

ने यह कहना शुरु किया कि वे गोवा की पृथक् संस्कृति को सुरक्षित रखेंगे। इस पर श्री गुरुजी ने डंके की चोट पर कहा कि भारत का ही अंग होने के कारण गोवा की संस्कृति भी भारतीय ही होगी।

नेपाल से भाव बन्धन प्रगाढ़ करने की दिशा में

श्री गुरुजी को राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा की भारी चिन्ता रहती थी। विशेषत: उनकी दृष्टि हिमालयवर्ती प्रदेश में चीनियों की आक्रामक गतिविधियों पर थी। इस हेतु सन 1963 में वे नेपाल गए। उस समय नेपाल से हमारे सम्बन्ध एक प्रकार से रसातल को जा चुके थे । महाशिवरात्रि के दिन महादेव पशुपतिनाथ का दर्शन करके श्री गुरुजी ने नेपाल-नरेश से भेंट की और हिन्दुओं तथा हिन्दुत्व सम्बन्धी समस्याओं पर उनसे अन्तरंग वार्ता की। उन्होंने नेपाल-नरेश को संघ-सम्मेलन को सम्बोधित करने का भी निमन्त्रण दिया। नरेश भी अनुकूल रूप से सहमत हुए। वापस लौटने पर श्री गुरुजी ने प्रधानमन्त्री श्री नेहरू और गृहमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को पत्र लिखे तथा उन्हें वार्ता की दिशा से अवगत कराया। 25 दिसम्बर, 1964 को रेडियो नेपाल ने घोषणा की दि. 14 जनवरी 1965 को नागपुर में मकर सक्रान्ति समारोह को सम्बोधित करने के लिए संघ के निमन्त्रण को महाराजा महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया है।

इस समाचार ने चीन और पाकिस्तान को हिला दिया। नेपाल अपने आन्तरिक मामलों में भारत की उत्तेजक गतिविधियों की प्रतिक्रियास्वरूप इन देशों के निकट आता जा रहा था। वास्तव में तो हमारी सरकार के लिए यही उचित होता कि इस नए उपक्रम का वह हृदय से स्वागत करती। इससे उत्तर के एक प्रहरी से उसके बिगड़े सम्बन्ध पुन: सहज बन जाते। यदि दोनों देशों के समान प्राचीन धार्मिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्कों को पुन: पुष्ट किया जाता तो नेपाल से अटूट सम्बन्ध स्थापित करने का उससे बढ़कर अचूक अन्य आधार नहीं हो सकता था। पर कैसा दुर्भाग्य! भारत सरकार ने न जाने किन कारणों से नेपाल-नरेश को भारत न आने का 'परामर्श' दिया। 11 जनवरी 1965 को नरेश ने श्री गुरुजी को पत्र लिखा। उसमें कहा गया था, ''मुझे बड़ा क्षोभ है कि एक हिन्दू समारोह में मुझे हिन्दू के नाते भाग लेने से वंचित किया जा रहा है।'' इस अवसर के लिए उन्होंने एक लम्बा तथा प्रेरणादायी संदेश भी भेजा। उसमें हिन्दुओं को स्मरण कराया गया कि उनके संगठन की आवश्यकता है और उन्हें अपने विश्वसनीय ध्येय को पूरा करना

है। उन्हें तो समूची संतप्त मानव जाति तक हिन्दुत्व का सान्त्वना भरा स्पर्श पहुंचाना है। इस सम्बन्ध में उन्होंने संघ की भूमिका की भी सराहना की।

नेपाल के प्रधानमन्त्री डॉ. तुलसी गिरि ने भारत के विचित्र व्यवहार पर खेद प्रकट करते हुए कहा, ''यदि महामहिम रा.स्व.संघ को सम्बोधित करते तो उसमें क्या अनुचित होता? जब पोप ने मुम्बई में चुखारिस्त सम्मेलन को सम्बोधित किया तो किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। यदि कोई हिन्दू नरेश हिन्दू संगठन को सम्बोधित करे और हिन्दुत्व की एकता पर बल दे तो उस पर किसी को क्यों आपत्ति हो?''

भीषण त्रुटि का अविस्मरणीय परिमार्जन

तथापि इस भीषण त्रुटि का परिमार्जन तब हुआ, जब 20 अक्तूबर, 1997 को त्रिदिवसीय विराट् हिन्दू सम्मेलन के उद्घाटन के लिए हरिद्वार की पुण्य नगरी में संसार के एकमात्र हिन्दू महाराजा, नेपाल नरेश महामहिम श्री वीरेन्द्र विक्रम शाह देव और महारानी ऐश्वर्य राज्यलक्ष्मी का आगमन हुआ। सारा हरिद्वार उनके स्वागत में भगवे रंग में रंग गया। इस सम्मेलन का आयोजन कांची कामकोटि पीठ और भारत खण्ड के विश्व हिन्दू महासंघ द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। महाराजा और महारानी का हार्दिक अभिनन्दन करने के लिए ऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रांगण में लगभग एक लाख लोग एकत्र हुए। इस अवसर का असाधारण महत्त्व इस बात को लेकर था कि नेपाल के किसी राज-दम्पति ने भारत में किसी सार्वजनिक समारोह में पहली बार भाग लिया था। 'नेपाल-नरेश की जय', 'भारत-नेपाल एकता ज़िंदाबाद', 'भारत माता की जय' जैसे हर्षोल्लासपूर्ण उद्घोषों से हरिद्वार का सारा आकाश गूंज उठा था। यह भारतवासियों का नेपाल के प्रति सच्चे अनुराग का उद्घोष था। विश्व हिन्दू परिषद् के कार्यकारी अधयक्ष श्री अशोक सिंहल ने जब नेपाल-नरेश का परिचय न केवल 2 करोड़ नेपाली हिन्दुओं के शासक बल्कि संसार भर के अरबों हिन्दुओं के निर्विवाद हृदय-सम्राट के रूप में दिया तो वह श्रोताओं की मनोभावना की यथार्थ अभिव्यक्ति ही थी। जगद्गुरु शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती, उनके कनिष्ठ सहयोगी श्री स्वामी विजयेन्द्र सरस्वती और श्री सत्यमित्रानन्द गिरि के आशीर्वचनों ने सारे अवसर को और भी पावन कर दिया। तत्कालीन सरसंघचालक प्रोफैसर राजेन्द्र सिंह के ये उद्गार, 'भारत और नेपाल विश्व में दो सबसे बड़े हिन्दू राष्ट्र हैं। यद्यपि दो शरीर हैं,

लेकिन इनकी आत्मा एक है', अत्यन्त सारगर्भित थे। उन्होंने यह आशा भी व्यक्त की कि नेपाल-नरेश और कांची के शंकराचार्यों के प्रयासों से हिन्दू एकता के बन्धन निश्चित रूप से और सुदृढ़ होंगे।

हर्ष विभोरक ऐतिहासिक दृश्य

नेपाल-नरेश की हरिद्वार यात्रा के प्रसंग में भावाकुलता का चरम आवेश तब दृष्टिगोचर हुआ जब राज-दम्पति गंगा मैया की परम्परागत भक्तिपूर्ण पूजा के लिए 'हरि की पौड़ी' पहुंचे। वस्तुत: नेपाल-नरेश पूजा के लिए सारी सामग्री नेपाल से ही अपने साथ लेकर आए थे। उनके साथ उनके कुलगुरु थे। राज-दम्पति ने गंगा मैया की देदीप्यमान आरती उतारी। उनके साथ ही वहां उपस्थित भक्तों द्वारा हज़ारों आरतियां एक साथ सम्पन्न हुईं।[1]

आशादीप

प्रतिबन्ध समाप्ति के बाद हुए अपने देशव्यापी प्रवास में श्री गुरुजी असमनहींजापाएथे।अत:वेसन1950केफरवरीमासमें असम गए। वहां कुछ राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए।

पूर्वी बंगाल के निर्वासितों का करुण चीत्कार

सन 1950 के प्रारम्भ में ही पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांगला देश) में हिन्दू-नागरिकों पर अप्रत्याशित अत्याचार हुए। उनका सब कुछ छीनकर उन्हें घरों से निष्कासित कर दिया गया। ऐसी भयंकर परिस्थिति में उन्होंने प्राण त्याग कर देना या अपना सर्वस्व छोड़कर भारत आना स्वीकार किया, परन्तु मतान्तरित नहीं हुए। इसके फलस्वरूप बंगाल और असम में निर्वासितों की बाढ़ सी आ गई।

'वास्तुहारा सहायता समिति' का गठन

स्थिति और भी खराब हो गई। एक ओर पाकिस्तानी अत्याचार हो रहे थे तो दूसरी ओर केन्द्रीय शासन जड़ पाषाण के समान मौन हो गया था। इससे रुष्ट होकर डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी सरकार से अलग हो गए। श्री गुरुजी ने स्वत: कलकत्ता आकर निर्वासितों की दशा का निरीक्षण किया तथा उनका हृदय विदीर्ण करने वाला करुण चीत्कार सुनकर वे अत्यन्त व्यथित

1. कृतिरूप संघ दर्शन; हो.वे. शेषाद्रि; सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली; 2003 (वि.2059); पृष्ठ 32&34-

हुए। उन्हीं के आदेशानुसार, बंगाल में संघ कार्य की सीमित शक्ति होते हुए भी दिनांक 8 फरवरी 1950 को सुविख्यात बैरिस्टर रणदेव चौधरी की अध्यक्षता में 'वास्तुहारा सहायता समिति' का कोलकाता में गठन किया गया।

श्री गुरुजी का प्रथम वक्तव्य (दिल्ली : 7 मार्च, 1950)

श्री गुरुजी कोलकाता से नई दिल्ली आए तथा वहां से 7 मार्च को दिए एक वक्तव्य में उन्होंने आपत्तिग्रस्त बन्धुओं की सहायता हेतु तन-मन-धन पूर्वक सहयोग का निवेदन किया। इस वक्तव्य में उन्होंने कहा, ''मैं हाल ही में बंगाल जा कर आया हूं और अनेक सूत्रों से पूर्वी बंगाल की भी जानकारी प्राप्त करने के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि वहां के हिन्दुओं की तुरन्त सहायता करना अत्यन्त आवश्यक है। वहां की जनता की दुर्दशा का वर्णन करना असंभव है। पूर्वी बंगाल के लौहावरण को चीरकर अमानुषिक हत्याओं, लूटमार, आगजनी, बलात्कार तथा धर्मपरिवर्तन के समाचार नित्य प्राप्त हो रहे हैं।''

''इन डेढ़ करोड़ अभागे बन्धुओं को हम क्या कहेंगे - स्वदेशी या विदेशी? पुनर्वास मन्त्री ने उन्हें विदेशी मानकर धारणा बना ली है कि उनका अनावश्यक बोझ हमारे ऊपर आ पड़ा है। लेकिन क्या यह धारणा उचित है? सौम्यतम शब्द का उपयोग करते हुए भी यही कहा जा सकता है कि यह विचार एकदम अमानुषिक है।''

इस वक्तव्य में शासनकर्ताओं से अपील करते हुए उन्होंने कहा, ''शासन तथा विशेषतया प्रधानमन्त्री से मेरी प्रार्थना है कि वे पाकिस्तान के पाशविक अत्याचारों के निराकरण का उपाय करें। जनता से निवेदन करते हुए वे कहते हैं, ''वह अपना क्रोध ऐसे मार्ग से प्रकट न करे, जिसके कारण सरकार के मार्ग में अड़चनें पैदा हो जायें। सभी को चाहिए कि तन-मन-धन पूर्वक सेवा के लिए आगे बढ़ें तथा हृदय मंदिर के द्वार खोलकर इन दु:खी भाई-बहिनों को स्थान दें।'' इस आत्मीयतायुक्त वक्तव्य को भारत के सभी प्रमुख समाचार पत्रों में प्रकाशित किया।

द्वितीय वक्तव्य (नागपुर: 14 मार्च 1950)

तत्पश्चात् नागपुर पहुंचने पर दिनांक 14 मार्च को श्री गुरुजी ने इसी आशय का एक द्वितीय वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था, कि ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक जनता से सब प्रकार की सहायता संग्रह के कार्य में कटिबद्ध हो चुके हैं। समस्त भारतवासियों से मेरा निवेदन

है कि सामाजिक आपत्ति की इस गंभीर परिस्थिति में, सहायता-कार्य में संलग्न इन स्वयंसेवकों का वे मुक्तहस्त से सहयोग करें।''[1]

सहायता कार्य

संघ के स्वयंसेवकों ने समूचे देश में करोड़ों देशवासियों के द्वार खटखटाकर नकदी, अनाज तथा कपड़ों के रूप में साधन एकत्र किए। बंगाल के 15 और असम के 11 सहायता केन्द्रों में लगभग 4 मास तक समिति के 5000 से अधिक कार्यकर्ताओं ने अहोरात्र कार्य किया। इन शिविरों में नित्य प्रति 80000 से भी अधिक लोगों को निरन्तर 6 मास तक भोजन कराया गया। कपड़ों की 1500 से अधिक गांठे एकत्र कर लगभग 1.5 लाख लोगों में वस्त्रों का वितरण किया गया। सियालदा तथा अन्य रेलवे स्टेशनों पर 1 लाख से ऊपर पीड़ित जनों को भोजन के पैकेट दिए गए। अप्रैल 1950 के बाद के काल में वास्तुहारा सहायता समिति ने सैकड़ों निर्वासित बन्धुओं के लिए विभिन्न कार्यालयों और कारखानों में काम-धंधों और आजीविका की समुचित व्यवस्था की व कूच-बिहार में 150 के लगभग परिवारों को कृषि भूमि दिलवाने में सहयोग किया।[2]

सरदार पटेल को पत्र व भेंट

दिनांक 5 अप्रैल 1950 को सरदार पटेल को इस बारे में लिखे पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''आज के समान स्थिति में मेरी तथा संघ की नीति सदा स्पष्ट रही है। अपने देश में किसी भी प्रकार शांति भंग होना अनिष्टकारक है। परिस्थिति का लाभ उठाकर सरकार के विरुद्ध भावनाएं फैलाना भी अनुचित है। यही हम लोगों की नीति है तथा इसी के अनुसार हम शांतिपूर्वक पीड़ितों की सेवा का कार्य कर रहे हैं।''[3]

तत्पश्चात् 12 अप्रैल को दिल्ली आने पर, उसी दिन दोपहर में सरदार पटेल से भेंट कर श्री गुरुजी ने उन्हें 'वास्तुहारा सहायता समिति' तथा उसके कार्य से अवगत कराया। सरदार पटेल ने सहायता कार्य पर समाधान प्रकट करते हुए बंगाल में संघ कार्य की निरन्तर वृद्धि के बारे में अपनी शुभ इच्छा व्यक्त की।

---

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-2, पृष्ठ 168&71.
2. कृतिरूप संघ दर्शन; हो.वे. शेषाद्रि; सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली; 2003 (वि.2059), पृष्ठ 239&40.
1. श्री गुरुजी व्यक्ति और कार्य; ना.ह.पालकर; पृष्ठ - 236.

असम का भूकम्प

वास्तुहारा सहायता समिति का कार्य जारी था कि असम में भयंकर भूकम्प आ गया। 15 अगस्त 1950 को हुए इस भीषण प्रकोप से अनगिनत मकान धराशायी हो गए तथा करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। भूकम्प के कारण ब्रह्मपुत्र नदी ने अपना मार्ग ही परिवर्तित कर लिया तथा धरती में 12-12 फुट चौड़ी दरारें पड़ गईं। नदी पर बने पुल टूट गए तथा सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। स्वयंसेवकों ने स्वयं स्फूर्ति से आगे आकर सहायता तथा सेवा कार्य प्रारम्भ किया। न्यायमूर्ति कामाख्या राम बरुआ की अध्यक्षता में 'भूकम्प पीड़ित सहायता समिति' की स्थापना डिब्रूगढ़ में की गई। श्री गुरुजी ने पत्र भेजकर स्वयंसेवकों को अपनी सम्पूर्ण शक्ति जुटाकर पीड़ितों की सेवा करने की प्रेरणा दी।

राष्ट्रीय विपत्ति

सितम्बर मास के अन्त में समिति के कार्य के अवलोकनार्थ श्री गुरुजी स्वयं असम गए। समस्त असमवासियों को उन्होंने यह संदेश दिया कि संगठित और अनुशासित होने से हम इस प्रकार के संकटों का भी सफलतापूर्वक सामना कर सकेंगे। इस अवसर पर उन्होंने एक विशेष वक्तव्य भी दिया जिसमें कहा गया था, ''भूकम्प से जीवन और सम्पत्ति की भयंकर क्षति हुई है। सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं ने सहायता कार्य आरम्भ किया है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि सर्वप्रथम संगठित रूप से सहायता करने वाली रा.स्व.संघ की असम शाखा थी। उसके द्वारा प्रारम्भ की गई 'असम पीड़ित सहायता समिति' भूकम्प पीड़ित और बाढ़ पीड़ितों को अच्छी तरह सहायता पहुंचा रही है।

''समस्या की विशालता को देखते हुए जो कुछ भी हुआ है या हो रहा है, अत्यन्त अल्प है। यह स्थानीय नहीं अपितु एक राष्ट्रीय विपत्ति है। ऐसी आपदाएं ही राष्ट्रीय एकता तथा लोगों के सेवा भाव की कसौटी होती हैं। मैं भारतवासियों से अभ्यर्चना करता हूं कि वे चल रहे सहायता कार्य के निमित्त उदारता पूर्वक जन-वस्त्र आदि देकर असम की सहायता करें। सरकार ने भी पीड़ितों की सहायता करना शुरु किया है। मैं आशा करता हूं कि सेना की सक्षम सेवाओं को प्रत्यक्ष कार्य में लगाते हुए सरकार शीघ्रता से और भी अधिक प्रभावी कदम उठाएगी।''[1]

1. 'आर्गेनाइज़र', नई दिल्ली; 16-10-1950; पृष्ठ-20-

इसी प्रकार 1951 में बिहार में और 1952 में आन्ध्र प्रांत के रायलसीमा भाग व महाराष्ट्र प्रांत के शोलापुर, नगर, धूलिया, जलगांव तथा सतारा आदि ज़िलों में पड़े अकाल के समय सेवा और सहायता के अपने दायित्व को स्वयंसेवकों ने उत्तम रीति से पूर्ण किया।

बिहार-बंगाल व असम की बाढ़

सन् 1954 में बिहार, बंगाल व असम की बाढ़ से प्रभावित लोगों की सहायता हेतु स्वयंसेवकों ने घर-घर जाकर खाद्यान्न, कपड़े व धन एकत्र किया। समाज व सरकार से सहयोग का निवेदन करते हुए श्री गुरुजी ने अपने एक वक्तव्य में कहा, ''बाढ़ के कारण बिहार, बंगाल व असम में लाखों लोग बेघर हो गए हैं। गांव जलमग्न हो गए हैं। फसलें नष्ट हो गई हैं। कल्पनातीत कण्टकारक सैलाब का दृश्य उपस्थित हुआ है। पीड़ितों की सहायता करना अपना दायित्व है। बिहार में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने एक समिति का गठन किया है जिसने सहयोग के लिए सभी से प्रार्थना की है।

''सरकार ने भी बाढ़ पीड़ितों की पीड़ा-शमन के लिए बहुत कुछ करने का संकल्प किया है। जनता के सहयोग से ऐसा सेवा कार्य उत्तम रीति से सम्पन्न होता है। अत: मैं सरकार से अनुरोध करना चाहूंगा कि वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं का, सेवा ही जिनका आदर्श है, सहायता कार्यों को प्रभावी बनाने में सहयोग प्राप्त करे।''[1]

बाबू जयप्रकाश नारायण की टिप्पणी

बिहार के अधिकांश भागों में सन 1966 में भयंकर अकाल पड़ा। संकट की उस घड़ी में हज़ारों स्वयंसेवकों ने दिन-रात काम करके बिहार के अकाल-पीड़ितों में सहायता-सामग्री का वितरण किया। समूचे सहायता कार्य के प्रभारी श्री जय प्रकाश नारायण ने स्वयंसेवकों के कार्य को निकटता से देखा। उन्होंने देखा कि सहायता देते समय हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेदभाव नहीं बरता गया। स्वयंसेवक तो अपनी गांठ का पैसा भी खर्च कर रहे थे। वे सहायता के पात्र लोगों की सेवा के लिए पैदल ही दुर्गम स्थानों तक पहुंच जाते थे। दि. 6 फरवरी 1967 को एक ऐसे ही अकाल पीड़ित सहायता केन्द्र का उद्घाटन करते हुए श्री जय प्रकाश नारायण ने कहा था, ''संघ के स्वयंसेवकों की नि:स्वार्थ सेवा की बराबरी कोई नहीं कर सकता, देश का प्रधानमन्त्री भी नहीं।''[2]

1. आर्गेनाइज़र; 20-9-1954; पृष्ठ-2-
2. कृतिरूप संघ दर्शन; पृष्ठ 240&41.

आप मेरा स्वप्न साकार करेंगे : जयप्रकाश नारायण

नवम्बर 1977 में पटना में हुए संघ शिक्षा वर्ग के सार्वजनिक समापन समारोह के अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण कहते हैं, ''मैं आपकी (संघ) शक्ति और क्षमता को पहचानता हूं। आपके मुकाबले का आज देश में कोई दूसरा संगठन नहीं।

''मेरा विश्वास है कि बांगलादेश और पाकिस्तान सहित हम एक राष्ट्र हैं। हमारे राज्य पृथक-पृथक हो सकते हैं, किन्तु हमारा राष्ट्र सदैव एक ही रहा है- भारतीय। हमें इस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना है।

''..आपने अपने प्रात:स्मरण में महात्मा गांधी का नाम भी जोड़ा है। यह बहुत अच्छा कार्य आपने किया है। मैं समझता हूं कि हिन्दू समाज से छुआछूत जैसी अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने का महत् कार्य जो महात्मा गांधी को अति प्रिय था, मुझसे कहीं अधिक अच्छा आप पूरा कर सकते हैं, क्योंकि आप अपने धर्म, संस्कृति, परम्पराओं के विभिन्न पक्षों पर चिंतन-मनन करते रहने के कारण उसके अधिकारी हैं।''[1]

सेवा-सहायता कार्यों के प्रति दृष्टिकोण

इस प्रकार के विभिन्न सेवा कार्यों के प्रति संघ का दृष्टिकोण विशुद्ध है। श्री गुरुजी को यह कदापि पसन्द नहीं था कि कोई भी सेवा-कार्य जनता पर उपकार की भावना से किया जाए। वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे कि ''सेवा हिन्दू जीवन-दर्शन की प्रमुख विशेषता है। नि:स्वार्थ सेवा उसका स्वभाव ही है। जहां स्वार्थ है वहां सेवा नहीं हो सकती। स्वार्थ का प्रवेश होते ही वह सेवा न रहकर व्यापार बन जाती है।'' लेकिन साथ ही श्री गुरुजी को यह भी उचित प्रतीत नहीं होता था कि जनता की सेवा हेतु बार-बार दौड़ कर जाना पड़े। दि. 29 अप्रैल 1950 को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं, ''सहायता के लिए अपील प्रकाशित करने को विवश करने वाली परिस्थिति स्थायी रूप से बन जाना अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है। यही नहीं, अपितु यह देश के लिए एक कलंक है। ऐसी परिस्थिति निर्माण होने का किंचित भी अवसर न आए, इसी हेतु हम लोगों को प्रयास करना चाहिए।''[2]

---

1. राष्ट्राय नम:, पृष्ठ 608&09.
2. श्री गुरुजी: व्यक्ति और कार्य; ना.ह.पालकर; डा.हेडगेवार भवन, नागपुर; पृष्ठ-241.

5. राष्ट्र-श्रद्धा के प्रतीकों का मान-रक्षण

दिनांक 9 तथा 10 सितम्बर 1952 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक नागपुर में सम्पन्न हुई। जो दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस बैठक में पारित हुए उनमें से एक 'स्वदेशी' से सम्बन्धित था।

स्वदेशी चेतना

अनेकों के मन में यह प्रश्न उभरना स्वाभाविक ही था कि विदेशी सत्ता की समाप्ति के 5 वर्ष बाद संघ द्वारा फिर से स्वदेशी को प्रस्ताव का प्रमुख मुद्दा बनाना कहां तक तर्कसंगत है? संघ प्रारम्भ से ही स्वदेशी का पुरस्कर्ता रहा है। कांग्रेस द्वारा भी गांधी जी के नेतृत्व में स्वदेशी आन्दोलन चलाया गया था। लोकमान्य तिलक युग में निर्मित स्वतन्त्रता आन्दोलन की चतु:सूत्री योजना का स्वदेशी एक प्रमुख मुद्दा था। डा. हेडगेवार जी ने तो 'स्वदेशी चेतना' को ही संघ के आचार तथा विचारों का अधिष्ठान बनाया था। वे स्वयं ऐसे आन्दोलनों में अग्रसर हो कर भागीदारी करते थे।

स्वराज्य सुरक्षित रखने का आधार 'स्वदेशी' व्रत

स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेज-विरोध की भावना के कारण लोगों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति एक सहज आकर्षण था। किन्तु विशुद्ध राष्ट्रप्रेम की भावना के कारण अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद देश में विदेशी वस्तुओं का अधिक मात्रा में प्रयोग होने लगा। अत: प्रतिनिधि सभा द्वारा पारित प्रस्ताव में स्वयंसेवकों से यही आग्रह किया गया था कि पहले वे स्वयं स्वदेशी का दृढ़ व्रत लें और बाद में लोगों को इस दिशा में प्रवृत्त करें। इसी दृष्टि से वर्धा के डा. कुमारप्पा को दिनांक 25 सितम्बर, 1952 के अपने पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''स्वदेशी' के विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि प्रथम स्वराज्य प्राप्ति का शस्त्र और तदनंतर उसको सुरक्षित एवं उन्नत रखने का आधार स्वदेशी ही है। हम लोगों ने भी अपने संघ के कार्य द्वारा इस व्रत के आचरण का आग्रह अधिक तीव्रता से प्रसारित करने का निश्चय किया है।''[1]

आधुनिकतम जीवन रचना का ज्ञानार्जन

राष्ट्रजीवन को समृद्ध बनाने की दृष्टि से श्री गुरुजी की प्रवृत्ति में

1. पत्ररूप श्री गुरुजी; भारतीय विचार, साधना; नागपुर; i`"B&97-

सदा उस वृक्ष जैसी सिद्धता विद्यमान रहती थी, जो चारों ओर अपनी जड़ें फैलाकर आवश्यक जीवन-रस खींचता रहता है। अमेरिका के इल्यानिस (Illinois) विश्वविद्यालय में अध्ययनार्थ गए एक संघ-कार्यकर्ता को, 'पाञ्चजन्य' में दिनांक 10.12.1956 को प्रकाशित अपने पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''इसमें संदेह नहीं कि आप अभ्यास द्वारा अधिक पात्रता प्राप्त कर कुशलतापूर्वक स्वदेश लौटेंगे। वहां के जीवन, लोगों के उत्तम गुणों, व्यक्तिगत तथा सामाजिक चरित्र, राष्ट्रीय परम्पराओं, राजनैतिक संकेतों तथा नीतिमत्ता का अध्ययन करना अच्छा रहेगा। साथ ही छोटे-बड़े उद्योगों व कृषि आदि सम्बन्धी उन्नति के प्रयासों, शैक्षणिक संस्थाओं तथा उनमें कार्य करने वाले अध्यापकों तथा अध्ययन करने वाले छात्रों की मनोवृत्ति को उत्तम रीति से समझने का प्रयास करना लाभदायक सिद्ध होगा। किसी भी समाज को पूर्णरूपेण निर्दोष नहीं पाया जा सकता। किन्तु प्रयत्नपूर्वक अच्छाई देखना ही लाभदायक होता है। यह सब करते हुए वहां के समाज का एकांगी ज्ञान न हो, यह भी ध्यान रखना अच्छा होगा। इस प्रकार का अध्ययन करने से स्वदेश में स्व-समाज की परम्पराओं के आधार पर आधुनिकतम जीवन-रचना का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।''[1]

स्वदेशी जीवन पद्धति

सर्वसामान्य छोटी-छोटी बातों में भी स्वदेशी जीवन पद्धति का श्री गुरुजी का आग्रह रहता था। यदि गलती से हाथ धोने के लिए उन्हें विदेशी साबुन दे दिया जाता तो राख से हाथ साफ कर वे धीरे से कह देते कि विदेशी साबुन से तो राख भली।

अनार्य भाषा में सूचना पत्रक क्यों ?

विवाह का निमन्त्रण, कार्यक्रम पत्रिका, अभिनन्दन संदेश आंग्लभाषा में छापना श्री गुरुजी को कतई रास नहीं आता था। पुणे (महाराष्ट्र) के न्याय रत्न धुंडिराज शास्त्री विनोद को दिनांक 13.7.1955 के पत्र में वे लिखते हैं, ''यज्ञ करने के विषय में आपका पत्रक योग्य समय पर प्राप्त हुआ। परन्तु यह सर्व व्यवहार अंग्रेज़ी में लिखा हुआ देखकर विचित्र-सा लगा। यज्ञ जैसे पवित्र समारोह का व्यवहार अनार्य भाषा में हो, यह मेरे मन को अच्छा नहीं लगा। इसलिए इस विषय में अत्यन्त आदर और उत्सुकता होकर भी इस समय मुझे लगता है कि इस उपक्रम से सम्बन्ध नहीं होना

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-3; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 117-

चाहिए। इसलिए क्षमा करें।''[1]

मातृभाषा में राज्य शासन का व्यवहार अभिनन्दनीय

मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रादेशिक भाषाओं का व्यवहार प्रारम्भ करने पर, तत्कालीन मुख्यमन्त्री पंडित रविशंकर शुक्ल का अभिनन्दन करते हुए दिनांक 2-9-1953 को लिखे अपने पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''आज से विधिवत् अपने मध्यप्रदेश राज्यशासन में विदेशी अंग्रेज़ी को दूर कर मराठी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं का व्यवहार आपने प्रारम्भ कर दिया, यह जानकर अतीव प्रसन्नता एवं समाधान का अनुभव कर रहा हूं। इस उत्कृष्ट निर्णय को प्रत्यक्ष में लाने में अनेक कठिनाइयां होते हुए भी राष्ट्राभिमान के सन्तोष के निमित्त उन्हें झेलकर पार करने की दृढ़ता आपने प्रकट की है। इस महान् कार्य के लिए मैं अपनी तथा अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की ओर से, आपका एवं आपके शासकीय सहकारियों का हृदयपूर्वक अभिनन्दन करता हूं।''[2]

भारतीय वेशभूषा

भारतीय वेशभूषा पहनने से अपना सम्मान कम हो जाएगा अथवा अपनी हंसी होगी ऐसा कहने वालों को श्री गुरुजी का उत्तर रहता था कि यदि हम अपनी पद्धतियों का अवलम्बन करें तो विदेशियों तक में भी हमारे बारे में सम्मान की भावना ही निर्माण होती है। इस संदर्भ में वे अपना स्वयं का एक अनुभव सुनाते हुए कहते हैं, ''मैं नागपुर में स्काटिश मिशनरियों द्वारा संचालित एक महाविद्यालय में पढ़ता था। एक बार हम विद्यार्थियों ने पूर्णत: महाराष्ट्रीय पद्धति के भोजन का कार्यक्रम निश्चित किया। इसके लिए प्राचार्य और दो अन्य यूरोपीय प्राध्यापकों को निमन्त्रण दिया और उन्हें बताया कि धोती पहन कर उघाड़े बदन पीढ़े पर बैठना होगा। प्राचार्य का ईसाइयत का अहंकार आड़े आ गया और उन्होंने हमारा निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। किन्तु अन्य दो वयोवृद्ध प्राध्यापकों ने निमन्त्रण स्वीकार किया। यही नहीं, प्राचार्य को भी उन्होंने बताया कि ''हमारे विद्यार्थी जब सद्हेतु से प्रेरित होकर हमें बुला रहे हैं तो जाने में क्या अड़चन है?'' प्राचार्य भी तैयार हो गए। इन तीन यूरोपियों ने धोती पहन कर उघाड़े बदन महाराष्ट्रीय पद्धति से हम लोगों के समान ही हाथों का उपयोग करते हुए भोजन किया। अपनी

1. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ-39-
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ 100&01-

पद्धति का योग्य अभिमान व आग्रह रखने से ही उन दिनों ऐसा अच्छा अनुभव आ सका।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की उद्बोधक कथा

इसी विषय पर श्री गुरुजी आगे बताते हैं, ''श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की कथा भी इस दृष्टि से उद्बोधक है। वायसराय कार्यकारी मंडल की बैठक में जाते समय अंग्रेज़ी वेशभूषा न पहनने का उन्होंने निश्चय किया। बंगाली ढंग के वस्त्र प्रावरण पहनकर ही वे उपस्थित हुए और उन्हीं को कार्यकारी मण्डल की बैठक में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। उनका स्वागत करने और उनको विदा करने हेतु स्वयं वायसराय मंच से उतरकर आए।

पायजामा राष्ट्रीय वेश

श्री गुरुजी के केरल प्रांत के प्रवास में एक स्वयंसेवक के यह पूछने पर कि क्या पायजामा अपना राष्ट्रीय वेश माना जाए, उन्होंने उत्तर दिया, ''सचमुच ही पायजामा अपना राष्ट्रीय वेश है। बाहरी लोगों की वेशभूषा का वह अन्धानुकरण नहीं है। उत्तर भारत के पर्वतीय अंचल में पायजामा जैसी बनावट के वस्त्र उपयोग में लाए जाते थे। पूर्वकाल में एक समय नेपाल के महाराजा ने पर्शिया के शाह को उपहार में कुछ चीज़ें भेजी जिनमें वस्त्राभूषण भी थे। उनमें पायजामा था जो शाह को बहुत पसन्द आया। शाह द्वारा उसका उपयोग प्रारम्भ करने पर लोगों ने भी उनका अनुकरण किया। कालान्तर में जब पर्शिया के लोग भारत में विजेता के रूप में आए तो वे पायजामे का उपयोग करते थे और भारत के समतल भूमि पर रहनेवाले लोगों ने उसे परकीय वेशभूषा मान लिया। उसे पहनने की परिपाटी भारत में ही थी और पश्चिमी लोगों ने हमारा ही अनुकरण कर उसे अपनाया है।''[1]

उपनयन संस्कार एवं विवाह सरीखे भारतीय मंगल प्रसंगों पर, श्री गुरुजी का आग्रह रहता था कि परिवार के सम्बन्धित प्रमुख लोगों को परम्परागत प्रतिष्ठित भारतीय वेश ही धारण करना चाहिए।

सुसंस्कार

सुसंस्कार स्वदेशी जीवन का ही एक अंग है। श्री गुरुजी इस दृष्टि से अति संवेदनशील थे। सन 1965 में पालघाट (केरल) की शाखा समाप्ति

1. स्मृति पारिजात, भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ 157&159-

के पश्चात् अनौपचारिक बातचीत में श्री गुरुजी ने पूछा कि आज जो आपका खेल हुआ, उस का नाम क्या था? एक बाल स्वयंसेवक ने उत्तर दिया - 'दीप बुझाना' । अन्य वयस्क स्वयंसेवकों से उत्तर की पुष्टि होने पर श्री गुरुजी बोले, ''खेल का नाम भी इस प्रकार का न हो। हमारी संस्कृति में दीप बुझाना अशुभ माना जाता है। हमारे यहां कहते हैं कि 'ज्ञान का दीपक प्रज्वलित करो, वह कभी भी बुझना नहीं चाहिए।' सन्तवाणी है कि 'ज्ञानदीप मालवू नको रे'। खेल के लिए भी क्यों न हो, नाम ठीक चाहिए। उसका संस्कार स्वयंसेवकों के मन पर बहुत गहरा होता है। दूसरे ही दिन से उस खेल का नाम आह्वान हो गया।[1]

श्री गुरुजी की यह सोच थी कि जीवन के अंग-प्रत्यंग में स्वदेशी भावना का प्रकटीकरण हो। अंग्रेज़ी तिथि तथा सन के स्थान पर भारतीय तिथि तथा संवत् व पाश्चात्य पद्धति के चौबीस घण्टों के दिन के स्थान पर भारतीय पद्धति के 60 घटिकाओं के दिन के प्रचलन को वे स्वदेशीकरण का आवश्यक अंग मानते थे। कुछ घड़ी निर्माताओं के सम्मुख इस प्रकार की घड़ी के निर्माण का विचार भी उन्होंने प्रकट किया था।

विदेशों में होने वाली स्त्री-सौंदर्य स्पर्धा के फलस्वरूप जब भारत में 'मिस इंडिया' का चयन होने लगा, तब एक बार उन्होंने कहा था, " We really miss India in this whole affair."

तत्त्व तथा अन्य गुणों की धारणा

श्री रजनीकान्त मुद्गल ने श्री गुरुजी के हस्ताक्षर मांगते हुए एक पत्र उनको लिखा। उसके उत्तर में दिनांक 16.9.1951 को वे लिखते हैं, ''मेरे इस पत्र से आपकी हस्ताक्षर की मांग तो पूर्ण हो जाएगी किन्तु हस्ताक्षर मांगने का आप का यह अंग्रेज़ी ढंग का उद्योग मुझे उचित नहीं लगता। किसी की स्वाक्षरी या हस्ताक्षर पास रखने से यदि उस व्यक्ति के सम्बन्ध में मन में सद्भावना उत्पन्न हो, तो उसके तत्त्व तथा अन्य गुण अपने जीवन में लाने का प्रयत्न करना उचित है।''[2]

गो-रक्षा

गाय अति प्राचीनकाल से भारत में श्रद्धा और सम्मान का बिन्दु रही है। गोरक्षा एवं गो पूजा में मानव का सम्पूर्ण हित सन्निहित है, ऐसा गोवंश

1. श्री गुरुजी: व्यक्ति और कार्य; पृष्ठ 248&49-
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ-193-

का गौरवपूर्ण उल्लेख वेदों में किया गया है। इस विषय में अपार राष्ट्रीय श्रद्धा के परिणामस्वरूप हुमायूं और अकबर जैसे कुछ मुगल बादशाहों ने भी गोहत्या का निषेध कर दिया था। मुस्लिम तथा ब्रिटिश शासनकाल में गो-रक्षा हित किए गए त्याग और बलिदान की रोमांचकारी गाथा है। गांधीजी ने गोरक्षा को स्वराज्य से भी ऊंचा स्थान प्रदान किया था। गाय का तनिक भी अपमान होने पर डाक्टर हेडगेवार जी के क्रोध की सीमा नहीं रहती थी। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात् गोरक्षा का समावेश संविधान में निदेशक-सिद्धान्त के रूप में किया गया। परन्तु व्यवहार में सरकार की ओर से गोवंश-प्रतिपालन की दृष्टि से प्रभावी नीति नहीं अपनाई गई।

पावन मानबिन्दु की रक्षा हेतु आवाहन

सितम्बर 1952 में संघ की प्रतिनिधि सभा ने जो दूसरा प्रस्ताव पारित किया वह 'गोहत्या निषेध' के सम्बन्ध में था। श्री गुरुजी के मार्गदर्शन में पारित इस प्रस्ताव में कहा गया था, ''सम्पूर्ण देश में गोवंश की हत्या बन्द करवाने की मांग का विगत पांच वर्षों में भारत सरकार द्वारा लगातार ठुकराया जाना सर्वथा अनुचित है क्योंकि अपने राष्ट्र में गोवंश-प्रतिपालन केवल आर्थिक ही नहीं अपितु सांस्कृतिक श्रद्धा का विषय है तथा राष्ट्र की एकात्मता का प्रतीक है। यह सभा निर्धारित करती है कि समस्त भारत में संगठित जनमत के द्वारा गोवंश प्रतिपालन के पवित्र कर्तव्य का राज्यकर्ताओं को पुन: स्मरण करवाया जाए। इसके लिए यह सभा समस्त स्वयंसेवकों का आवाहन करती है कि वे सभाओं, जलूसों आदि आयोजनों के द्वारा भारत के कोटि-कोटि लोगों की भावना को एक दृढ़ तथा देशव्यापी इच्छा शक्ति में परिणत करें।

''यह सभा भारतीय जनता से अनुरोध करती है कि वह गोवंश-हत्या निरोध के इस कार्य में संघ का हाथ बटाए और तन-मन-धन से सहायता दे। साथ ही यह सभा सभी दलों और पक्षों से भी आग्रह करती है कि इस पक्ष-निरपेक्ष कार्य में वे संघ को पूर्ण सहयोग प्रदान करें।''[1]

संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने दिसम्बर, 1958 में 'गोरक्षा' व दिसम्बर 1960 में 'गोहत्या बन्दी हेतु संविधान-संशोधन' विषयक प्रस्ताव पारित किए। जहां 1958 के प्रस्ताव में सरकार द्वारा 'गोहत्या-निरोध' की प्रभावी व्यवस्था करते हुए अपने प्रजातन्त्रीय स्वरूप की रक्षा के सम्बन्ध में

१. संकल्पऋ सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्लीऋ पृष्ठ-१३७.

आग्रह किया गया था, वहां 1960 के प्रस्ताव में शासन से अनुरोध करते हुए कहा गया था कि ''केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल का सुनिश्चित मत है कि संविधान में स्पष्ट रूप से गो-वंश की हत्या पर प्रतिबन्ध का उल्लेख किए बिना हमारे इस पावन मानबिन्दु की रक्षा नहीं हो सकती। मण्डल शासन से अनुरोध करता है कि वह इस विषय में शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक कार्यवाही करे।''[1]

गो-रक्षा अभियान

सितम्बर, 1952 के प्रस्तावानुसार गोवध बन्द कराने के प्रश्न पर देश के नागरिकों के हस्ताक्षर संग्रह की योजना बनाई गई। हस्ताक्षर एकत्र करने के लिए 26 अक्तूबर अर्थात् गोपाष्टमी से 22 नवम्बर तक की कालावधि निश्चित की गई। देशभर में संकलित हस्ताक्षर-पत्र महामहिम राष्ट्रपति को समर्पित करने का कार्यक्रम निर्धारित हुआ। हस्ताक्षर-संग्रह के अभियान में जनमत जागरण के लिए सभा, जलूस, प्रदर्शनी, भित्तिपत्रक, पत्रक आदि विविध उपायों का अवलम्बन करने का भी सुझाव दिया गया।

13 अक्तूबर को श्री गुरुजी की ओर से प्रकाशित एक निवेदन में कहा गया, ''इस कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग, गोवंश-हत्याबन्दी की मांग का समर्थन करने वाले कोटि-कोटि नागरिकों के हस्ताक्षरों से युक्त एक आवेदन पत्र को परमश्रेष्ठ राष्ट्रपति, देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद की सेवा में उपस्थित करना है। इस राष्ट्रव्यापी कार्य के लिए संघ के स्वयंसेवक गांव-गांव तथा घर-घर हस्ताक्षर-संग्रह करते हुए घूमेंगे। मेरी सभी से आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि सभी वर्गों एवं दलों के नागरिक अत्यन्त उत्साह के साथ इस पवित्र कार्य में योगदान करें।''[2]

इसके साथ ही श्री गुरुजी ने देश के सैकड़ों नेताओं तथा समाचार-पत्रों को आन्दोलन की भूमिका स्पष्ट करते हुए उनसे सहयोग मांगने वाले परिपत्र भेजे। ये परिपत्र देश के प्रमुख लेखकों, पंडितों, धर्म गुरुओं, संत-महंतों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी भेजे गए थे।

अखिल देश का प्रश्न

इन परिपत्रकों के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों को श्री गुरुजी ने स्वतन्त्र पत्र भी लिखे थे। स्वातंत्र्य वीर सावरकर को दिनांक 1.10.1952 को लिखे

१. संकल्पऋ सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्लीऋ पृष्ठ १३७-३८.

२. श्री गुरुजी : व्यक्ति और कार्यऋ ना.ह.पालकरऋ पृष्ठ-२५०.

पत्र में वे कहते हैं, ''हमारी परम्परा के अनुसार गोमाता तथा भूमाता एक ही हैं। अत: यह नितान्त असम्भव है कि गोमाता की हत्या को प्रोत्साहन देने वाले या उस ओर दुर्लक्ष्य करने वाले लोग भारत माता के सच्चे अर्थों में भक्त हो सकते हैं।''[1]

दिनांक 9-11-1952 को राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''गोरक्षा का प्रश्न अखिल देश का है। अत: आप से मेरी नम्र प्रार्थना है कि दोनों कार्यक्रमों - सार्वजनीन सभा तथा शिष्टमंडल मे आप सम्मिलित हों, प्रत्यक्ष सहकार्य दें तथा अपनी अमृतवाणी से इस पुनीत विषय को अधिक पावन करें।''[2]

श्री गुरुजी के इन पत्रों तथा परिपत्रों का समर्थन करने वाले उत्तर चहुं ओर से प्राप्त हुए। सम्पूर्ण देश में व्यापक अभियान चलाने हेतु विपुल मात्रा में साहित्य भी छपाया गया।

सर्वसामान्य श्रद्धा केन्द्र

पूर्व नियोजित योजनानुरूप गोपाष्टमी के दिन अत्यन्त उत्साह के साथ स्थान-स्थान पर अभियान प्रारम्भ हुआ। सहस्रों की संख्या में सभाओं, यात्राओं में गोहत्या निरोध के प्रस्ताव पारित हुए। मुम्बई में अभियान का श्रीगणेश श्री गुरुजी की सभा से हुआ। हज़ारों लोगों की उपस्थिति में अपने ओजपूर्ण उद्बोधन में श्री गुरुजी ने कहा, ''जिस राष्ट्र का श्रद्धास्थान नष्ट हो जाता है, उस राष्ट्र के अभ्युदय की कामना करना व्यर्थ होगा। अब हमें यह सोचना है कि वह सर्वसामान्य श्रद्धा केन्द्र कौन सा है? राष्ट्र में राजनीतिक या पांथिक भिन्नता भले ही हो, एक बात निर्विवाद सत्य है कि गोवंश का नाम लेते ही श्रद्धा की अतुलनीय भावना जागृत हो जाती है। इसलिए गाय हमें एकत्र ला सकती है। अपने हृदय में गोमाता के प्रति श्रद्धाभाव बढाएं। अपने अंत:करण तथा राष्ट्रजीवन में पराकोटि की तेजस्विता निर्माण करें।''[3]

दिल्ली में अभियान का शुभारम्भ सरकार्यवाह मा. भैयाजी दाणी के उद्घाटन भाषण से हुआ।

आर्थिक आक्षेपों का खोखलापन

दिनांक 26.10.1952, गोपाष्टमी के अवसर पर ही प्रकाशित अपने

1. श्री गुरुजी: व्यक्ति और कार्य; पृष्ठ 251&252-
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ-100-
3. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ 139&40-

एक लेख में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''आजकल बड़े-बड़े विद्वान, ख्यातनाम सज्जन भी गोहत्या का आर्थिक दृष्टि से समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं, गोहत्या-निषेध से चर्म व्यापार से होने वाली आर्थिक डॉलर प्राप्ति रुक जाएगी आदि अनेक आक्षेप खड़े करते हुए भी दिखाई देते हैं। गोहत्या निषेध के विचार को वायुमण्डल में प्रेषित करने के उपरांत अनेक विद्वानों ने इन सब आक्षेपों का सांगोपांग विवेचन करने का निश्चय किया है। इसके पूर्व भी अनेक विद्वानों ने इस सम्बन्ध में आंकड़ों द्वारा इन आक्षेपों का खोखलापन सिद्ध किया हुआ है।

''परन्तु मैं समझता हूं कि श्रद्धा के विषय में आर्थिकता का मापदण्ड लगाना अनुचित है। उदाहरण के लिए अपने राज्य का ध्वज है, कोई उसे उतारकर तोड़-फोड़ दे तो कौन सी बड़ी हानि होगी? एक डंडा, कुछ थोड़ा सा कपड़ा, इतना ही आर्थिक दृष्टि से उसका स्वरूप है। परन्तु यदि कोई आक्रमणकारी इस अपने राज्य ध्वज को अपमानित करने के लिए दलबल सहित सजकर आता है तो आर्थिक दृष्टि से अत्यल्प मूल्य के उस वस्त्र के निमित्त अपना अपरिमित धन, असंख्य लोगों के प्राण आदि उस पर न्यौछावर कर उसकी मानमर्यादा सुरक्षित करना, यही अपना कर्तव्य होता है। राष्ट्र को एकत्रित कर उसमें चैतन्य फूंकने वाला वह मान बिन्दु, कितना भी धन-जन का मूल्य क्यों न देना पड़े, सर्वथा रक्षणीय है।''[1]

अभियान का भव्य अवसान

शीघ्र ही अभियान पूर्ण वेग से चलने लगा। लगभग सभी दल उसमें सम्मिलित हो गए। मुस्लिम और ईसाई भी इसमें शामिल हुए। वे सभाओं में बोले और उन्होंने ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। इससे यह असत्य सूली पर टांग दिया गया कि यह तो केवल हिन्दुओं का अभियान है। उदाहरणार्थ, कटक में सार्वजनिक सभा की अध्यक्षता राज्यपाल सैयद फज़ल अली ने की। उन्होंने गोमाता की पवित्रता और आर्थिक महत्त्व पर बल दिया। अभियान के फलस्वरूप पुणे, धुलिया (धुले), भोपाल और मोहमदाबाद जैसी कुछ नगरपालिकाओं ने अपने-अपने नगरों की सीमा के भीतर गोहत्या का निषेध कर दिया।

अभियान का भव्य अवसान 7 दिसम्बर, 1952 को नयी दिल्ली में हुआ। उस दिन जलूस का मुख्य आकर्षण देश के कोने-कोने से एकत्रित

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-3; पृष्ठ 96&97-

हस्ताक्षरयुक्त पत्रों के अति विशाल संग्रह का प्रदर्शन था। हस्ताक्षरों के भारी भरकम गट्ठर 22 बैलगाड़ियों पर प्रान्तवार लदे थे। गणवेश में हज़ारों स्वयंसेवक साइकिलों और ट्रकों पर तथा पैदल उनके साथ-साथ जा रहे थे। सबसे आगे एक विशाल पट (बोर्ड) था। उसमें हस्ताक्षरों की प्रान्तवार संख्या और गोमाता की सुन्दर मूर्ति दर्शायी गई थी। मार्ग में मूर्ति को फूलों से लाद दिया गया और बार-बार उसकी पूजा हुई।

दिल्ली के रामलीला मैदान में एक लाख से भी अधिक नागरिकों के विशाल एकत्रीकरण को सम्बोन्धित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा कि जो शासन भारत में राष्ट्रीय सम्मान के सर्वोच्च प्रतीक गाय के वध की अनुमति देता रहे, उसे स्वशासन नहीं कहा जा सकता।

सभा की अध्यक्षता नामधारी सिखों के गुरु प्रतापसिंह महाराज ने की और उसे भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष तथा संसद में नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के मनोनीत अध्यक्ष बैरिस्टर एन.सी.चटर्जी, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष महाशय कृष्ण, गोसेवक समाज के सचिव श्री हरदेव सहाय आदि राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महानुभावों ने सम्बोधित किया।

श्री गुरुजी की इस घोषणा का तुमुल हर्षध्वनि से स्वागत किया गया कि हस्ताक्षरों का समूचा संग्रह पूर्ण सत्यनिष्ठा से केवल चार सप्ताह के भीतर ही कर लिया गया। 81,524 ग्रामों से सम्पर्क किया गया और 1,75,39,813 हस्ताक्षर एकत्र किए गए।

महामहिम राष्ट्रपति से भेंट

अगले दिन श्री गुरुजी लाला हंसराज गुप्त के साथ राष्ट्रपति (डा. राजेन्द्र प्रसाद) से मिले और उन्हें हस्ताक्षर संग्रह सहित एक संक्षिप्त ज्ञापन दिया। उसमें अनुरोध किया गया था कि केन्द्र गोवध पर पूर्ण वैधानिक प्रतिबन्ध लगाए। उन्होंने राष्ट्रपति को अभियान के विवरण से अवगत कराया। श्री गुरुजी ने राष्ट्रपति को आश्वासन दिया कि यदि सरकार गोरक्षा के बारे में कोई कार्यक्रम अपनाएगी तो वे उसमें सहयोग करने के लिए तैयार रहेंगे।[1]

महामहिम राष्ट्रपति ने विश्वास दिलाया कि वे सरकार को जनता के इस आवेदन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने हेतु कहेंगे।

१. कृतिरूप संघ दर्शनऋ हो.वे.शेषाद्रिऋ पृष्ठ ३२२-२३.

जनता की स्मृति जागृत रखी जाए

एक बार जनमत की ओर शासन का ध्यान पुनः आकृष्ट करने हेतु दिनांक 2 नवम्बर, 1953 से 14 नवम्बर तक, संघ के माध्यम से देशभर में सभाओं, जलूसों एवं एकत्रीकरणों का आयोजन किया गया। दिनांक 6 नवम्बर 1953 को दिल्ली के श्री हरदेव सहाय को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''जनसाधारण की स्मरणशक्ति अति सीमित होने के कारण वह इसे (गोहत्या निरोध नितांत आवश्यक है) भूल गई है। इसको देखकर जनता की स्मृति जागृत रखने में सदैव सचेष्ट रहने की आवश्यकता अधिकाधिक प्रतीत होती है।''[1]

'गोहत्या निरोध समिति' द्वारा सन 1954 के प्रयाग में सम्पन्न हुए कुम्भ मेले में एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। इसमें पं. नेहरू के लोकसभा क्षेत्र से मतदाताओं के हस्ताक्षर संग्रह सहित एक प्रतिवेदन उन्हें प्रेषित किया गया था जिसमें आग्रह किया गया था कि संसद में गोवध बंदी प्रस्ताव का वे (पं. नेहरू) समर्थन करें।

कुरान शरीफ में आदेश नहीं

गोरक्षा महाभियान समिति के तत्त्वावधान में मुंगेर (बिहार) में दि.1 नवम्बर 1966 को एक विराट जनसभा हुई। प्रमुख वक्ता के नाते अपने उद्‌बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''गोवध पर प्रतिबन्ध के लिए अनेक वर्षों से प्रयत्न होते रहे हैं। इन सारे प्रयत्नों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भी योगदान रहा है। गोहत्या के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कहना है कि कुरानशरीफ में ऐसा आदेश है। परन्तु यह तर्क उचित नहीं है। यदि ऐसी कोई बात होती, तो मुगलों के शासनकाल में गोहत्या पर प्रतिबन्ध न होता। हमारी सरकार गोहत्या सम्बन्धी मुसलमानों के अधिकार को मानती है। इसका कारण यह है कि उन्हें मुसलमानों का संगठित समर्थन प्राप्त होता है।''[2]

हत्या बूढ़ी गायों की नहीं होती

मराठी दैनिक नवाकाल (पुणे) के दि. 1 जनवरी, 1969 के अंक में प्रकाशित भेंट वार्ता में श्री गुरुजी बताते हैं कि ''आज तो जहां पाबन्दी है, वहां भी गोहत्या होती है, परन्तु पहले रियासतों में गोहत्या नहीं होती थी।

1. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ-199-
2. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-5, पृष्ठ 79&80-

उस समय यह बात ध्यान में आई कि जहां गोहत्या होती थी, वहां बूढ़ी गायों का प्रमाण 7.5 प्रतिशत था और जहां गोहत्या नहीं होती थी वहां यही प्रमाण केवल आधा प्रतिशत ही था। ये आकड़े देखकर सर्वोच्च न्यायालय के एक भूतपूर्व न्यायमूर्ति आश्चर्यचकित रह गए। परन्तु उक्त आंकडों का यह अर्थ उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि गोहत्या बूढ़ी गायों की नहीं, अपितु हृष्ट-पुष्ट गायों की ही हुआ करती है।''[1]

महात्माओं के प्रति शासन का दुर्व्यवहार

सन 1966 के अन्त में पुरी में पुरी के शंकराचार्य जी और वृन्दावन में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा अनशन प्रारम्भ करने पर श्रीमज्जगद्‌गुरु द्वारकाधीश शंकराचार्य महाराज को दिनांक 27.11.1966 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''तार मिला। मैं शीघ्र ही दिल्ली जाकर कुछ प्रयास करने की सोच रहा हूं। सम्पूर्ण गोवंश की मांग को लेकर श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, श्री गोवर्धन पीठाधीश जी आदि अनेक श्रेष्ठ महात्माओं ने यह व्रत आरम्भ किया है। व्रतरूप अनशन करने वाले महात्माओं को बन्दी बनाने की नीति विचित्र है। उन महात्माओं के प्रति यह व्यवहार अतीव दुःखदायक है। श्री चरणों के प्रभाव से उस अनिष्ट वृत्ति में परिवर्तन हो, इस आशा से चल रहे हैं। आगे क्या बनता है, सेवा में सूचित करूंगा।''[2]

अविश्वास का वातावरण शुद्ध करना आवश्यक

सरकार द्वारा गठित 'गोरक्षा समिति' में मनोनीत किए जाने पर केन्द्रीय मन्त्री श्री जगजीवन राम को लिखे दिनांक 5.7.1967 के अपने पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''आपके मन्त्रालय से 'गोरक्षा समिति' के गठन के प्रस्ताव की प्रतिलिपि आज मुझे प्राप्त हुई। उस समिति में मेरे नाम का अंतर्भाव किया है, इसका बोध हुआ। जब कभी समिति अपना कार्य प्रारम्भ करेगी, उसमें उपस्थित रहने का प्रयत्न करूंगा। परन्तु आज ही तिहाड़ केन्द्रीय कारागार से एक पत्र मेरे पास आया है। गोरक्षा आन्दोलन के सत्याग्रही के रूप में बंदीवास का दंड भोगने वाले किसी बन्धु का पत्र है।

कुछ दिन पूर्व उस कारागार में इन सत्याग्रहियों के साथ, परम वंदनीय श्री करपात्री स्वामी आदि महात्माओं के साथ, जो अत्याचारी व्यवहार हुआ है, उसका व्यथित हृदय से उस पत्र में उल्लेख किया गया

1. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-5; पृष्ठ-145-
2. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ 66&67-

है। यह इतना आश्चर्यकारक काण्ड है कि उस सम्बन्ध में वृत्त सुनते ही अंत:करण शोकग्रस्त एवं क्षुब्ध हो उठा है। ऐसी घटनाओं के होते हुए 'समिति' क्या कार्य कर सकेगी, यह समझ में नहीं आता। मुझे तो ऐसा लगा है कि समिति का गठन आदि केवल दिखावा है, उसमें तथ्य नहीं, हृदय की सच्चाई नहीं। इस अविश्वास के वातावरण को शुद्ध करना आवश्यक है।''[1]

विवेकानन्द शिला स्मारक

भारत के अन्तिम दक्षिणी छोर कन्याकुमारी में तीन समुद्रों का संगम है। इसी संगम पर तट से लगभग दो-तीन सौ मीटर की दूरी पर समुद्र के अन्दर 'देवी पादम्' नामक एक विशाल शिलाखण्ड है । इसी पर राष्ट्रीय जागरण के सिंह-सदृश कर्णधार स्वामी विवेकानन्द जी तीन दिन गहन ध्यान में मग्न रहे तथा आसेतु-हिमाचल अखण्ड भारत भूमि के दिव्य मातृस्वरूप की पावन अनुभूति उन्हें हुई थी। तभी से इस शिला को 'विवेकानन्द-शिला' कहा जाने लगा।[2]

समन्वय का प्रतीक

अनेक वर्ष तक केरल के प्रांत प्रचारक रहे श्री दत्ता जी डिडोलकर द्वारा सर्वप्रथम प्रस्तुत कल्पना के आधार पर[3], श्री गुरुजी की उपस्थिति में यह योजना बनी कि इस शिला पर स्वामी विवेकानन्द जी की स्मृति में उन की गरिमा के अनुरूप एक ऐसा स्मारक बनाया जाए, जो उत्तर भारत और दक्षिण भारत की एकता का, जो प्राचीन भारत और आधुनिक भारत के समन्वय का, जो भारत की विविध आध्यात्मिक साधना पद्धतियों की एकात्मता का और जो लौकिक-पारलौकिक पारमार्थिक उत्थान के पथ पर जीवन-लक्ष्य की ओर अनवरत आगे बढ़ते रहने की भावना का प्रतीक बन कर युग-युग तक जन-जन को अतुल प्रेरणा प्रदान कर सके।[4]

संकल्प एवं चुनौती

इस योजना को सन 1963 में स्वामीजी की जन्मशती का पुण्य-प्रेरणादायी अवसर निकट आने पर साकार करने का संकल्प किया गया। श्री मन्नथ पद्मनाभन की अध्यक्षता में विवेकानन्द शिला स्मारक समिति का गठन किया गया। समूचे देश के प्रख्यात जन इसके पदाधिकारी और सदस्य बनाए गए। किन्तु इस भव्य प्रकल्प के प्रारम्भ में ही एक गंभीर

1. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ-137-
2&4. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-2; पृष्ठ 66&67-
3. तीन सरसंघचालक; डॉ. वि.रा.करन्दीकर; स्नेहल प्रकाशन, पुणे; पृष्ठ-397

चुनौती तमिलनाडु के मसीही चर्च ने खड़ी कर दी। चर्च हर प्रकार के दल-बल-कौशल के हथकंडे अपनाने लगा।

जब तमिलनाडु सरकार ने शिला विवेकानन्द शिला स्मारक समिति को सौंप दी तो वहां मई 1963 में एक स्मारक पट्टिका लगाई गई। मसीही मदान्धों ने उसे नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर कंक्रीट की एक विशाल शूली (सलीब-क्रास) खड़ी कर दी। साथ ही चर्च ने उस स्थल पर कुख्यात पुर्तगाली मिशनरी जेवियर का स्मारक खड़ा करने की तैयारी कर ली। किन्तु कुछ निर्भय एवं साहसी स्वयंसेवक भयंकर समुद्र को तैर कर पार कर गए और उन्होंने क्रास को हटा दिया। सरकार ने तत्काल शिला के चारों ओर धारा 144 लगा दी। उससे सरकार से और चर्चा करने का अवसर मिल गया और स्मारक-निर्माण का कार्य पूर्ण उत्साह से प्रारम्भ किया गया।

त्याग और शौर्य का अमृत-कलश

संघ ने स्मारक प्रकल्प को उच्च प्राथमिकता दी। यह तभी प्रकट हो गया जब संघ के भूतपूर्व सरकार्यवाह (महासचिव) श्री एकनाथ रानडे की सेवाएं पूर्णत: इसी प्रयोजन के लिए अर्पित कर दी गयीं। विधि का भी कैसा विधान! किसे पता था कि 1962 में चीनियों के हाथों राष्ट्र को अवमानना की कड़वी घूंट पीनी थी और उसके तुरन्त पश्चात् नैराश्य और विषाद से मूर्छित राष्ट्र को शताब्दी समारोह की संजीवनी मिलनी थी। इस समारोह ने राष्ट्र के समक्ष त्याग और शौर्य तथा स्वामी विवेकानन्द के जीवन और ध्येय में प्रतिष्ठित प्राचीन आदर्शों का अमृतकलष प्रस्तुत किया।[1]

बाधा एवं स्वीकृति

उस समय प्रो. हुमायूं कबीर केन्द्रीय मत्रिमण्डल में सांस्कृतिक विभाग के मन्त्री थे। उन्होंने श्री एकनाथ जी के साथ चर्चा की और कहा कि स्मारक से सम्बन्धित प्रश्न केन्द्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता, वह तमिलनाडु सरकार का है। तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री पहले तो अनुकूल थे परन्तु श्री हुमायूं कबीर का झुकाव देखकर वे भी बदल गए। स्मारक खड़ा होना चाहिए, इस आशय का निवेदन तैयार करके श्री एकनाथ जी ने व्यक्तिश: मिलकर तीन सौ बीस सांसदों के हस्ताक्षर प्राप्त किए। उसमें कांग्रेस, कम्युनिस्ट, द्रविड़ मुनेत्र कषगम, इतना ही नहीं तो मुस्लिम लीग जैसे दलों के सभी राज्यों के संसद सदस्य सम्मिलित थे। इस कारण

१. कृतिरूप संघ दर्शनऋ पृष्ठ ३२४-२५.

अन्ततः केन्द्र सरकार द्वारा इस विषय की ओर ध्यान दिए जाने पर तमिलनाडु सरकार की स्वीकृति प्राप्त हुई।[1]

बूंद-बूंद से सागर

स्वामीजी के जीवन और ध्येय से सम्बन्धित पुस्तक-पुस्तिकाएं लाखों लोगों तक पहुंची। औद्योगिक तथा व्यापारिक घरानों के अतिरिक्त प्रायः सभी प्रांतीय सरकारों ने भी स्मारक-निधि के लिए दान दिया। नगरपालिकाओं, स्थानीय मंडल-समितियों, रोटरी और लायन्स जैसे क्लबों तथा अन्य संस्थाओं ने भी इस अनूठे राष्ट्रीय प्रकल्प में यथाशक्ति अपना अपना अर्घ्य दिया। इसमें संदेह नहीं कि सर्वाधिक अंशदान सर्वसाधारण का रहा। जन-मन की बूंद-बूंद से स्मारक-निधि का सागर बना।

भव्य स्मारक

स्मारक वस्तुतः भव्य है। वास्तुकला का यह अनूठा मनोहारी नमूना अत्यल्प समय में बना। दिनांक 2 सितम्बर, 1970 को इसके भव्य उद्घाटन समारोह पर राष्ट्रपति श्री वी.वी.गिरि पधारे थे। तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री श्री एम. करुणानिधि ने अध्यक्षता की। तब से इसके दर्शनार्थ प्रतिदिन सभी आयु के नर-नारियों के झुण्ड के झुण्ड देश तथा विदेश के कोने-कोने से वहां पहुंच रहे हैं। लोगों के लिए यह मात्र दर्शनीय स्थल नहीं है, जीवन-सन्देश की खोज में भटकते लोगों के लिए वह तीर्थस्थल भी है।[2]

अनुपम जागृति संदेशक

सन 1972 के फरवरी मास में श्री गुरुजी का कन्याकुमारी में शुभागमन हुआ। स्मारक समिति के कार्यवाह के अनुरोध पर उन्होंने विख्यात आयुर्वेदाचार्य एवं मध्यभारत के संघचालक पं. श्री रामनारायण जी शास्त्री को शिला स्मारक की 'सन्देश-पुस्तिका' में स्मारक के सम्बन्ध में अभिप्राय लिखने को कहा तथा नीचे श्री गुरुजी ने अपने हस्ताक्षर कर दिए। वह संदेश इस प्रकार है, ''निश्चय ही जिस महान् आत्मा के उत्सर्गमय जीवन ने राष्ट्र को तामसी निद्रा से जगाकर प्रबुद्ध भारत को जन्म दिया, जिसके दूरदर्शी एवं प्राणोत्तेजक विचारों ने राष्ट्र की पराधीनता की शृखंला को छिन्न-भिन्न करने की अनुपम शक्ति प्रदान की, जिसके तेजोमय शब्दों ने हिन्दू धर्म को अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने की प्रेरणा प्रदान की तथा भारत के ऋषियों की

१. तीन सरसंघचालकऋ डॉ. वि.रा.करन्दीकरऋ स्नेहल प्रकाशन, पुणेऋ पृष्ठ ३६६-४००.
२. कृतिरूप संघ दर्शनऋ पृष्ठ ३२५-२६.

प्रज्ञा के चमत्कार से जिसके पराक्रम ने दिग्विजय कर समस्त विश्व में हिन्दू-धर्म की वैजयन्ती फहरायी, उन्हीं महान राष्ट्रोद्धारक स्वामी विवेकानन्द की प्रबोध शिला पर जन-जन की आत्मा में अनुपम जागृति का सन्देश देने वाला यह स्मारक चिरकाल तक समस्त विश्व को प्रकाश प्रदान करता रहे, यही मंगल कामना है।''[1]

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-२ऋ पृष्ठ ६७-६८.

6. युद्धरत भारत

श्री गुरुजी 'युद्ध एक दैवी विधान' नामक लेख में लिखते हैं, ''इसे दुर्भाग्य मानें या सौभाग्य पर वस्तुस्थिति यह है कि इस जगत् में जो बलवान् है वह निर्बल पर आक्रमण किए बिना नहीं रहता। पंचशील और सहअस्तित्व के हम चाहे जितने भी नारे लगाएं पर दुर्बल और बलवान् के बीच सह-अस्तित्व की रम्य कल्पना सत्य सृष्टि में आज तक तो परिणत नहीं की जा सकी। हमारे पूर्वजों ने मनुष्य स्वभाव के दोष को ध्यान में रखते हुए कहा कि संसार में संघर्ष अटल है। वे कल्पना जगत् में विचरण करने वाले लोग नहीं थे। जीवन के कठोर तथ्यों का विचार और अनुभव कर उन्होंने कहा कि 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का न्याय अटल है। इसलिए जो व्यक्ति या राष्ट्र स्वयं को जीवित रखना चाहता है उसे स्वयं बलवान् बनकर खड़ा रहना चाहिए जिससे कोई दूसरा उसे भक्ष्य बनाने का दुस्साहस न कर सके''[1]

चीन-भारत युद्ध

संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल के दिसम्बर 1962 के प्रस्ताव में कहा गया है, ''सन 1962 के अक्तूबर मास में लद्दाख और उत्तर-पूर्व-सीमान्त क्षेत्र में कम्युनिस्ट चीन के व्यापक और भारी आक्रमण ने शत्रु के मन्तव्यों को स्पष्ट कर दिया। वस्तुत: सन 1949 में चीन में कम्युनिस्ट शासन स्थापित होने के बाद ही उसके भारत विरोधी मन्सूबे प्रकट हो गए थे। तभी से सम्पूर्ण एशिया खण्ड में साम्यवादी शासन लाने और उसके नेतृत्व की महत्त्वाकांक्षा लेकर चीन के कम्युनिस्ट शासकों ने बीते पिछले 13 वर्षों में विस्तारवादी नीति अपनायी। मित्रता और विरोध, शान्ति की चर्चा और युद्ध इस नीति के ही प्रसंगानुसार पहलू रहे।''[2]

इतिहास दोहरा रहा है

दिनांक 18.5.1956 को पाञ्चजन्य साप्ताहिक में प्रकाशित लेख 'तिब्बत और कम्युनिस्ट मुक्ति,' में श्री गुरुजी कहते हैं,'' लगता है, इतिहास दोहरा रहा है। यह सब मानव की लिप्सा, विस्तारवृत्ति और निरंकुशता का ही नया रूप है, जो आज तिब्बत में खुलकर मृत्यु का ताण्डव रचा रहा है। तिब्बत में चीनी विजय पर खुशियां मनाने वालों के लिए तथा अपने इस देश

1. युद्ध एक दैवी विधान; मा.स.गोलवलकर; पांचजन्य, दीपावली अंक, 15-12-1963; पृष्ठ-25.
2. चीनी आक्रमण पर स्वीकृत वक्तव्य (के.का.मण्डल, दिसम्बर 1962).
संकल्प; सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ 97-98-

में भी इसी प्रकार की 'मुक्ति' का स्वप्न देखने वालों के लिए इतिहास का यह सबक है।''[1]

भविष्यदर्शी

राजस्थान के तत्कालीन प्रान्त प्रचारक श्री ब्रह्मदेव शर्मा अपने संस्मरण में कहते हैं कि ''सन 1962 में राजस्थान के प्रवास पर जब श्री गुरुजी आए तो चित्तौड़ में उनका सार्वजनिक कार्यक्रम था। अपने भाषण में श्री गुरुजी ने यह रहस्योद्घाटन किया- 'मेरे पास पक्की जानकारी है कि चीन भारत पर आक्रमण करनेवाला है। हमारे देश के नेता तो 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे लगा रहे हैं और दिल्ली के लाल किले में चीन के प्रधानमन्त्री का स्वागत कर रहे हैं, पर चीन आक्रमण करेगा।' दो दिन बाद यही बात उन्होंने अलवर के भाषण में भी दोहरायी। दोनों जगह ही श्री गुरुजी के भाषण की तीव्र प्रतिक्रिया हुई और दैवयोग से अगले ही दिन आकाशवाणी ने देश को यह समाचार देकर स्तब्भित कर दिया कि चीन की सेनाओं ने भारत पर आक्रमण कर दिया है।''[2]

चीन की आंख लद्दाख पर

श्री गुरुजी ने सन 1960 के जनवरी-फरवरी माह में सम्पूर्ण महाराष्ट्र का दौरा सदैव के अनुसार करते हुए पत्रकारों के कुछ प्रश्नों का समाधान किया। दिनांक 2 फरवरी 1960 को मुम्बई में हुए पत्रकारों के साथ चीनी आक्रमण से सम्बन्धित वार्तालाप में वे कहते हैं, ''मुझे तो चीनी आक्रमण का समाचार 4-5 वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो गया था। उस समय मैंने सार्वजनिक भाषणों में उसका उल्लेख भी किया था। उस समय कलकत्ता के एक दैनिक पत्र के सम्पादक ने लिखा था कि 'ये गैर ज़िम्मेदारी से ऐसी बातें करते हैं। यदि ऐसा होता तो क्या सरकार को यह पता नहीं लगता।' अब आक्रमण का समाचार आने पर उसने कहा कि आपका कहना ही ठीक था। दु:ख की बात यह है कि आज भी यह आक्रमण जारी है।

''उसी अवधि में गोरखपुर से निकलने वाले मासिक 'कल्याण' में श्री मीरजकर ने एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने कहा था कि कैलाश व मानसरोवर की यात्रा करते समय रास्ते में चीन की चौकियां पड़ती हैं और उन चौकियों पर यात्रियों के सम्पूर्ण सामान की तलाशी लेने के बाद ही उन्हें

1. श्री गुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-3; पृष्ठ 81&85.
2. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-1; पृष्ठ 248-49.

आगे जाने दिया जाता है। वास्तव में लद्दाख के क्षेत्र में बना हुआ मार्ग काफी पहले ही बनकर तैयार हो चुका था। सन 1954 में उस पर भारी वाहनों का यातायात चालू हो गया था। मैने उसी समय कह दिया था कि चीन की आंख लद्दाख पर है। उस समय लोगों ने उसपर ध्यान नहीं दिया।

भारत सरकार की उदासीनता

इसी वार्तालाप मे श्री गुरुजी आगे कहते हैं, ''दुर्दैव की बात तो यह है कि भारत ने प्रारम्भ मे ही तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व स्वीकार करके भारी गलती की है। अंग्रेज़ों ने तो संधि करके वहां पर अपनी सेना भी रखी थी। हम लोगों ने ही उसे वापस बुला लिया। प्रारम्भ में ही यदि ठीक प्रकार से बात की जाती तो सेना हटाने की नौबत न आती। इसीलिए आचार्य कृपलानी ने कहा कि 'तिब्बत पर किए गए बलात्कार जैसे जघन्य पाप में से पंचशील का जन्म हुआ है!' यह ठीक है।

''वस्तुत: अपनी भारत सरकार पहले से ही सीमा के प्रश्न पर उदासीन रही है, इसलिए यह सब हो रहा है। अपनी सीमाओं के सम्बन्ध में हमें सजग रहना होगा। इसके विपरीत अपने प्रधानमन्त्री कहते हैं कि 'नाट ए ब्लेड आफ् ग्रास ग्रोज़् देअर' (वहां तो घास का तिनका तक नहीं उपजता), सब कुछ बर्फमय ही है इत्यादि। अपनी ही सीमा के सम्बन्ध मे ये उद्गार कितने दु:खद हैं। स्वदेश की एक इंच भूमि के बारे में भी इस प्रकार की बातचीत करना अनुचित है। यह तो प्रत्यक्ष अपमान है।''[1]

अभेद्य शक्ति के रूप मे खड़े हों

चीन के साथ सन 1962 में प्रत्यक्ष युद्ध छिड़ जाने पर सब नागरिकों को और विशेष रूप से स्वयंसेवकों को, युद्ध जीतने के लिए शासन के सब प्रयत्नों में कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रयत्नशील रहने का आवाहन, श्री गुरुजी ने दिनांक 29.10.1962 के अपने वक्तव्य में किया। इसमें वे कहते हैं, ''अब प्रबल शत्रु देश की सीमा में घुस आया है। अब सभी राष्ट्रभक्तों को छोटे-मोटे आपसी मतभेद भुलाकर, कन्धे से कन्धा लगाकर एक अभेद्य शक्ति के रूप में खड़ा होना अनिवार्य है। शासन के आवाहन पर सक्षम शरीर के सब व्यक्तियों को सेना के विभिन्न भागों में काम करने के लिए पर्याप्त संख्या में तत्परता से आने के लिए सिद्ध रहना भी आवश्यक है। जनता को नैतिक दबाव से तथा शासन को अपनी शक्ति से,

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-४ऋ पृष्ठ ८८-९४.

श्रम का शोषण न हो, श्रमिक सन्तुष्ट रहकर सोत्साह काम में जुटे रहें, इस हेतु अतीव सतर्कता बरतनी चाहिए। विध्वंसक कार्यवाहियां भी होने की सम्भावना है, अत: ग्राम-ग्राम में, नगरों के हर मोहल्ले में स्वयंस्फूर्ति से संगठित होकर अहोरात्र इस ओर ध्यान देना, शांति तथा सुव्यवस्था बनाए रखना सब का कर्त्तव्य है।

विश्वासयुक्त सर्वास्वार्पण की सिद्धता

श्री गुरुजी आगे कहते हैं, ''संकट बड़ा है सत्य है। इसी कारण जनता का मन: संतुलन, धैर्य, परस्पर विश्वास, सहकारिता तथा संकट पर निश्चय से विजय पाकर राष्ट्र की ध्वजा जगत् में अधिकाधिक ऊंची उठाने का दृढ़ विश्वास उससे भी बड़ा होना चाहिए। श्रम, कर्तव्यनिष्ठा, सर्वस्वार्पण की सिद्धता, धैर्य, वीरता, जीवन में उतारकर यावत्काल परिश्रम करने के लिए आबालवृद्ध सब को कटिबद्ध रहना चाहिए।''[1]

तिब्बत की मुक्ति आवश्यक

तिब्बत की मुक्ति और नेपाल से मधुर सम्बन्धों की आवश्यकता हेतु विदेश नीति में सुयोग्य परिवर्तन का निर्देश करते हुए नागपुर से दिए गए दि. 5 नवम्बर, 1962 के वक्तव्य में श्री गुरुजी बतलाते हैं, ''अब जब कि चीन ने पंचशील संधि को अस्वीकृत कर दिया है और वह हमारी सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा है, हमें तिब्बत को स्वाधीन कराने का प्रयास करना चाहिए। पाकिस्तान वर्तमान संकट पूर्ण स्थिति से लाभ उठाने की सोच सकता है और मुझे इसमें संशय है कि अमेरिका उसे नियन्त्रित कर सकेगा। नेपाल के साथ शीघ्रातिशीघ्र मधुर एवं प्रगाढ़ सम्बन्ध प्रस्थापित करना भारत सरकार के लिए आवश्यक है। नेपाल नरेश के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध प्रस्थापित करना कठिन नहीं हैं। अन्तत: वे हमारे अपने अंश हैं। हिन्दू होने के कारण उन की जड़ें यहीं हैं। यदि हम इसमें विफल रहे तो हमारी कठिनाईयां और बढ़ेंगी।''[2]

राष्ट्रहित की दृष्टि रखकर विदेशों के घटना-चक्र की ओर देखें

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता एवं संस्कृतज्ञ श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर को पैरिस (फ्रांस) में दिनांक 31.10.1962 को लिखे अपने पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''आप अपने पुरातत्त्व विषय में रमे हुए हैं, तथापि वर्तमान कालीन

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-४ऋ पृष्ठ ९५-९८.
२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-४ऋ पृष्ठ ९९-१०१.

दैनिक व्यवहार में हो रही घटनाएं आप देखते ही होंगे। उनसे ठीक बोध ग्रहण कर विशेषत: जिसमें अपना सम्बन्ध आने से अपने देश के वर्तमान तथा भावीकाल के उत्कर्षापकर्ष पर जिनका परिणाम होने की सम्भावना हो, उनका सूक्ष्म दृष्टि से अन्वेषण कर लौटें। स्वराष्ट्रहित के संदर्भ में जागतिक घटनाचक्र का उसके अंगो-उपांगों सहित अवलोकन तथा ज्ञान प्राप्त करना, बड़ा गुण है।''[1]

त्याग और शौर्य की गाथा

आक्रमण के समय जब चीनी सेनाएं अरुणाचल प्रदेश में बोमडिला पार कर चारद्वार तथा मिसामारी की ओर बढ़ने लगीं तो तेजपुर के पूरे प्रशासनतन्त्र का मनोबल टूट गया। जिलाधीश आदि कुछ उच्च पदस्थ अधिकारी जनता को शहर छोड़ने की सलाह दे स्वयं भाग खड़े हए। जेल तथा पागलखाने के दरवाज़े खोल दिए गए तथा स्टेट बैंक के नोट के बंडल जलाए और सिक्के व चिल्हर तालाब में फेंके जाने लगे। असम के तत्कालीन राजस्व मन्त्री श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने एन.सी.सी. के जवानों के सामने असहाय स्थिति प्रकट की और बिजली घर को डायनामाइट से उड़ा देने का आदेश भी दे दिया। उसी रात आकाशवाणी पर पं. जवाहर लाल नेहरू के मुख से ये दुर्भाग्यपूर्ण उद्‌गार निकले कि 'मेरा हृदय तो असम के लोगों के साथ पीछे छूटा जा रहा है अर्थात् 'असम अब अपने हाथों से निकल रहा है।' संदेश मुखर और स्पष्ट था कि भारत ने हर हालत में असम को बचाने की अपनी ज़िम्मेवारी से मुंह मोड़ लिया है और वहाँ की जनता को शत्रु की दया पर खुला छोड़ दिया है।

बलिहारी है कानू डेका, पद्‌मप्रसाद दास तथा पद्‌मजाकान्त सेनापति नाम के संघ के स्वयंसेवक व उनके कुछ अन्य साथियों की जिन्होंने युवकों की एक टोली गठित कर सेना के अधिकारियों से सम्पर्क किया तथा उनकी सहायता से रात दिन पहरेदारी कर खाली हुए घरों को पूर्व पाकिस्तानी (बांगला देशी) घुसपैठियों के हाथों लुटने से बचाया। यही नहीं, तालाब में फैंकी हुई सम्पत्ति को बटोरने के लिए बैलगाड़ियां लेकर आ रहे अराष्ट्रीय तत्त्वों से भी धन की रक्षा करवाई। दूसरी ओर सर्वश्री पूर्णनारायणसिंह, डॉ. दास, हरकान्त दास, विश्वदेव शर्मा तथा नगराध्यक्ष दुलाल भट्‌टाचार्य आदि

१. पत्रारुप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ-१७.

लोगों ने एक समिति गठित कर यह निश्चय किया कि वे हार नहीं मानेंगे और समानान्तर सरकार गठित कर नेतृत्व प्रदान करेंगे।[1]

किन्तु थोड़े समय के बाद चीन द्वारा एकतरफा युद्ध बंदी घोषित कर देने से परिस्थिति सामान्य हो गई।

गणतन्त्र दिवस समारोह का प्रमुख आकर्षण

श्री गुरुजी के मार्गदर्शन के परिप्रेक्ष्य में स्वयंसेवक असम के अतिरिक्त अन्यत्र भी तुरन्त मैदान में कूद पड़े। वे सामान्यत: सरकारी प्रयासों के लिए और विशेषत: सेना के जवानों के लिए जी जान से समर्थन जुटाने लगे। पंडित नेहरू तो इस कार्य से इतने गद्‌गद् हुए कि उन्होंने 26 जनवरी, 1963 के गणतन्त्रदिवस समारोह में सम्मिलित होने के लिए संघ की एक टुकड़ी को आमन्त्रित किया। आमन्त्रण केवल दो दिन पहले मिला था। फिर भी परेड में 3000 से भी अधिक स्वयंसेवकों ने अपने पूरे गणवेष में स्फूर्तिपूर्वक भाग लिया। उनका विशाल एवं भव्य पथ-संचलन तो वास्तव में कार्यक्रम का प्रमुख आकर्षण बन गया। जब बाद में कुछ कांग्रेसियों ने संघ को दिए गए आमन्त्रण पर आपत्ति की तो पंडित नेहरू ने आपत्ति को यह कह कर उड़ा दिया कि समस्त देशभक्त नागरिकों को परेड में भाग लेने का आमन्त्रण दिया गया था।

भारतीय मजदूर संघ का रचनात्मक दृष्टिकोण

युद्धकाल में श्रमिक दृष्टिकोण भारी महत्त्व रखता हैं। जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के एक वर्ग ने घोषणा की कि चीनी सैनिकों का उद्देश्य तो भारत को (पूंजीवादी पंजे से) 'विमुक्त करना' है। बसव पुन्नय्या जैसे उनके नेताओं ने तो यह भी कह डाला कि भारत आक्रामक था और उसने चीन के राज्यक्षेत्र को हड़प लिया था। श्रमिक-यूनियनों को भारत के रक्षा-प्रयास विफल करने और उनमें बाधा डालने का साधन बनाया गया। मोर्चे पर लड़ने वाले जवानों को खाद्य सामग्री आदि भेजने में भी बाधा डाली गई।

किन्तु भारतीय मजदूर संघ ने इसके प्रतिकूल निर्णय लिया। उसकी यूनियनों ने अपने सभी आन्दोलन तुरन्त वापस ले लिए। सभी शेष मांगे अस्थायी रूप से स्थगित कर दी गयीं। श्रमिकों से कहा गया कि वे रक्षा-उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दें और रक्षा के सभी प्रयासों में

१. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ पृष्ठ १६०-६१.

सहयोग करें।[1]

आक्रमण आज का नहीं

दिनांक 23 दिसम्बर 1962 को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक जनसभा में भाषण देते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''लगभग पिछले दो मास से चीन के शासन ने हमारे देश पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। 'प्रारम्भ कर दिया है', मैंने इसलिए कहा कि उसको आक्रमण के नाते 'स्वीकार' करने में हमारे शासन ने, पिछले दो मास से तत्परता दिखाई है। वैसे देखा जाए तो आक्रमण 10-12 साल पुराना है। मेरे जैसे एक सामान्य मनुष्य ने लगभग 10 वर्ष पूर्व चीन का भारतीय क्षेत्र में प्रवेश और उसके द्वारा भारत में अपनी स्थिति मज़बूत बनाने के लिए किए गए प्रयत्नों का उल्लेख किया था। कई अन्य जानकार लोगों ने भी चेतावनियां दी थीं। किन्तु हम लोग अपने विश्व-बन्धुत्व के भाव में इतने अधिक डूबे हुए थे, कि उस ओर ध्यान देने का मन में कभी विचार ही पैदा नहीं हुआ, यह बात अपने बड़े लोगों के बारे में कही जा सकती है।

एक तरफा युद्ध विराम - एक चाल

''चीन ने एक तरफा युद्धविराम किया है। लोगों को आश्चर्य लग रहा है कि जो चीन एक के बाद एक चौकी जीतता चला आ रहा था, वह एकाएक युद्ध-विराम कर बड़ी सज्जनता से वापस जाने के लिए सिद्ध कैसे हो गया? परन्तु इसमें आश्चर्य और असमंजस की कोई बात नहीं। प्रवास में मैंने कितने ही लोगों के मन में दुविधा देखी कि प्रत्यक्ष तो लड़ाई अब बन्द है, फिर तैयारी करना या नहीं करना? अब ज़्यादा प्रयत्न करने और धन संचय करने की आवश्यकता ही क्या? अत: अपने यहां के साहस और निश्चय को कम करने का चीन का जो प्रयास था, वह इस युद्ध विराम के पीछे हो सकता है।

सम्पूर्ण विजय का संकल्प

इसी भाषण में श्री गुरुजी ने आगे कहा, ''कुछ लोग कहते हैं कि पं. नेहरू के हाथ मज़बूत करो। परन्तु आज सच्ची आवश्यकता पं. नेहरू के हाथ व हृदय दोनों मज़बूत करने की है। उनके हृदय में यह संकल्प बने कि राष्ट्र के प्रजातांत्रिक जीवन और सम्पूर्ण मातृभूमि की, स्थिर सुरक्षा के लिए जितना भी युद्ध आवश्यक है, अवश्य करेंगे। अब, जब कि हम चीन

१. कृतिरूप संघ दर्शनऋ पृष्ठ-२८.

के बारे में अपनी मिथ्या कल्पनाएं छोड़ रहे हैं, तो तिब्बत की स्वतन्त्रता की घोषणा करें। दलाई लामा की सरकार की मदद करें, तो शत्रु को भारतीय सीमा में ही नहीं वरन् तिब्बत की उत्तरी सीमा में उस पार धकेलने में अवश्य सफलता मिलेगी। इसी प्रकार से चीन को नियमित व संचालित किया जा सकता है। बुद्धिमत्ता, सतर्कता व सतत् तत्परता का परिचय देते हुए पूर्ण विजय का संकल्प करें।''[1]

भारत-पाक युद्ध (1965)

सन् 1965 में जब भारत-पाक युद्ध प्रारम्भ हुआ तब श्री लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमन्त्री थे। उन्होंने स्वयं श्री गुरुजी को दूरभाष करके अनुरोध किया कि वे अगले दिन दिल्ली में होने वाली सर्वपक्षीय मंत्रणा समिति की बैठक में भाग लें। श्री गुरुजी उस समय प्रवास के निमित्त सांगली (महाराष्ट्र) में थे। वे तुरन्त दिल्ली पहुंचे। इस बैठक में श्री गुरुजी ने कौन सी भूमिका निभायी इसका सार्वजनिक प्रकटीकरण उन्होंने पहली बार दिनांक 8.2.1970 को नागपुर में हुए विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत प्रमुख स्वयंसेवकों के एकत्रीकरण में किया।

आक्रामक भूमिका हो

श्री गुरुजी ने कहा, ''इस बैठक में एक सज्जन ने युद्ध का हेतु स्पष्ट करने का अनुरोध किया- (लेट अस डिफाईन अवर वार एम्स)। एक नेता तो बार-बार 'युवर आर्मी' (आपकी सेना) शब्द का प्रयोग कर रहे थे। मैंने हर बार उन्हें रोक कर सुझाया - 'अवर आर्मी' (अपनी सेना) कहिए। किन्तु जब तीसरी बार भी उन्होंने वही बात दोहराई तो मैंने उनसे कहा कि 'आप यह क्या बोल रहे हैं?'' तब उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ और उन्होंने 'अवर आर्मी' कह कर गलती को सुधारा।

''इस बैठक में मैंने कहा कि हमारा 'एम' (लक्ष्य) निश्चित है। वह है अपने सम्मान की रक्षा कर आक्रामकों को करारा सबक सिखाना और विजय प्राप्त करना।''[2]

विजय सुनिश्चित है

नई दिल्ली से दिनांक 8.9.1965 को दिए गए वक्तव्य में श्री गुरुजी कहते है, ''पाकिस्तान के आक्रमण के परिणामस्वरूप हमारे देश पर

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-४ऋ पृष्ठ १०२-२४.
२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ-४०.

थोपा हुआ युद्ध गंभीर संघर्ष का रूप धारण करता जा रहा है। हम सब को परिस्थिति की चुनौती को स्वीकार करना होगा तथा दृढ़ता और धैर्यपूर्वक चलकर पूर्ण सफलता प्राप्त करनी होगी। अत: मैं सभी देशवासियों तथा विशेषत: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बन्धुओं का आवाहन करता हूं कि वे जो-जो समस्याएं पैदा हों, उनको दूर करने में सरकार का पूरा सहयोग करें। हम सत्य के लिए तथा अपनी मातृभूमि की अखण्डता और सम्मान के लिए लड़ रहे हैं। हमारी विजय सुनिश्चित है।''[1]

अणुबम बनाना अत्यावश्यक

अणुबम निर्माण के संबंध में श्रीगुरुजी कहते हैं, ''सरकार को चाहिए कि सभी उद्योगपतियों, वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों का आवाहन करें तथा उनके सहयोग से यथाशीघ्र ऐसे आयुधों का निर्माण करें जो शत्रु के प्राप्त होने वाले आयुधों से श्रेष्ठतर हों। कम्युनिस्ट चीन के पास अणुबम होने से उसका बनाना हमारे लिए भी अत्यावश्यक हो गया है। यह हमारी अंतिम विजय की प्राप्ति की क्षमता के संबंध में जनता तथा सेना के मस्तिष्क में विश्वास उत्पन्न करेगा। सिद्धांत एवं तात्त्विक निषेधों को बाधास्वरूप इसके मार्ग में नहीं आने देना चाहिए।''[2]

नित्य सिद्ध रहने का आवाहन

दिनांक 26 सितम्बर से 28 सितम्बर 1965 तक क्षेत्रीय प्रचारक तथा अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं की दिल्ली में बैठक श्री गुरुजी की उपस्थिति में हुई। आवश्यक विवेचन के उपरान्त दिए गए वक्तव्य में कहा गया कि, ''हम सब कृषक, श्रमिक, उद्योगपति तथा जीवन के अन्य कार्यक्षेत्रों में कार्यरत बन्धुओं को, सभी जीवनावश्यक वस्तुओं की उत्पादन वृद्धि का एक संकल्पित प्रयास करना होगा, जो दैनिक भोजन तक की आवश्यकता पूर्ति की आज की निर्भरता से अपने देश को मुक्त कर सके। किसी न किसी रूप में युद्ध स्थिति में बने रहने की वर्तमान दशा शीघ्र समाप्त होती नहीं लग रही। इस दीर्घकालीन संघर्ष का सामना हमें धैर्य, साहस एवं नित्य सिद्धता से करना है।''[3]

---

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ ६९-७०.

२. विचार नवनीतऋ मा.स. गोलवलकरऋ ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुरऋ पृष्ठ-३२४.

३. अंग्रेज़ी साप्ताहिक, आर्गेनाइज़र, नई दिल्लीऋ ३.१०.१९६५ऋ पृष्ठ १-१६.

भारतीय क्षात्रवृत्ति का आदर्श

आकाशवाणी वड़ोदरा (बड़ोदा) ने दिनांक 19.9.1965 को श्री गुरुजी का नभ-संदेश प्रसारित किया जिस में कहा गया था, ''युद्ध के अभी तक के परिणाम अपनी सेना के लिए शोभादायक हैं। उसी की कीर्ति अधिकाधिक उज्ज्वल हुई है। जिस-जिस भाग पर उसका स्वामित्व स्थापित होता जा रहा है, वहां के नागरिकों (खुद को पाकिस्तानी भले ही कहते हों) के साथ प्रेमपूर्ण पद्धति से व्यवहार करके आश्वासन देने की नीति अपने भारत की सच्ची क्षात्रवृत्ति की परम्परा को शोभा देने वाली है तथा संसार के अन्य देशों की दृष्टि से अपने देश को गौरवान्वित करने वाली है।''[1]

वीर गति को विनम्र गौरवांजलि

संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने, अक्तूबर, 1965 की श्री गुरुजी की उपस्थिति में हुई अपनी बैठक में भारत-पाक युद्ध से सम्बन्धित तीन प्रस्ताव पारित किए। उनमें से पहले प्रस्ताव-'वीर-गति को गौरवांजलि, राष्ट्र रक्षा में सन्नद्धता का अभिनन्दन' में कहा गया था, ''पाकिस्तान के आक्रमण से उत्पन्न परिस्थिति का जिस प्रकार भारत की जनता, सरकार और सेना ने सामना किया है, वह हमारे स्वातन्त्र्योत्तर काल के इतिहास में एक नया और गौरवपूर्ण अध्याय है। इस संदर्भ में हमारे जवानों और अफसरों ने अतुलनीय पराक्रम, असामान्य साहस तथा उच्चकोटि की रणनीति का परिचय दिया है। फलत: पाकिस्तान के पास अधिक अच्छे शस्त्रास्त्र होते हुए भी विजयश्री हमारे हाथ लगी। राष्ट्र को अपने सैनिकों पर गर्व है। रणभूमि में जिन योद्धाओं ने वीरगति प्राप्त की, उनको हम अपनी विनम्र गौरवांजलि अर्पित करते हैं?''[2]

'रणे चाभिमुखे हत:' - व्यक्ति का वंश धन्य

रायपुर के श्री गोविंदराव गोरे के सुपुत्र रणभूमि में शहीद हुए। दिनांक 30.9.1965 को श्री गुरुजी उन्हें लिखते हैं, ''आपके सुपुत्र मेजर यशवंतराव मातृभूमि की रक्षा में रणांगण में खेत हुए, यह समाचार विदित हुआ। पुत्रवियोग के दु:ख में, अपने पुत्र ने वंश धन्य किया! यह अभिमानास्पद बोध आपका सांत्वन करे। इस समय मेरी अवस्था ठीक नहीं है। राष्ट्र

---

1. गुजराती पुस्तिका 'आज नो धर्म' (प.पू. श्री गुरुजी गुजरात मां); (1965); मधु प्रकाशन, सूरत 1; पृष्ठ 3&5.
2. संकल्प; सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली; पृष्ठ- 21.

रक्षणार्थ बलिदान होने वालों में मेरे अनेक स्नेहास्पद बन्धु हैं। उनके शौर्य, धैर्य, निष्ठा आदि अलौकिक गुणों के प्रति धन्यता प्रतीत होती है। तथापि जगत् की परिपाटी के अनुसार प्रियजन वियोग का दु:ख भी हो रहा है। इस स्थिति में मन को समझाकर धीरज दे रहा हूं कि सूर्यमण्डल का भेद कर मनुष्य-जीवन सार्थक करने वालों में 'रणे चाभिमुखे हत:' व्यक्ति का भी समावेश है।''[1]

पाक-आक्रमण के पीड़ितों की सहायता

केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल का दूसरा प्रस्ताव भारत की पाकिस्तान-नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित था। मण्डल द्वारा पारित तीसरे प्रस्ताव में कहा गया था, ''पाकिस्तान के साथ युद्ध में सैनिक और अन्य शासकीय कर्मचारियों के अतिरिक्त असैनिक नागरिक भी हताहत हुए हैं। युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर पाकिस्तान ने बस्तियों पर जो बम वर्षा की उससे जन-धन की हानि हुई है। सीमान्त क्षेत्र में अनेक परिवार उद्ध्वस्त हुए हैं। हमारा शासन से अनुरोध है कि इन सब की योग्य व्यवस्था हेतु उपयुक्त योजना अविलम्ब कार्यान्वित करे। हम सभी समाजसेवी संगठनों से अनुरोध करते हैं कि वे शासन को इस आवश्यक कर्त्तव्यपूर्ति में सभी प्रकार की सहायता दें।''[2]

सीमावर्ती विस्थापित नागरिकों को तुरन्त सहायता पहुंचाने हेतु मुम्बई से दिनांक 18.11.1965 को दिए वक्तव्य में श्री गुरुजी ने कहा ''युद्ध की स्थिति का सामना करने के लिए शासन, सैनिक तथा समाज तीनों सिद्ध हुए हैं। प्रत्यक्ष युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों तथा उनके कुटुम्बियों को आवश्यक सहायता पहुंचाने के लिए समाज ने जो तत्परता दिखाई है वह अभिनन्दनीय है। किन्तु इस युद्ध के कारण सीमावर्ती नागरिकों को बहुत ही कष्ट उठाने पड़े हैं। इस समय उनकी सब प्रकार से सहायता करने के लिए शीघ्र आगे आना हम सबका परम कर्त्तव्य है।''[3]

संघ विपत्ति में काम आनेवाला मित्र

युद्ध की समूची अवधि (22 दिन) में दिल्ली में यातायात-नियन्त्रण जैसा पुलिस कर्म स्वयंसेवकों को सौंप दिया गया ताकि पुलिस और

1. पत्ररूप श्री गुरुजी; पृष्ठ 256&57-
2. संकल्प; पृष्ठ-166-
3. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-5; पृष्ठ 70&71-

अधिक आवश्यक कार्य कर सके। सेना की दृष्टि में संघ विपत्ति में काम आने वाला मित्र था। जब भी वह किसी प्रकार की नागरिक सहायता की अपेक्षा अनुभव करती तो झट दिल्ली संघ-कार्यालय को फोन कर देती। आवश्यकता पड़ने पर जब एक सेना अधिकारी ने एक अर्द्ध रात्रि को फोन किया तो अगले दिन प्रात: 500 स्वयंसेवक रक्तदान के लिए मिलिटरी अस्पताल पहुंच गए। अस्पताल के नियमानुसार रक्तदान के बाद हर स्वयंसेवक को दस रुपए दिए गए, परन्तु स्वयंसेवकों ने रुपए लौटाते हुए कहा कि उनका सदुपयोग घायल जवानों के लिए किया जाए। अमृतसर के संघ स्वयंसेवकों के सीमा के ऐसे क्षेत्र में चार कैन्टीनें खोलीं जहां शत्रु का तोपखाना गोले बरसाता था।

जम्मू में जब लाखों की संख्या में विस्थापितों की बाढ़ सी आ गई तो संघ द्वारा प्रायोजित सहायता समिति सबसे आगे थी। 15 अगस्त से 6 सितम्बर तक उसने प्रतिदिन लगभग 25 से 35 हज़ार तक लोगों के भोजन की व्यवस्था की और उनकी सभी दैनिक आवश्यकताओं को पूरा किया।

गुजरात में भी द्वारिका के निकट ओखा में कार्यरत एक संघ स्वयंसेवक ने दो सैबर जेट विमानों को मार गिराया। वे विमान बन्दरगाह पर बमबारी करने के लिए नीची उड़ान भर रहे थे। सेना के जवानों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तो उसने सच्चे स्वयंसेवक की भांति कहा, ''मैंने तो केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है।''

जब युद्ध समाप्त हुआ तो जनरल कुलवन्त सिंह ने एक संघ कार्यकर्ता से कहा, ''पंजाब भारत की रक्षक भुजा है और रा.स्व.संघ पंजाब की।''[1]

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

सन 1947 के पश्चात् पाकिस्तान ने अनेक अन्याय किए। पूर्व बंगाल के हिन्दुओं के साथ निर्घृण व्यवहार, काश्मीर के अंश को व्याप्त करना, दो बार कच्छ के रण मे आक्रमण, युद्ध-विराम घोषणा के पश्चात् भी चला हुआ आक्रमण तथा भारतीय भूभाग का अपहरण, इन सब का निराकरण तथा इतने वर्षों में भारत को जो हानि उठानी पड़ी उसकी पूर्ति, यह सब युद्ध के परिणामस्वरूप हो ऐसा श्री गुरुजी का दृष्टिकोण था।

1. कृतिरुप संघ दर्शन; पृष्ठ 30&32-

सन 1965 के अक्तूबर में जम्मू में (दि. 12), अमृतसर (दि. 13), लुधियाना (दि. 14) और अम्बाला (दि. 15) आदि स्थानों पर दिए गए सार्वजनिक भाषणों में उन्होंने इन्हीं विचारों का समर्थन किया। अपने भाषणों में उन्होंने यह भी कहा कि जो अभी लड़ाई हुई उससे लोगों की समझ में आ गया है कि बिल्कुल शांत और चुपचाप बैठा हुआ, बहुत ही नम्रता से व्यवहार करने वाला यह जो हिन्दू समाज है, वह जितना नम्र उतना कठोर भी है।[1]

ताशकन्द वार्ता भूल सिद्ध होगी

दिनांक 12.12.1965 को 'आर्गेनाइज़र' को दी गई एक विशेष भेंट में श्री गुरुजी ने कहा, ''मेरे मतानुसार प्रधानमन्त्री के लिए ताशकन्द न जाना ही उचित होगा, क्योंकि आक्रान्ता और आक्रान्त को समान धरातल पर रखकर दोनों को ही वार्ता के लिए आमन्त्रण दिया गया है। ताशकन्द वार्ता से यदि कोई परिणाम निकला तो वह भारतवर्ष के राष्ट्रीय हितों के लिए अत्यधिक घातक होगा। पाकिस्तान अभी भी आक्रामक दृष्टिकोण बनाए हुए है। इसलिए बृहत् परिमाण पर पुनः युद्ध अवश्य होगा।''[2]

शरणार्थियों की क्षतिपूर्ति

ताशकंद घोषणा के (समझौते) पश्चात् उसके बारे में 'आर्गेनाइज़र' के विशेष संवाददाता से दिनांक 16.1.1966 को हुई बातचीत में श्री गुरुजी ने कहा, ''पाकिस्तान के साथ बचे विषयों का एक साथ निपटारा कर लेना चाहिए। सन 1947 के बाद जितने मुसलमान भारत से पाकिस्तान में गए हैं, उससे दुगुनी संख्या में हिन्दू यहां पर आए हैं। पाकिस्तान को इनकी सम्पत्ति की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए। संयुक्त भारत सार्वजनिक ऋण के अपने हिस्से से भी पाकिस्तान अभी उऋण नहीं हुआ है। यदि विधिसंगत देय को देने में वह (पाकिस्तान) असमर्थ है तो इसके बदले में उसे भूमि देनी चाहिए। गत अगस्त, सितम्बर में पाकिस्तान ने हमारे ऊपर आक्रमण किया। हमारे नित्य प्रति खर्च लगभग 25 करोड़ रूपए की 'भरपाई' पाकिस्तान को करनी चाहिए।''[3]

---

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ ५६-६६.

२. आर्गेनाइज़रऋ १२.१२.१९६५ऋ पृष्ठ १-२.

३. आर्गेनाइज़रऋ १६.१.१९६६ऋ पृष्ठ-१.

हाज़ीपीर से सेना हटने के पीछे रूसी दबाव

दिनांक 24 मार्च, 1966 को सभी वृत्तपत्रों के एवं वृत्त-वितरक संस्थाओं के प्रतिनिधि श्री गुरुजी से मिलने आए थे। श्री लालबहादुर शास्त्री की असामयिक मृत्यु आदि विषयों पर बातचीत चल पड़ी। श्री गुरुजी ने कहा कि ''श्री शास्त्री जी को पत्र लिखकर मैने सावधानी बरतने की प्रार्थना की थी। उन्होंने मुझे कहला भेजा था कि हाज़ीपीर आदि छोड़ेंगे नहीं। कश्मीर का प्रश्न भी बातचीत में नहीं आने दूंगा। डा. राधाकृष्णन जी ने भी कहा था कि हाज़ीपीर से हटने का प्रश्न पैदा नहीं होता है। सारी बातचीत का संक्षेप में इतना ही निष्कर्ष था कि हाज़ीपीर अपनी ओर रखेंगे और आज़ाद कश्मीर से सीधी सीमा रेखा तय कर वहां तक ही अपनी सेना पीछे हटाने को स्वीकृति देंगें, इसी मर्यादा में पाकिस्तान से समझौता होगा। परन्तु वैसा हुआ नहीं। रुसी नेताओं के दबाव में आकर शास्त्रीजी को झुकना पड़ा।''[1] परिणामस्वरूप संशयास्पद रीति से उनका निधन हो गया।

सन 1971 का भारत-पाक युद्ध

श्री गुरुजी को राष्ट्र पर आने वाली आपदाओं की पूर्व कल्पना हो जाती थी। पूछने पर वे कहते भी थे कि मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति हृदय में धारण करने पर उस पर होने वाली सुख-दुःख की घटनाओं की अनुभूतियां सहज होने लगेंगी।

सम्भावित पाकिस्तानी आक्रमण

राष्ट्रीय स्वयंसवक संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने दिनांक 11 जुलाई, 1971 को पारित 'बांगला देश में पाकिस्तान का पिशाच-नृत्य' नामक प्रस्ताव में कहा था, ''बांगला देश से हिन्दुओं के समूलोच्छेद का कार्य पाकिस्तान ने प्रारम्भ कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप 70 लाख हिन्दू भारत आ चुके हैं और शीघ्र ही शेष हिन्दुओं के भी आ जाने की सम्भावना है।''[2]

कार्यकारी मण्डल ने दिनांक 17 अक्तूबर, 1971 को 'बांगला देश के प्रति भारत का कर्तव्य' नाम से पारित एक अन्य प्रस्ताव में कहा कि ''यदि पाकिस्तान भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस करता है तो शासन हिम्मत एवं दृढ़ता का परिचय देते हुए भारतीय सेना के विजिगीषु एवं

---

1. स्मृति पारिजात; भारतीय विचार साधना, नागपुर; पृष्ठ-108-

2. संकल्प; पृष्ठ 104&105-

पराक्रमी जवानों की सहायता से पाकिस्तान को ऐसा पाठ पढ़ाए कि फिर कभी ऐसी धृष्टता करने की उसकी शक्ति ही समाप्त हो जाए तथा बंगला देश की समस्या भी ठीक प्रकार हल होकर समस्त विस्थापित शांति एवं सम्मानपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट सकें।''[1]

आपातकालीन कर्तव्य

तत्कालीन असम प्रांत प्रचारक श्री श्रीकांत जोशी को दिनांक 3.12. 1971 को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''कल सायंकाल में प्रसृत समाचार के अनुसार कल और आज अगरताला पर आक्रमण हुआ है। आक्रमण का सिलसिला अन्यान्य क्षेत्र में भी बढ़ रहा है और प्रत्यक्ष युद्ध आरम्भ होने जैसी स्थिति बनी हुई है। कल या परसों युद्ध घोषित होता है तो आश्चर्य नहीं। सद्यः परिस्थिति में लोगों में एकता कायम रखने, अपनी सेना के बारे में आदर एवं प्रेम भरे सहयोग की सद्भावना वृद्धिंगत करने और प्रान्त में शान्ति बनाए रखने का विचार प्रसृत करना अत्यन्त आवश्यक है।''[2]

दिनांक 3 दिसम्बर को ही युद्ध की घोषणा हो जाने पर, 4 दिसम्बर को नागपुर से श्री गुरुजी ने एक निवेदन प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था, ''राष्ट्रहित सर्वोपरि है और व्यक्ति, दल आदि का विचार गौण है। इसलिए आज जब अपना राष्ट्र युद्ध स्थिति में घसीटा गया है, प्रत्येक स्वयंसेवक और संघप्रेमी व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के नाते तथा संघ के नाते, देश की रक्षा के सभी कार्यों में सरकार को मनःपूर्वक सहायता किया जाना स्वाभाविक ही है।''[3]

इस निवेदन की लाखों प्रतियां स्वयंसेवकों ने घर घर पहुंचाई और समाज सेवी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के साथ सहकार्य करते हुए, वे राष्ट्ररक्षा के प्रयत्नों में जुट गए।

कर्त्तव्यपरायणता

पहले की भांति इस युद्धकाल में भी स्वयंसेवकों ने समूचे राजस्थान, उत्तरी पंजाब, जम्मू, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में अधिकरियों को अपनी सेवाएं अर्पित कीं और हर प्रकार का नागरिक सहयोग जुटाया। उत्तर प्रदेश में तो जनजागरण का नियमित कार्यक्रम चलाया गया। लोगों को समझाया गया कि वे पाकिस्तान-समर्थक तत्त्वों और उनकी सम्भावित

१. संकल्पऋ पृष्ठ-१०५.

२. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ श्री बा.ना. वऱ्हाडपाण्डेऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ-१६७.

३. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ २०५-२०७.

पंचमांगी गतिविधियों से सावधान रहें। दिल्ली में रेडियो कालोनी में प्रसारण तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठानों तथा नज़ीराबाद के जलाशय की रक्षा के लिए किंग्जवे कैम्प पुलिस थाने के अधिकारियों ने स्वयंसेवकों की सेवाएं प्राप्त कीं। दिनांक 7 दिसम्बर 1971 को जब पाकिस्तानी विमानों ने राजस्थान के बाड़मेर रेलवे स्टेशन पर बम बरसाए तो 40-45 स्वयंसेवक तुरन्त उस खतरनाक स्थल पर पहुंचे। पेट्रोल के पीपों से लदी एक मालगाड़ी में आग लग सकती थी। स्वयंसेवकों ने रुक-रुक कर हो रही बमबारी की परवाह न करते हुए पीपों को हटाकर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया।

स्मरणीय संस्मरण

पंजाब में पाकिस्तानी सीमा से सटे फाज़िल्का नगर पर अचानक आक्रमण हुआ व बम बरसाए गए। अधिकांश लोग हड़बड़ाकर सुरक्षित स्थानों को जाने लगे। ज़िलाधिकारी (कलेक्टर) तथा अन्य सरकारी अधिकारी भी उस स्थान को खाली कर जाने की तैयारी कर रहे थे। ज़िला संघचालक ने ज़िलाधिकारी को पंजाबी देशभक्ति गीत सुनाकर उत्साहित किया। फलतः एक घण्टे के अन्दर वहां कुमुक आ गई तथा नगर को बचा लिया गया।

बंगाल में संघ कार्यकर्ताओं द्वारा सूखे मेवे के 15000 पैकेट मेजर कौशल और जनरल अरोड़ा को सौंपे गए। जवानों को सम्बोधित हर पैकेट के अन्दर रखी एक मर्मस्पर्शी टिप्पणी में कहा गया था, ''जिस पाकिस्तानी सेना ने बांगला देश पर अमानवीय अत्याचार ढाए थे, उसे इतने अल्पकाल में हराकर आपने न केवल अपनी बेजोड़ वीरता का झंडा गाड़ दिया है, अपितु भारतीय सेना के शौर्य की पुरातन प्रेरणादायी परम्परा को भी आगे बढ़ाया है। समूचे राष्ट्र को आप पर अपार गर्व है।''[1]

वर्तमान संघर्ष की पृष्ठभूमि

विजयवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश) के हेमन्त शिविर में दिनांक 7.12.1971 के अपने उद्बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''वास्तविकता यह है कि बारह सौ वर्ष पूर्व सम्पूर्ण भारत को इस्लाम मतावलम्बी बनाने की आकांक्षा लेकर, भारत को गुलाम बनाकर, उस पर सदैव अपना शासन प्रस्थापित रखने के लिए आक्रमण प्रारम्भ हुआ। वर्तमान काल के आक्रमण के पीछे भी वही आकांक्षा है। 1200 वर्ष लम्बी आक्रमण की कथा का, यह एक अध्याय है।

1. कृतिरूप संघ दर्शन; पृष्ठ 34&36-

इस वस्तुस्थिति को समझ लेने से, इस संकट का ठीक-ठीक निराकरण करने की क्षमता हमे प्राप्त होगी।''[1]

देश का अनैसर्गिक विभाजन

दिनांक 16.12.1971 को श्री गुरुजी से अनौपचारिक चर्चा के लिए पत्रकार बंगलौर में डा. नरसिंहाचार के निवास स्थान पर आ रहे थे। इसी बीच आकाशवाणी से घोषणा हुई कि बांगला देश में पाकिस्तानी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया है। चर्चा का प्रारम्भ करते हुए एक पत्रकार ने टिप्पणी की, कि श्री गुरुजी से मिलने के लिए उनके आगमन का आनन्ददायक संयोग, इस ऐतिहासिक घटना के साथ हुआ है। पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''देश का दो हिस्सों में विभाजित होना भी अनैसर्गिक ही था। हमें वह नहीं होने देना चाहिए था। परन्तु वह हुआ। अब उसका तीन हिस्सों में बंटना अवश्यम्भावी था। पाकिस्तान के ये दो हिस्से दीर्घकाल तक एक साथ नहीं रह सकते थे। विशेषत: गत दस बारह वर्षों में, इन हिस्सों में गहरी कटुता निर्माण हो गई थी। सच तो यह है कि 24 वर्षों की दीर्घ अवधि तक वे जैसे-तैसे एक साथ रह सके, यह अपने आप में आश्चर्य है।''[2]

शहीदों को श्रद्धांजलि

कोलकाता में दिनांक 1.1.1972 को एक जनसभा को सम्बोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''सेना के जिन लोगों ने इस विजय की प्राप्ति के लिए प्राण अर्पण किए, उन सब लोगों की स्मृति में कृतज्ञता एवं श्रद्धाभाव से नतमस्तक होना और अन्त:करण पूर्वक उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना कर्तव्य है। उनके बलिदान से न केवल देशरक्षा हो सकी, वरन् उन्होंने अपने देश का गौरव बढ़ाया। ऐसे लोगों के प्रयत्नों से ही हमें विजय प्राप्त हुई और दुनिया में यह सिद्ध हो सका कि भारत सशक्त परन्तु शान्तिप्रिय देश है। इसीलिए स्वतन्त्रता और राष्ट्रसम्मान के लिए जब वह खड़ा हो जाता है, तब उसका सामर्थ्य विश्व में अजेय रहता है।''[3]

वीर मृत्यु पर सांत्वना

जबलपुर (मध्य प्रदेश) के एक कार्यकर्ता श्री उमादत्त जोशी के छोटे दामाद श्री मनोहर जी को वीरगति प्राप्त हुई। दिनांक 20.12.1971 को

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ २०७-०६.
२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ २११-१६.
३. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ २१६-२२.

श्री उमादत्त जी को भेजे गए सांत्वना पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''आपके छोटे दामाद श्री मनोहर जी के वीरगति को प्राप्त होने का दु:खद समाचार प्राप्त हुआ। राष्ट्र की सेवा में प्राणार्पण करने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ, इसका गौरव अनुभव करते हुए भी अल्पायु में एक होनहार जीवन के अकस्मात् समाप्त होने का तीव्र दु:ख भी हो रहा है। आपको- विशेष रूप से आप की पुत्री को अपार शोक होना स्वाभाविक है। योगयुक्त परिव्राजक और रण में शत्रु का सामना करते हुए देहत्याग करने वाले, दोनों को सूर्यमण्डल भेदकर परममंगल गति प्राप्त करने का भाग्य मिलता है। इस वचन से अपने प्रिय व्यक्ति की श्रेष्ठ लोकप्राप्ति का विश्वास धारण कर मन को समझाना ही अपने लिए बाकी है।''[1]

स्वर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य घटना

बांगला देश की मुक्ति के पश्चात् भारत के रक्षामन्त्री मान्यवर बाबू जगजीवन राम जी को दिनांक 22.12.1971 को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''रक्षामन्त्री के नाते आपके नेतृत्व में अपनी सेना के तीनों विभागों ने अभिनन्दनीय पराक्रम कर बांगला देश मुक्त किया, वहां के लोगों को अपना जीवन स्वतन्त्रता से बनाने का आश्वासनयुक्त सुअवसर प्राप्त करा दिया, यह घटना स्वर्णाक्षरों से अंकित करने योग्य है।''[2]

भारत के गौरव में अभिवृद्धि

बंगला देश की मुक्ति के पश्चात् प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी और उनके मन्त्रिमण्डल का अभिनन्दन, अपनी अजेय सैन्य शक्ति को अभिवादन, भारत की भावी नीति का दिशा बोध और गौरव भावनायुक्त राष्ट्र की एकात्म शक्ति सुदृढ़ करने में संघ सहयोग करेगा इस संकेत को प्रकट करते हए श्रीमती गांधी को, श्री गुरुजी दिनांक 22.12.1971 को लिखते हैं, ''देश की एकात्मता, परिस्थिति का वास्तविक मूल्यांकन, राष्ट्र के स्वाभिमान तथा गौरव रक्षा का सार्थ संकल्प इसी प्रकार विद्यमान रहे। केवल संकटकाल में नहीं तो सदैव सब प्रकार की राष्ट्रोत्थान की चेष्टाओं में इसकी आवश्यकता है। अपने राष्ट्र की गौरव भावनायुक्त एकात्म शक्ति के निर्माण में रत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सदैव इसमें आपके साथ है और रहेगा। देश की प्रतिनिधि के रूप में आप इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर

१. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ पृष्ठ १६८-६६.
२. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ पृष्ठ-२०१.

अपनी राष्ट्रीय तथा विदेश नीति निर्धारित करेंगी, ऐसा मुझे विश्वास है। आपके नेतृत्व में भारत के गौरव में इसी प्रकार अभिवृद्धि होती रहे।''[1]

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने दिनांक 13-1-1972 को श्री गुरुजी को लिखा, ''आपका 22 दिसम्बर का पत्र मुझे श्री हंसराज गुप्ता द्वारा 6 जनवरी को प्राप्त हुआ। आपकी सद्भावना के लिए धन्यवाद।

'' देश के विजय में हमारी सेनाओं के साहस और शौर्य के साथ-साथ इस संकटकाल में राष्ट्र ने जो एकता दिखाई उसका भी विशेष हाथ रहा है। इस एकता को बनाए रखना राष्ट्र के हित में है, जबकि संकट अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है।''

''बंगला देश से आए हुए शणार्थी अब अपने देश को वापस जा रहे हैं। सरकार ने जनता को यह आश्वासन दिया था कि बंगला देश में पाकिस्तान सेनाओं की क्रूरता से बचने के लिए हाल में आए हुए शरणार्थी ठीक परिस्थितियां होने पर अपने घरों को वापस भेजे जाएंगे। यह प्रसन्नता की बात है कि बंगला देश की सरकार के सहयोग से यह कार्य पूरा हो रहा है।''[2]

दिनांक 17.01.1972 को श्री गुरुजी उन्हें लिखते हैं, ''आपका दिनांक 13.01.1972 का पत्र आज प्राप्त हुआ। बहुत आभारी हूँ। राष्ट्र में एकता का भाव सदैव बना रहे, यह सत्य है। सबने अपना दायित्व जानकर, समझकर इसलिये प्रयत्नशील रहना है।

''भारत की जीवनधारा में विविधता में एकत्व का साक्षात्कार करना तथा व्यवहार करना है। सबको एक ही ढांचे में ढालकर विविधता के सौन्दर्य की जीवमानता को नष्ट करना नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर सब चलें, यही कामना है।''[3]

---

१. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ पृष्ठ १६६-२००.

२. ऑर्गेनाइज़रऋ १६.६.१६७३ऋ पृष्ठ-६.

३. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-७ऋ पृष्ठ २२३-२४.

7. राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में

'कृतिरूप संघ दर्शन' पुस्तक की प्रस्तावना में श्री हो.वे.शेषाद्रि लिखते हैं, ''स्वाधीन भारत के भावी गठन के संबंध में डॉ. हेडगेवार का दृष्टिकोण हमारी राष्ट्रीय चेतना के अनुरुप ही था। 1930 में जिस दिन कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य स्वीकार किया था, उस दिन उनकी (पू.डा.जी की) लेखनी से जो शब्द झरे थे वे स्पष्ट भी हैं और दृढ़ भी:-

''हिन्दू संस्कृति हिन्दुस्थान का प्राण है। अत: यह स्पष्ट है कि यदि हिन्दुस्थान का परित्राण करना है तो हमें पहले हिन्दू संस्कृति को अपनाना होगा। यदि हिन्दू संस्कृति स्वयं हिन्दुस्थान में ही दम तोड़ देती है और हिन्दू समाज का अस्तित्व ही मिट जाता है तो मात्र बची खुची भौगोलिक इकाई को हिन्दुस्थान कहना कदापि उचित नहीं होगा। भूगोल के केवल छोटे-छोटे खण्ड राष्ट्र का निर्माण नहीं करते। संघ स्वाधीनता-प्राप्ति के प्रयासों में कांग्रेस का साथ तो देगा, पर तभी तक जब तक ये प्रयास हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के परित्राण में बाधक नहीं बनते।''[1]

पूजनीय बालासाहब देवरस बातचीत में कई बार कहते थे, ''मेरे जैसे स्वयंसेवक ने प.पू. डॉक्टरजी से एक प्रश्न पूछा था। उसमें उनके सम्मुख प्रकट किया था कि शाखा में चलने वाला दक्ष-आरम् हम कब तक करते रहेंगे? या और कुछ हम करेंगे कि नहीं?''

तो डाक्टरजी ने कहा-''अभी तो हम विद्युत उत्पादन के काम कर रहे हैं। आगे चलकर इस विद्युत का उपयोग अपने राष्ट्र-जीवन के सभी क्षेत्रों में ऊर्जा पहुंचाने के लिए भी होगा।''

श्री हो.वे.शेषाद्रि जी 'कृतिरूप संघ दर्शन' पुस्तक की प्रस्तावना में आगे लिखते हैं, कि स्वाधीन भारत के शासक उसे जिस दिशा में ले जा रहे हैं, उसका सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए प.पू. श्रीगुरुजी ने कहा था:-

''आज जिधर देखो सर्वत्र यही प्रयास हो रहा है कि हमारी जीवन-पद्धति को अमरीकी, अंग्रेजी अथवा रूसी जीवन-पद्धति के सांचे में ढाल दिया जाए। यह कैसी 'स्वतंत्रता' है जिसमें 'स्व' (हमारी प्रकृति) ही न हो? अत: यह तो निरी परतंत्रता है। यदि लेनिन को आदर्श माना जाए, तो वह 'लेनिन तंत्र' हो जाता है, स्वतंत्रता नहीं। वास्तविकता तो यह है कि हमारी ऐतिहासिक परम्परा में राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों अर्थात् धर्म और संस्कृति

1. कृतिरूप संघ दर्शन ; पृष्ठ 12&13-

के परित्राण और प्रसार को स्वतंत्रता का उद्देश्य माना गया है।''[1]

सन् 1970 में प्रान्त प्रचारक बैठक के समय प.पू. श्री गुरुजी के साथ जब श्री शेषाद्रि जी की विविध क्षेत्रों के कार्य के संबंध में चर्चा हुई तब भी इसी प्रकार के उद्गार श्रीगुरुजी ने प्रकट किए थे।[2]

इन दृढ़ मार्गदर्शी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए स्वयंसेवक राष्ट्रीय यज्ञ के विविध क्षेत्रों में राष्ट्र की प्राचीन संस्कृति को उजागर करने का प्रयास कर रहे हैं।

स्वतन्त्र एवं सर्वांगपूर्ण संघकार्य

सन 1954 में सिंदी में सम्पन्न कार्यकर्ताओं की प्रदीर्घ ऐतिहासिक बैठक में दि. 14 मार्च रात्रि के भाषण में श्री गुरुजी कहते हैं, ''पिछले कुछ वर्षों से संघकार्य के साथ-साथ और भी कुछ बातें चल रही हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्ष पूर्व अपने प्रयत्न से वृत्त-पत्र, पाठशालाएं, दवाखाने आदि आरम्भ हुए हैं। सिद्धान्त के रूप में यह मैं अवश्य कहूंगा कि संघकार्य स्वतन्त्र एवं सर्वांगपूर्ण है, उसकी पूर्ति के लिए इन बातों की आवश्यकता नहीं। ये सब काम हमें नित्य चलने वाले संघकार्य के साथ ही करने चाहिएं। ये तो संघकार्य के सम्पूरक (Addition) हैं, पर्याय (Substitution) नहीं। हमारा हिन्दू राष्ट्र है। इसका संवर्धन और संरक्षण ही हमारे कार्य की दृष्टि नहीं अपितु उसका विकास और विस्तार भी हमारा लक्ष्य है।

नवीन आदर्शाधारित लक्ष्य-पूर्ति

इसी भाषण में उन्होंने आगे कहा, ''लोग यह भी पूछते हैं कि इन (कार्यों) का संघ से सम्बन्ध क्या होगा? स्पष्ट ही उन्हें (स्वयंसेवकों को) हमने विभिन्न क्षेत्रों को पादाक्रान्त करने के लिए भेजा है। दूसरे देश में रहनेवाला अपना राजदूत जिस नीति को अपने कार्य और व्यवहार का आधार बनाता है वही उनकी भी होनी चाहिए। वह राष्ट्र का प्रतिनिधि होकर जाता है। इसलिए अपने व्यवहार के बारे में सतर्क रहता है कि कहीं उसके राष्ट्र के सम्बन्ध में उसके व्यवहार से कोई अनुचित धारणा न बन जाए।

''कई बार लोग पूछते हैं कि क्या संघ सभी क्षेत्रों पर अंकुश (Domination) रखना चाहता है? मैं पूछता हूं कि क्या कुछ लोगों को अपने कन्धों पर चढ़ाकर उनकी जय-जयकार करने और उनके चरण चूमने

१. कृतिरूप संघ दर्शनऋ पृष्ठ-१३.

२. श्री हो.वे. शेषाद्रि जी से साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक ३ नवम्बर, २००३.

के लिए इतना परिश्रम किया गया है? भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भेजे गए कार्यकर्ता एक-एक क्षेत्र को जीतने के लिए भेजे गए सेनापति के समान हैं। जिन्हें संघ के दैनंदिन कार्य से जीवंत सम्बन्ध रखकर अपने, त्याग-तपस्या, श्रम तथा कौशल से हर क्षेत्र में नया आदर्श उपस्थित करते हुए संघ के महान् लक्ष्य की पूर्ति करनी है।''[1]

अन्तःकरण में विराजमान प्रेरणा

दिनांक 28.10.1972 से 3.11.1972 तक ठाणे (मुम्बई) में संघ का एक अखिल भारतीय कार्यकर्ता सम्मेलन आयोजित किया गया। इस को सम्बोधित करते हुए श्री गुरुजी कहते हैं, ''यह अपना हिन्दू राष्ट्र है, इस ऐतिहासिक अनुभूत सत्य को यदि त्याग दिया तो क्या राष्ट्र के लिए त्याग, बलिदान, परिश्रम और विजय की आकांक्षाएं शेष रह सकेंगी? मुझे ऐसा लगता है कि आज भी अपने व्यक्तिगत जीवन की सुख-सुविधा और आशाओं को लात मारकर राष्ट्रसेवा में निश्चयपूर्वक जो लोग लगे हैं, उसका कारण उनके अन्तःकरण में विराजमान प्रेरणा है कि यह हमारा सनातन हिन्दू राष्ट्र है और इसे विश्व में सार्वभौम सत्तासम्पन्न सुखी बनाकर हम दिखायेंगे। यह प्रेरणा यदि छोड़ दी, तो समर्पित जीवन की परम्परा समाप्त हो जावेगी।

सत्य सिद्धान्त की आदरयुक्त स्वीकार्यता

''इसलिए अपने राष्ट्र-जीवन के सम्बन्ध में जो भी पर्यायवाची शब्द-प्रयोग करें, उसमें असंदिग्ध रूप से हिन्दू राष्ट्र की तेजस्विता प्रकट होनी चाहिए। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को अपने चारों ओर स्पष्ट रीति से इस सिद्धान्त की तर्कशुद्धता, इतिहास-शुद्धता और भावशुद्धता को प्रकट करते हुए चलना चाहिए। मेरा अनुभव है कि लोग इस सत्य सिद्धान्त को आदरपूर्वक सुनते और मानते हैं।

सहज सामंजस्य का स्थापित होना

''इस प्रकार कार्य करने से दूसरा एक लाभ यह भी है कि विभिन्न क्षेत्रों में सहज सामंजस्य स्थापित होता है। आज विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यकर्ता बन्धु लगे हैं। कई बार कहा जाता है कि इन सबके बीच परस्पर सामंजस्य होना चाहिए। इसके लिए क्या इतना पर्याप्त है कि किसी प्रश्न के उपस्थित होने पर ही मिलें और विचार करें? प्रश्न उपस्थित होने पर आपस में विचार-विनिमय तो करना ही होता है (बीच-बीच में भी मिलते रहना

१. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ पृष्ठ २०७-११.

चाहिए)। परन्तु यदि सब का एक लक्ष्य - 'हिन्दू राष्ट्र की स्थापना' - रहा, तो परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुए प्रश्नों पर सामंजस्य खोजने मे देरी नहीं लगेगी।''[1]

सार्वजनीन कामों में भी आदर्श उपस्थित करें

संघ-कार्यकर्ता श्री कृष्णराव इनामदार, धुले (महाराष्ट्र) को दिनांक 7.7.1955 के पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, ''नए कार्य में कभी-कभी स्वार्थपरता, अहंकार, बड़प्पन की चाह, स्पर्धा, ईर्ष्यादि अवगुण, अन्य सबको हीन मान कर उनकी खिल्ली उड़ाने की अनिष्ट प्रवृत्ति आदि बातें पैदा होती हैं। स्वपक्ष का मंडन, दूसरों का खण्डन आदि करते समय अनेक बार ये और ऐसे अनेक अवगुण हृदय में प्रवेश कर बढ़ने लगते हैं तथापि आपके पूर्वायुष्य की संस्कार-निर्माण तथा दृढ़ीकरण की योजना से आपका नित्य, नियमित दैनिक सम्पर्क रहने से आप सुरक्षित रहकर कार्यकर्ताओं का आदर्श सार्वजनिक समझे जानेवाले कामों में भी कैसा शुद्ध रहता है, यह आप अपने व्यवहार से सिद्ध करेंगे, यह मुझे विश्वास है।''[2]

संघ की दृढ़ भक्ति-परायणता

1970 के दशक के प्रारम्भ में श्रीमती इंदिरा गांधी इंग्लैण्ड की यात्रा करने वाली थीं। हिन्दू स्वयंसेवक संघ के राष्ट्रीय सचिव को दूरभाष करके इंग्लैण्ड के गुप्तचर विभाग (स्काटलैण्ड यार्ड) ने पूछा कि क्या संघ ने उनके विरुद्ध कोई प्रदर्शन करने का आयोजन किया है? सचिव ने उत्तर दिया, ''नहीं, वह हमारी जन्मभूमि की प्रधानमन्त्री हैं। भारत के राजनीतिक विषयों के बारे में हमारे जो भी विचार हों, भारत के बाहर भारत के प्रतिनिधि का आदर करना हमारा कर्तव्य है।'' स्काटलैण्ड यार्ड के अधिकारी की प्रतिक्रिया चौंकाने वाली थी :- ''हां, हमें आपका दृष्टिकोण पहले से ही भलीभांति ज्ञात था। वास्तव में तो हमारे दो वरिष्ठ अधिकारी रा.स्व.संघ का अध्ययन करने भारत गए थे। हमें पता है कि ऐसे विषयों में उसकी देश के प्रति दृढ़भक्ति-परायणता रहती है। हमने श्री गोलवलकर जी के 'बंच आफ थाट्स' का भी अध्ययन किया है। उसमें उन्होंने, जब पंडित नेहरू कुछ वर्ष पूर्व हमारे देश की यात्रा पर आए थे तो उनके विरुद्ध सोशलिस्टों के विरोध-प्रदर्शन की, निन्दा की है।''[3]

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ ११८-१९.
२. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ-३०३.
३. कृतिरूप संघदर्शनः हो.वे.शेषाद्रिऋ पृष्ठ-३७१.

मानव वंश की दिव्यता जगाना हमारा कर्तव्य

श्री घनश्याम जी महतानी को दि. 27.2.1950 को हांगकांग में लिखे पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''हम पुण्यभूमि भारत की सन्तान हैं, जिनका जीवनकार्य तथा प्रयत्न मानव वंश की दिव्यता तथा पौरुष के प्रति विश्वास जगाना है। इसलिए हम सब लोग जहां भी हों, अपनी संस्कृति का दिव्य प्रकाश हृदयों में जागृत रखें और प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार संसार की अन्य प्रकाश किरण समेटे, जिसके कारण एक ऐसी प्रचण्ड अग्निज्वाला निर्माण हो, जो सारे संसार से अंधकार और दु:ख को नष्ट कर दे।''[1]

शांति व समृद्धि की प्राप्ति

श्री अटल बिहारी वाजपेयी सन 1960 में प्रथम बार तीन मास की अमेरिका यात्रा पर गए। उनके निवेदन करने पर श्री गुरुजी ने अमेरिका की जनता के लिए संदेश दिया। श्री वाजपेयी ने यह संदेश दिनांक 28 सितम्बर 1960 को वाशिंगटन की जनसभा में पढ़कर सुनाया था। इस संदेश में श्री गुरुजी कहते हैं, ''ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई योगायोग नहीं अपितु एक भगवद्विधान ही है कि स्वामी विवेकानन्द जी ने, अपने गुरु भगवान श्री रामकृष्ण के जीवन में प्रकट शाश्वत सत्य का उद्घोष सर्वप्रथम लोकतन्त्र व मानव-प्रतिष्ठा के विश्वासी राष्ट्रों में नवीनतम व इसीलिए अत्यन्त सबल राष्ट्र अमेरिका में किया। जागतिक घटनाचक्रों के फलस्वरूप अमेरिका स्वतन्त्र विश्व के नेता के रूप मे उभरा है और अपने इस महान् उत्तरदायित्व का निर्वाह वह स्वामीजी के साधु-वचनों के स्मरण व तदनुरूप आचरण के प्रयत्नों द्वारा ही कर सकता है।

''वर्तमान भारत, कुछ अन्य देशों के समान भौतिकता में भले ही समृद्ध न हो, परन्तु जीवन के अनेक विपर्ययों के बाद भी वह अद्वैत के शाश्वत सत्य पर अडिग है। एक बार पुन: वह अपने पैरों पर खड़ा है और विश्व को ग्रस्त करने वाले वर्तमान संकट में स्वतंत्र राष्ट्रों को जागतिक विचारधारा प्रदान कर विजय में उन्हें सहायता प्रदान करने के अपने जीवन कार्य का वह साक्षात्कार कर रहा है।

''मेरी कल्पना है कि अमेरिका की जनता स्वामी विवेकानन्द जी के अमर संदेश का स्मरण करे, भारत के साथ अभेद्य मित्रता के सूत्र में

१. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ-३.

बंधी, धर्म-शक्तियां विजयशाली हों तो विश्व युद्धों से मुक्त होगा तथा मानव को शान्ति व समृद्धि प्राप्त होगी।''[1]

धर्मसंस्थापनार्थ योग्य परिस्थिति का निर्माण

जागतिक बौद्ध परिषद् के अध्यक्ष श्रद्धेय ऊ छान ठून जी, म्यांमार को दि. 20.7.1962 के पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, ''यह स्पष्ट तथा दु:खद सत्य है कि अधर्म की शक्तियां मानव जाति को अपनी लपेट में ले रही हैं। कहा जाता है कि इन परिस्थितियों में धर्म संरक्षक अवतार ग्रहण करते हैं। अधर्म के बढ़ते ज्वार को पीछे हटाने के लिए हमें पोषक परिस्थिति निर्माण करने का प्रयत्न करना होगा तथा अवतार ग्रहण योग्य भूमिका तैयार करनी होगी। हमारे यहां उच्चपदस्थ व्यक्ति भी यदि यह सोचते हैं कि शाश्वत मूल्यों का विरोध कर या कम से कम उनका निषेध कर हम कुछ इहलौकिक सुख प्राप्त कर सकते हैं, इसका अर्थ है कि वे निकृष्ट तथा अनैतिक बातों की ओर पागल जैसे दौड़ रहे हैं। हमें प्राणपण से इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से लोहा लेना होगा।''[2]

सनातन धर्म की सर्वसंग्राहकता

संघ के वर्तमान विश्व विभाग के संयोजक श्री शंकरराव तत्ववादी के यूनीवर्सिटी आफ टेक्सास, आस्टिन के वास्तव्य में उन्हें वहां हिन्दू धर्म पर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया गया था। यह जानकारी प्राप्त होने पर श्री गुरुजी ने दिनांक 29.8.1963 के पत्र में उनको कहा, ''अपने धर्म का व्यापक स्वरूप, उसका अद्वैत के आधार पर सर्व-संग्राहकत्व, अन्य सर्वमतों का यथायोग्य आदर, Proselytization (मतान्तरण) की स्पर्धात्मक, अपना-पराया भेदमूलक, अन्य-मत-विनाशक तथा परिणामत: ऐहिक सत्ता की ही पिपासा उत्पन्न करने- बढ़ानेवाली अनिष्ट तथा वास्तव में अधार्मिक प्रवृत्तियों के प्रति घृणा आदि श्रेष्ठत्व का व्यवस्थित दिग्दर्शन करने की ओर ध्यान देना हितकारी होगा।''[3]

मौलिकता का यथार्थ परिचय

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का अमेरिका जाने का कार्यक्रम निश्चित होने पर दि. 16.9-1963 के पत्र में श्री गुरुजी उनको लिखते हैं, ''आपके कारण वहां के लोगों में अपने देश के प्रति आदरयुक्त स्नेह

१. आर्गेनाइज़र, दीपावली अंकऋ २०.१०.१९६० पृष्ठ-७.
२. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ १५-१६.
३. वहीऋ पृष्ठ १७-१८.

वृद्धिंगत होगा इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। बहुत से लोग जो जाते हैं, उनके रहन-सहन तथा विचारों में पश्चिमी लोगों की ही प्रतिकृति दिखाई देती है। आपके द्वारा उन लोगों को भारतीय जीवन एवं विचारों की मौलिकता का यथार्थ परिचय हो, यही इच्छा है। वह पूर्ण होगी, यही विश्वास है।''[1]

विदेशों में अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाएं

न्यूयार्क से श्री मनोहर शिंदे ने श्री गुरुजी को लिखा कि ''मार्च मास से दो स्वतन्त्र एकत्रीकरण लेने का विचार हुआ है। 64 लोग सम्पर्क में आए हैं, 26 लोग पत्र व्यवहार से सम्पर्कित हैं।'' दिनांक 24.03.1970 के पत्रोत्तर में श्री गुरुजी ने उन्हें कहा, ''अपने राष्ट्र की श्रेष्ठ विशेषताओं की ओर लोग आकर्षित हों, आदर से देखें तथा विश्व में अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ता रहे, इसी प्रकार की कृति-उक्ति प्रत्येक की रहे। इसका प्रत्येक बन्धु को जागृत स्मरण रहे, इसके लिए प्रयत्न हो।''[2]

श्रद्धा-स्थान स्फूर्ति केन्द्र बनें

इंग्लैण्ड में रहनेवाले भारतीयों ने लन्दन में श्रीकृष्ण मन्दिर के निर्माण का निश्चय किया। मन्दिर बनने के बाद जन्माष्टमी (दि.15.8.1970) के अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति की स्थापना का आयोजन किया गया। इस दृष्टि से श्री गुरुजी का एक संदेश नागपुर में ध्वनिमुद्रित (टेप रिकार्ड) हुआ जिसे मूर्ति-स्थापना-समारोह में उपस्थित लोगों को सुनाया गया जिसमें उन्होंने कहा, ''अपने स्वाभाविक, दिन प्रति दिन के चलने-फिरने, बोलने से भी लोगों के अन्त:करण में अपने धर्म के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति अत्यन्त आदर की भावना जागृत होनी चाहिए। यह पवित्र स्थान सब लोगों के लिए स्फूर्ति केन्द्र बनकर अपने सब लोगों की ओर से अधिकाधिक मात्रा में हिन्दू धर्म संस्कृति के गौरव का कार्य यशस्विता से करा ले, यही भगवत् चरणों में प्रार्थना करता हूं।''[3]

विश्व विभाग

अफ्रीका महाद्वीप के पूर्वी भाग में स्थित कीनिया नाम का एक रमणीक देश है। इसी देश के मोम्बासा नगर में सन 1947 की मकर-संक्रान्ति के दिन 'भारतीय स्वयंसेवक संघ' के नाम से संघ शाखा का सूत्रपात हुआ।

१. श्री गुरुजी द्वारा लिखित पत्रासंग्रह,नागपुरऋ जावक पुस्तिका क्र. ३६ (३०.८.६३-११.१०.६३)ऋ
पत्रा क्र. २१७३ (अप्रकाशित).
२. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ २७-२८.
३. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ १६८-७०.

इंग्लैण्ड में संघकार्य का प्रारम्भ 'हिन्दू स्वयंसेवक संघ' के रूप में गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर सन 1966 में हुआ। इसी नाम से अमरीका, कनाडा, केरेबियन देश, यूरोप, अफ्रीका तथा पूर्व के अनेक देशों में भी यह कार्य हो रहा है। ब्रह्मदेश में 'सनातन धर्म स्वयंसेवक संघ' एवं मॉरीशस में 'मॉरीशस स्वयंसेवक संघ' के नाम से शाखा कार्य चलता है।

विश्व के लगभग 120 देशों में हिन्दू निवास करते हैं। दिल्ली से वितरित पाक्षिक पत्रिका 'संवाद' के माध्यम से लगभग 90 देशों में उनसे सम्पर्क स्थापित किया गया है। वर्तमान में 35 देशों में 500 संघ-शाखाएं व लगभग 30 देशों में सम्पर्क-केन्द्र चल रहे हैं।

वृत्तपत्रीय क्षेत्र में प्रवेश का उद्देश्य

समाचार जगत् की दृष्टि से मार्गदर्शन करते हुए दिनांक 14.3.1954 को सिंदी की कार्यकर्ता बैठक में श्री गुरुजी ने कहा, ''वृत्तपत्रीय क्षेत्रों को ही लें। किस प्रकार आदर्शविहीन होकर वे चल रहे हैं। उनमें कितनी गन्दगी तथा कितना निम्नस्तर है। चारों ओर चलने वाली इस बुराई पर आक्रमण करने के लिए ही हमने उसमें प्रवेश किया है। हमारे उन क्षेत्रों में काम करने वाले कार्यकर्ताओं को जिनमें कई प्रचारक हैं और कई जीवन-निर्वाह योग्य अल्पतम वेतन लेकर कार्य करते हैं, उनको इसी दृष्टि से विचार करना चाहिए।

''कई बार जब मनुष्य कोई कार्य प्रारम्भ करता है तों उसे उसकी धुन सवार हो जाती है। बाकी की बातें वह भूल जाता है। तो अपना आदर्श, ध्येयवाद, जीवन की पद्धति संघ के सर्वसामान्य कार्य के अनुकूल बनाकर ही उस कार्य को चलाना होगा। उसे ही संघकार्य मानकर चलना ठीक नहीं होगा। यदि कोई सम्पादन करते हुए सोच ले कि मेरा तो यही एक कार्य है तो वह योग्य है जैसे कि किसी को रक्षक का कार्य दिया तो उसे वहां डटकर खड़े रहना है, फिर यहां बौद्धिक में क्या चल रहा है यह सोचने की आवश्यकता नहीं। किन्तु जब तक कोई आकस्मिक कारण न हो या इस प्रकार का निर्देश न दिया जाए, ये सब काम हमें नित्य चलनेवाले संघकार्य के साथ मेल बिठा कर ही करने चाहियें।''[1]

प्रचार-माध्यम

सन 1947 में 'भारत प्रकाशन' ने दिल्ली से 'आर्गेनाइज़र' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् लखनऊ से साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य'

1. नययुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ 208&09-

तथा मासिक 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशित होने लगे। सन 1948 में संघ पर प्रथम प्रतिबन्ध के समय सरकार ने इन तीनों को बन्द कर दिया तथा प्रतिबन्ध समाप्ति के बाद इनका पुनः प्रकाशन शुरू हुआ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लगभग तुरन्त पश्चात् 'हिन्दुस्थान समाचार' नामक पहली देवनागरी समाचार संस्था की स्थापना की गई। सन 1975 के आपातकाल से पूर्व वह अंग्रेज़ी की Press Trust of India के बाद देश में दूसरे क्रमांक की समाचार संस्था बन गई। आपातकाल के बाद इसे बन्द करना पड़ा तथा अब इसे पुनः प्रारम्भ किया गया है।

आज भारत के अनेक प्रांतों में उनकी भाषाओं में संघ के स्वयंसेवकों द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान हैं और संघ विचार का सत्य पक्ष लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाली पत्र-पत्रिकाएं प्रांतीय भाषाओं में प्रकाशित होती हैं। संघ साहित्य भी अब विपुल मात्रा में उपलब्ध होने लगा है। अन्य प्रचार सामग्री का भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशन होता है। फैक्स, संगणक इत्यादि सुविधाओं से युक्त विश्व संवाद केन्द्र स्थापित किए गए हैं। समस्त प्रचलित और आधुनिक प्रचार - माध्यमों के द्वारा राष्ट्रीय विचारों का प्रेषण तथा पोषण करने में स्वयंसेवक जुटे हैं।

वनवासी कल्याण आश्रम

श्री गुरुजी और पूजनीय ठक्कर बाप्पा की प्रेरणा तथा जशपुर के राजा के सक्रिय सहयोग से श्री रमाकान्त केशव (बालासाहब) देशपांडे ने सन 1952 में जशपुर नगर (छत्तीसगढ़) में वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना की। प्रमुख उद्देश्य था वनवासियों की सेवा करते हुए उन्हें हिन्दुत्व की मुख्य धारा से जोड़कर रखना। आज यह कार्य नागालैण्ड, मिज़ोरम, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम जैसे छोटे और सुदूर पर्वतीय अंचलों के राज्यों में भी विस्तार पा चुका है। वनवासियों के भोलेपन का लाभ उठाकर विदेशी शक्तियां उन्हें हिन्दू धर्म से दूर करने के प्रयास करती हैं। कल्याण आश्रम द्वारा चलाए जा रहे धर्मजागरण प्रकल्पों के कारण धीरे-धीरे यश प्राप्त हो रहा है। सन 2003 के प्रारंभ तक सारे देश में कल्याण आश्रम द्वारा 8,472 स्थानों पर 11,661 से अधिक प्रकल्प चलाए जा रहे थे तथा इस कार्य में लगभग 900 पुरुष और 200 महिला पूर्णकालिक कार्यकर्ता जुटे हैं।[1]

१. साप्ताहिक पा□चजन्य नई दिल्लीऋ चैत्रा शुक्ल ४, वि. २०६० (६ अप्रैल, २००३)ऋ पृष्ठ-८३.

पंच परमेश्वर

कल्याण आश्रम, जशपुर द्वारा दिनांक 1- 4- 1963 को रामनवमी के दिन पर आयोजित धर्म-जागरण कार्यक्रम के समापन समारोह की अध्यक्षता श्री गुरुजी ने की थी। इस समारोह में भाग लेने हेतु जशपुर के आस पास के लगभग 100 गांवों से 5 हज़ार वनवासी बन्धु अपनी रामायण मण्डलियां, महाबीरी झण्डे लेकर भजन संकीर्तन करते हुए जशपुर पधारे थे। समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''वनवासी बन्धुओं का इतिहास पराक्रमपूर्ण रहा है। महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी का साथ इन्हीं लोगों ने दिया। वे हमारे ही समाज के अभिन्न अंग हैं। चार वर्णों के आधार पर कुछ लोग यह भ्रम फैलाने का प्रयास करते हैं कि वनवासी हिन्दू समाज के अंग नहीं हैं।

''किन्तु हज़ारों वर्ष पूर्व लिखे गए प्राचीन ग्रन्थों के पठन से यह स्पष्ट होता है कि हमारी समाज व्यवस्था ग्राम-ग्राम की पंचायत से लेकर आगे बढ़ती है। पंचायत के पांच सदस्यों में एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वैश्य, एक शूद्र तथा एक निषाद होता था। इसमें निषाद (वनवासी) की आवश्यकता पर ज़ोर भी दिया गया है। इन सभी को मिलाकर 'पंच परमेश्वर' कहा जाता था अर्थात् समग्र समाज समष्टि के रूप में भगवान् का विराट रूप है।''[1]

राष्ट्रभाव जागरण हमारा कर्तव्य

श्री गुरुजी सन 1963 में अजमेर (राजस्थान) के प्रवास पर गए हुए थे। अजमेर आर्यसमाज के नेताओं के विशेष आग्रह पर नगर आर्यसमाज में वैदिक मन्त्रों द्वारा सामूहिक हवन के पश्चात् उपस्थित नागरिकों को दिए अपने उद्बोधन में वे कहते हैं, ''हमारे देश में अन्य धर्मावलम्बियों का प्रभाव बढ़ रहा है। अपने देश में झारखण्ड नाम का विशाल वन्य प्रदेश है जिसमें रांची ज़िला तथा उड़ीसा का बहुत बड़ा वन्यक्षेत्र सम्मिलित है। उसमें ईसाइयों का प्रबल प्रभाव है। उस क्षेत्र में मानव सेवा के नाम पर पाठशालायें, औषधालय खोलकर वन्य प्रदेश के लोगों में वे अपना जाल फैला रहे हैं।

''वहां जीवन लगाते हुए, विशुद्ध भाव से धर्म-भाव, राष्ट्र-भाव जगाकर उनकी (वनवासियों) पवित्र भावनाओं को जगाने की आवश्यकता है। यह कार्य मिशनरी स्पिरिट से करना चाहिए। यह केवल आर्य समाज ही

१. साप्ताहिक पा□चजन्य नई दिल्लीऋ १५.४.१९६३ऋ पृष्ठ २३-२४.

नहीं अपितु हम सबका कर्तव्य है। हम नि:स्वार्थ भाव से कार्य करें।''[1]

भारतीय मज़दूर संघ

श्रमिक क्षेत्र में विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है, इसलिए प.पू. श्री गुरुजी की प्रेरणा से श्री दत्तोपंत ठेंगडी ने 23 जुलाई, 1955 को भोपाल में 'भारतीय मज़दूर संघ' की स्थापना की।

भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय मजदूर संघ की प्रत्येक बात में भारतीय दृष्टिकोण दिखता है। इसलिए इस के ध्वज का रंग भगवा है जबकि सारे श्रमिक (मज़दूर), क्षेत्र में लाल रंग का प्रचलन है। प्रतीक चिह्न निश्चित करते समय सभी गतिविधियों के केन्द्रबिन्दु 'मानव' को ध्यान में रखा गया है। अत: उद्योग और कृषि के प्रतीक चक्र और अनाज की बाली के साथ संकल्पबद्ध मानव का प्रतिनिधित्व करनेवाली मानव की बन्द मुट्ठी को भी प्रतीक चिह्न में सम्मिलित किया गया है।

भारतीय चिन्तन की यह मान्यता है कि प्रकृति में संघर्ष नहीं समन्वय है। इसलिए भारतीय मज़दूर संघ श्रम-जगत् में कार्य करते समय उसके घटक श्रमिक (मज़दूर), प्रबन्धक और पूंजीपति- इन तीनों को मिलाकर औद्योगिक परिवार की संकल्पना को सामने रखता है और इनमें समन्वय रहे, इसका प्रयास करता है। साथ ही वह औद्योगिक परिवार इससे भी बड़े परिवार अर्थात् समाज का एक अंग है, इस बात को ध्यान में रखता है। इन विचारों को व्यवहार में उतारने के लिए वह भारतीय चिन्तन के अनुरूप 'अधिकार के साथ कर्तव्य' में विश्वास रखता है। इसीलिए 1966 में राष्ट्रपति के सामने राष्ट्रीय मांग पत्र प्रस्तुत करते समय उसमें 'कर्तव्य और अनुशासन क्रम' पर विशेष बल दिया था।

श्रमिक-जगत् में मज़दूर संघ के आगमन से पूर्व 1 मई को श्रम-दिवस के रूप में मान्यता मिली हुई थी। 1 मई का भारतीय संस्कृति और परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए श्रमिक-जगत् के आद्यपुरुष विश्वकर्मा जी की जयन्ती (कन्या संक्रांति, 17 सितम्बर) को मज़दूर संघ ने श्रम-दिवस के रूप में अपनाया।

उद्घोषों (नारों) में भारतीयता

मज़दूर संघ ने 'भारत माता की जय' और 'वन्दे मातरम्' के

१. पा□चजन्य, २५.११.१९६३ऋ पृष्ठ-१०.

उद्घोषों के माध्यम से श्रमिकों में राष्ट्रीय भाव जागृत करते हुए, वर्गीय दृष्टिकोण और राष्ट्रीय दृष्टिकोण के बीच जो दीवार खड़ी की गयी थी, उसे गिरा दिया। पहले से प्रचलित नारे 'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी मांगें पूरी हों' के स्थान पर 'देश के हित में करेंगे काम, काम के लेंगे पूरे दाम' का उद्घोष प्रारम्भ किया।

राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्रहित, उद्योगहित, और श्रमिकहित परस्पर विरोधी न होकर परस्पर पूरक हैं, यह बात स्पष्ट करने के लिए मज़दूर संघ ने 'राष्ट्र का औद्योगीकरण, उद्योगों का श्रमिकीकरण, श्रमिकों का राष्ट्रीयकरण'- यह त्रिसूत्री सिद्धान्त अपनाया।

साम्यवादियों का नारा है - 'दुनिया के मज़दूरों' 'एक होओ।' मज़दूर संघ का घोषवाक्य है - 'मज़दूरों ! दुनिया को एक करो' जो 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' और 'स्वदेशो भुवनत्रयम्' के भारतीय चिन्तन के निकट है। मज़दूर संघ द्वारा 'कमाने वाला खाएगा' के स्थान पर 'कमाने वाला खिलाएगा' को मान्यता दिया जाना भी इसके भारतीय चिन्तन को प्रकट करता है।[1]

संस्थागत अनुशासन का पूर्णत: पालन

श्री गुरुजी का समय-समय पर जो मार्गदर्शन, सन 1950 में इंटक में सम्मिलित होने के पश्चात् श्री दत्तोपंत ठेंगडी को प्राप्त हुआ उसका सारांश बताते हुए वे कहते हैं, ''(1) जिस संस्था में आप कार्य हेतु जा रहे हो वहां के अनुशासन का पूर्णत: पालन कीजिए। संस्थागत अनुशासन का पालन आपका प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। यदा-कदा अनुशासन और आपकी विवेक बुद्धि में संघर्ष के आसार दिखाई दें तो अविलम्ब इस्तीफा दें। (2) ट्रेडयूनियन के आन्दोलनों के विषय में महात्मा गांधी और मार्क्स के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करें। काम और अध्ययन साथ-साथ होना आवश्यक है। इस समय मानसिक संतुलन बनाए रखना तो आवश्यक है ही, किन्तु अध्ययन का अभाव या छूट अनुचित होगी। (3) कम्युनिस्ट ट्रेड यूनियन की कार्यपद्धति का भी अध्ययन करें। (4) कार्य के निमित्त होने वाले प्रवास में अपने मज़दूर कार्यकर्ता के घर में ही निवास की व्यवस्था करें। इसे प्रथा का रूप दें। हम यदि गरीब परिवार में न रहे तो केवल किताबी जानकारी के

१. परम वैभव के पथ पर, डॉ. सदानन्द दामोदर सप्रेऋ सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली (१९९७)ऋ पृष्ठ २९-३०.

द्वारा उनके सुख दु:ख की यथार्थ कल्पना हमें नहीं हो पाएगी। ऐसी स्थिति में मानसिक एकरूपता का होना असम्भव होगा।''

श्रमिकों पर मातृवत् प्रेम

श्री ठेंगडी जी ने आगे बताया, ''(5) 30 हज़ार मैंगनीज़ मज़दूरों के प्रतिनिधि के रूप में आपका चयन हुआ है। अब एक प्रश्न का सीधा और सही उत्तर दें। क्या आप इन तीस हज़ार मज़दूरों पर उसी तरह प्रेम करते हैं जैसे आपकी मां आप पर करती है? (6) बुनकर चाहे सवर्ण हो या हरिजन या मुसलमान, उसके जाति-धर्म का कतई विचार न करें। बुनकर और उसकी समस्याएं इसी परिधि में हम विचार करें तथा कार्य की दिशा तय करें। (7) आर्थिक क्षेत्र की दृष्टि से शेड्यूल्ड कास्टस् फेडरेशन तथा अखिल भारतीय खेतीहर (भूमिहीन) संघ भी है। इस आर्थिक पहलू को यदि ध्यान में रखा तो बाकी के भूमिहीन मज़दूरों के साथ समरस होने की इच्छा उनमें जागृत होगी और साथ ही सामाजिक कटुता भी कम होगी।''[1]

किसी नए क्षेत्र में प्रविष्ट होते समय कौन सी सावधानियां ध्यान में रखनी पड़ती हैं, कैसा अनुशासन तथा चारित्र्य आवश्यक है, इस विषय में श्री गुरुजी द्वारा किए गए मार्गदर्शन का यह प्रातिनिधिक दृष्टांत है।

असीम -अथाह ज्ञान, प्रेम, देशभक्ति, धर्म-प्रवणता और धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में पारदर्शी, निरपेक्ष दिशादर्शन कराने की असीम शक्ति के माध्यम से श्री गुरुजी का मार्गदर्शन समाज जीवन में कार्यरत अनेक लोगों को सतत् प्राप्त होता रहता था।

---

१. नययुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ पृष्ठ २१२-१३.

8. सामाजिक दर्शन

समाज व्यवस्था का व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी विचार

ठाणे (महाराष्ट्र) के अखिल भारतीय कार्यकर्ता सम्मेलन में दिनांक 30 अक्तूबर, 1972 प्रातः के उद्‌बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''जिसे आधुनिक जीवन कहा जाता है, वह विश्व के कुछ देशों में दिखाई देता है। इन देशों की इस आधुनिक सुखपूर्ण जीवन की प्रक्रिया का विचार जब हम अपने जीवन सिद्धान्त के आधार पर करते हैं, तो हमें कुछ बाते स्पष्ट दिखाई देती हैं।''

स्वच्छन्द समाज

''एक विचार वहां दिखाई देता है जिसे आजकल की प्रचलित भाषा में 'परमिसिव्ह सोसायटी' - उन्मुक्त समाज का विचार कहा जा रहा है। परमिसिव्ह सोसायटी याने जहां मनुष्य को सब बातों की छूट है। किसी पर कोई बन्धन नहीं। परमिसिव्ह का सीधा मतलब है मनमानी करना। सब कुछ चलेगा - ऐसा बोला और सोचा जाता है। लेखन, भाषण, चिन्तन सभी क्षेत्रों में इसका अनुगमन होता है।

विषाक्त स्पर्द्धा

''दूसरा शब्द है स्पर्द्धा। स्पर्द्धा के बारे में तो कहा गया है कि सभी मनुष्यों में स्पर्धा होती है और स्वस्थ स्पर्द्धा के कारण प्रगति होती है। परन्तु स्पर्द्धा कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकती, स्वस्थ रह ही नहीं सकती। प्रारम्भ में भले ही उसमें अच्छा दिखाई दे, परन्तु बाद में उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। स्पर्द्धा में प्रारम्भ का विचार है कि सभी प्रकार से दूसरे से अधिक अच्छा होने की प्रेरणा परन्तु स्पर्द्धा होते ही अनुभव में आता है कि स्वयं अच्छा बनने के विचार को छोड़कर स्पर्द्धा करने वाले दूसरे को अपने से अधिक बुरा सिद्ध करना, यही विचार प्रधानता से रहता है।

पचिमी देशों में प्रचलित इस 'परमिसिव्हनेस' और 'कांपिटिशन' (स्पर्धा) में से मनुष्य का सुखी होना असम्भव है''[1]

समाजवादी विचार

सन 1949 में संघ-प्रतिबन्ध समाप्ति के तुरन्त पश्चात् उत्तर प्रदेश

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ १२०-२१.

के कार्यकर्ता सम्मेलनों में व्यक्त विचारों में श्री गुरुजी ने कहा, ''कुछ लोग समाजवाद या साम्यवाद के आधार पर भावी समाज का चित्र रखते हैं। उनके चित्र में सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक अधिष्ठान के लिए कोई स्थान नहीं है। आज समाजवादी समाज रचना के जो चित्र हमारे सामने रखे जाते हैं, उनमें मन को आकृष्ट करने वाला एक चित्र यह है कि सब अर्थोत्पादक संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण हो जाए। राजसत्ता ही सब कुछ करे और व्यक्ति को उसके ईमानदार नौकर के नाते ही काम करना चाहिए।

साम्यवाद

''इसी प्रकार का दूसरा शब्द साम्यवाद है। इस विचार के लोग सोचते हैं कि उनके चारों ओर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो बुद्धिमत्ता या अन्य कारणों से धन का उत्पादन करते हैं और ऐश करते हैं। अधिकांश ऐसा नहीं कर पाते। इसलिए वे सोचते हैं कि किसी को भी उत्पादन की शक्ति और बुद्धि न रहे। अपनी उन्नति दूसरे के बराबर हो, यह नहीं सोचते। परन्तु दूसरे की अवनति अपने बराबर अवश्य करना चाहते हैं। 'लेविलिंग डाउन' है, 'लेविलिंग अप' नहीं। इसी का परिवर्तित रूप दूसरा भी है। किसी भी मनुष्य के लिए किसी भी प्रकार की सम्पत्ति न रहे, यहां तक कि समाज की रचना भी इस सब सम्पत्ति की समानता के लिए बदल दी जाए।''[1]

दो प्रचलित प्रतिमान

प.पू. श्री गुरुजी के कथनानुसार - ''आज के संसार में समाज व्यवस्था के दो बड़े असफल प्रतिमान जनतन्त्र एवं कम्युनिज़्म प्रचलित हैं। कोई भी व्यवस्था जो स्वाभाविक असमानता को ऊपरी समानता के आधार पर पूर्णरूपेण दूर करने का प्रयत्न करती है, निश्चय ही असफल होगी। पाश्चात्य देशों में इतनी प्रगति की अवस्था होते हुए भी जनतन्त्र कुछ ऐसे ही लोगों का शासन है जो राजनीति की कला के पूर्ण ज्ञाता तथा सामान्यजन को अपने पक्ष में लाने का सामर्थ्य रखते हैं। जनतन्त्र की वह कल्पना कि राज्य 'जनता द्वारा' और 'जनता का है' जिसका अर्थ होता है कि राजनीतिक प्रबन्ध में सभी समान भागी हैं, व्यवहार मे बहुत बड़ी सीमा तक एक कल्पित कथा मात्र है।

''कम्युनिज़्म भी एकता की अपनी घोषित कल्पनाओं में से किसी एक को भी साकार करने में पूर्ण असफल हो चुका है। उसने कल्पना की

१. ध्येय दृष्टिऋ जागृति प्रकाशन नोएडाऋ माधव सदाशिव गोलवलकर, पृष्ठ ६१-६४.

थी कि श्रमिक का एकाधिपतित्व स्थापित हो जाने पर सभी के भोजन तथा जीवन की अन्य आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी। उस स्थिति में परस्पर संघर्षों के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा और इसलिए केन्द्रीय प्रभुत्व की आवश्यकता भी नहीं रहेगी। इस प्रकार राज्य लुप्त हो जाएगा और एक शासन रहित समाज का उदय होगा। कम्युनिज़्म के अनुसार यही एकता की उच्चतम अवस्था है, जिसकी मनुष्य कल्पना कर सकता है।

''किन्तु कम्युनिज़्म, जैसा कि यह भौतिकवाद पर आधारित है, स्पष्ट नहीं कह सकता कि वह आदर्श व्यवस्था कैसे अस्तित्व मे आ सकती है? यदि मनुष्य केवल एक पशु है अर्थात् एक भौतिक जीव मात्र, तो वह एक-दूसरे का भक्षण केवल इसीलिए नहीं करता कि उसे जो कोई भी अधिष्ठित सत्ता है, उसका भय है। किन्तु जब जब वह शक्ति अथवा प्रभुत्व नहीं रहेगा तो बिना कलह के वे क्यों रहेंगे? पशु के रूप में मनुष्य मनोवेगों का शिकार है, और मनोवेगों को जब तुष्ट किया जाता है तो वे और भी अधिक तीव्र हो जाते हैं। इस प्रकार का असन्तुष्ट मनुष्य दूसरों के साथ प्रेम एवं शान्तिपूर्वक कैसे रहेगा? और इस बात का भी क्या भरोसा है कि अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर भी मनुष्य, जो कि पशुओं की अपेक्षा अधिक चतुर है, 'न खाओ न खाने दो की नीति' (Dog in the manger policy) का अनुसरण नहीं करेगा? इसलिए यदि हम यह मान भी लें कि समानता स्थापित हो गई है, तो भी वह पुनः असमानता की ओर ले जाएगी।

हिन्दू समाज-रचना

''दूसरी ओर हमारे दर्शन ने समाज की उन्नत अवस्था का चित्रण किया है और उसका अकाट्य स्पष्टीकरण भी किया है। उसका वर्णन इस प्रकार है-

न वै राज्यं न राजासीत् न दण्डो न च दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजा सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

(महाभारत शान्तिपर्व 5-9-14)

(न तो राज्य था, न राजा, न दण्ड और न दण्ड देने वाली व्यवस्था। धर्म के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रजा एक दूसरे की रक्षा करती थी)

सदाचरण की संहिता है धर्म, जो समान आन्तरिक बन्धों को जागृत करता है, स्वार्थपरता को संयमित करता है तथा बिना किसी बाह्य प्रभुत्व के

जनता को सामंजस्य की स्थिति में एक साथ बनाए रखता है। न तो स्वार्थपरता होगी, न अपसंचय तथा सभी मनुष्य सम्पूर्ण समाज के लिए जियेंगे और कार्य करेंगे।

यह धर्म ही मानव जीवन का विशिष्ट लक्षण है।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिःसमानाः।।

(हितोपदेश। कथामुख। 25)

(आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन पशु और मनुष्य में समान हैं। मनुष्यों में धर्म ही विशेष होता है,अतः धर्महीन मनुष्य पशु के समान होता है)

समानता नहीं वरन् सामंजस्य

''मानव जीवन में धर्म के पूर्ण उदय से स्वाभाविक असमानताओं के रहते हुए भी, मानव प्राणी उच्चतम सामंजस्य मे रहने की योग्यता प्राप्त करेगा। यह एक लंगड़े और अंधे के सहयोग के समान है। लंगड़े आदमी को टांग मिल जाती है और अंधे को आंख। सहयोग की भावना असमानता की कटुता दूर कर देती है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का हमारा दृष्टिकोण संघर्ष का न होकर सभी व्यक्तियों में उस एक सत्य के विराजमान होने के बोध से उत्पन्न सामंजस्य और सहयोग का रहा है। व्यक्ति सामाजिक व्यक्तित्व का एक सजीव अंग होता है। व्यक्ति और समाज दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। परिणामतः दोनों ही एक दूसरे से शक्ति प्राप्त करते हुए लाभान्वित होते हैं।''[1]

समाज व्यवस्था का आधार

समाज व्यवस्था के आधार के बारे में श्री गुरुजी ने कहा, ''हम वह शुद्ध एकत्व की भावना पुनरुज्जीवित करें जिसका प्रादुर्भाव इस अनुभूति के द्वारा होता है कि हम सभी इस महान् पवित्र जन्मभूमि भारत माता के पुत्र हैं । हमारे समाज-पुरुष की सभी धमनियों में एक बार यह एकता का जीवन स्रोत प्रवाहित होना आरम्भ हो जाए, तो हमारे राष्ट्र-जीवन के सभी अंग स्वतः क्रियाशील हो जाएंगे तथा सम्पूर्ण समाज के कल्याण हेतु मिलकर कार्य करने लगेंगे। इस प्रकार का जीवमान और वर्धमान समाज अपनी प्राचीन पद्धतियों एवं प्रतिमानों से जो कुछ आवश्यक है और जो हमें प्रगति के पथ पर अग्रसर करने वाला है, उसे सुरक्षित रखेगा तथा शेष को जिनकी

१. विचार नवनीतऋ मा.स.गोलवलकरऋ पृष्ठ २५-२७.

उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, फेंक देगा एवं उनके स्थान पर नवीन पद्धतियों का विकास करेगा। किसी को भी प्राचीन व्यवस्था के समाप्त होने पर आंसू बहाने की आवश्यकता नहीं है और न नवीन वस्तुओं की व्यवस्था के स्वागत में पीछे हटने की ही आवश्यकता है।

''यही सब सजीव एवं वर्धमान शरीर-धारियों की प्रकृति होती है। ज्यों-ज्यों वृक्ष बढ़ता है, पकी पत्तियां और सूखी टहनियां झड़ जाती हैं और उस वृक्ष की नूतन वृद्धि के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। ध्यान में रखने की मुख्य बात यही है कि एकता का जीवन-रस हमारे समाज के ढांचे के प्रत्येक भाग में व्याप्त रहे। प्रत्येक पद्धति अथवा प्रतिमान उस जीवन-रस के पोषण में जितना उपयोगी है, उसी के अनुसार वह जीवित रहेगा, परिवर्तित होगा तथा यदि अनुपयुक्त हो गया है तो नितान्त लुप्त भी हो जाएगा। अतएव वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में सब पद्धतियों के भविष्य में वाद-विवाद करना अनुपयुक्त है। इस समय का सबसे महत्वपूर्ण प्रकार यही है कि अन्तर्निहित एकता की भावना को पुनर्जीवित किया जाए और उसके द्वारा हमारा समाज पुनः चेतनायुक्त बने। अन्य सब बातें स्वतः ठीक हो जायेंगी।''[1]

हृदय परिवर्तन का विषय

पुणे में एक बार स्वयं को प्रगतिशील कहने वाले लोगों का एक प्रतिनिधि मण्डल श्री गुरुजी से मिलने आया। उन्होंने उनसे अस्पृश्यता, जातिवाद के बारे में पूछा। श्री गुरुजी बोले- आज एक भी वर्ण अस्तित्व में नहीं है, एक भी जाति अस्तित्व में नहीं है। एक ही वर्ण, एक ही जाति अर्थात् हिन्दू। प्रतिनिधि मण्डल में शामिल लोगों ने कहा कि यदि ऐसा है तो आप अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रचार क्यों नहीं करते? श्री गुरुजी ने कहा, ''अस्पृश्यता, यह अस्पृश्यों का विषय नहीं है। यह सवर्ण हिन्दुओं के हृदय का विषय है। सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन जब तक नहीं होता, तब तक अस्पृश्यता का प्रश्न हल नहीं हो सकता। सवर्ण हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन की दृष्टि से मैं यह सोच रहा हूं और प्रयास कर रहा हूं कि पूज्य शंकराचार्यों, धर्माचार्यों की ओर से ऐसा आदेश निकले कि यहां अस्पृश्यता न रहे, यह धर्मसम्मत नहीं है।'' तब उन लोगों ने कहा कि शंकराचार्य कौन होते हैं? श्री गुरुजी ने कहा, ''आप लोग शंकराचार्य को नहीं मानते, किन्तु जिन सवर्ण हिन्दुओं का हृदय परिवर्तन करना है, वे न तो मुझे मानते हैं,

१. विचार नवनीतऋ मा.स.गोलवलकरऋ पृष्ठ-११८.

न आपको मानते हैं। वे शंकराचार्य जी को ही मानते हैं। इसलिए उनका हृदय परिवर्तन करना है तो आपके और हमारे वक्तव्यों से नहीं होगा, वह पूज्य शंकराचार्यों व धर्माचार्यों के उद्बोधन से ही होगा, और मैं इसी प्रयास में लगा हूं।''[1]

कितना अद्भुत परिवर्तन

सन् 1969 में उडुपी में हुए कर्नाटक प्रदेश विश्व हिन्दू परिषद् के दो दिन के सम्मेलन के उद्घाटन का प्रसंग। सभामण्डप प्रतिनिधियों तथा आमंत्रितों से खचाखच भरा हुआ था। पहली बार ही इतनी बड़ी संख्या में हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के जगद्गुरु, मठाधिपति, आचार्य, साधु-संत एक मंच पर एकत्र हुए थे। स्वामी चिन्मयानंद, पेजावर स्वामीजी, श्री गुरुजी, उदयपुर के महाराणा श्री भगवत सिंह जी, राजमाता विजया राजे सिंधिया तथा जनरल करिअप्पा भी उपस्थित थे।

महात्माओं के आशीर्वाद तथा उपस्थित महानुभावों के प्रेरणादायी तथा ओजस्वी भाषणों से उद्घाटन समारोह अभूतपूर्व उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। अकस्मात् आमंत्रितों में एक और सज्जन ने शिकायत की कि उन्हें भाषण करने का अवसर नहीं दिया गया। परिषद् के मन्त्री महोदय ने मुद्रित कार्यक्रम दिखाते हुए उनसे विनम्रता पूर्वक कहा, ''अगला सत्र आपकी अध्यक्षता में ही सम्पन्न होने जा रहा है।'' उन सज्जन को उनकी भूल समझ में आयी तो भी असंतोष प्रकट कर उन्होंने कहा, ''मैं जानता हूं कि उद्घाटन समारोह के वक्ताओं की सूची में मेरा नाम इसलिए नहीं रखा गया क्योंकि मैं हरिजन हूं। उद्घाटन-समारोह के बाद सब लोग चले जाएंगे। यहां तक कि अधिकांश महात्मागण भी यहां ठहरेंगे नहीं।'' श्री गुरुजी समीप ही खड़े थे, वे तत्क्षण उनके पास गए और उनसे कहा, ''सच पूछिए, तो मैं स्वयं बोलना नहीं चाहता था, अच्छा होता कि आपको बोलने का अवसर दिया जाता। अब जो हुआ, सो भूल जाइये।''

एक संस्मरणीय संकल्प

उन सज्जन का नाम श्री भरणय्या था। वे सेवानिवृत्त एम.सी.एस. अधिकारी, राज्य पी.एस.सी. के सदस्य, अत्यंत विद्वान तथा आदरणीय व्यक्ति थे। दोपहर सत्र की अध्यक्षता करने के लिए जब वे सभामंच पर उपस्थित हुए, तब उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि व्यासपीठ पर सारे

१. श्री गुरुजी और डॉ. बाबा साहब अम्बेडकरऋ श्री दत्तोपंत ठेंगड़ीऋ पा□चजन्य, चैत्रा शु. ४, वि. २०६० (६ अप्रैल, २००३)ऋ पृष्ठ-२६.

महात्मागण उपस्थित हुए हैं और मण्डप प्रात:कालीन उद्घाटनसत्र से भी अधिक खचाखच भरा हुआ है। उनके समापन-भाषण के प्रत्येक शब्द से शताब्दियों से पीड़ित अपने बन्धुओं के हृदय में समायी हुई वेदना तथा लांछना फूट पड़ी तथा उसने सम्पूर्ण श्रोताओं को झकझोर डाला। उसके पश्चात् वह परमोच्च घड़ी आई, जब विविध जगद्गुरुओं और आचार्यों ने सम्पूर्ण हिन्दू-जगत् के नाम एक ऐतिहासिक ज्ञापन प्रसारित किया जिसमें अस्पृश्यता को मिटा देने को कहा गया। इस सम्बन्ध में बाद में एक विधिवत् प्रस्ताव भी अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ पारित किया गया। वह एक संस्मरणीय संकल्प था। श्री भरणय्या भावावेग से गद्गद् हो गए। प्रारम्भ में परिषद् में एक दिन ही रुकने का विचार श्री भरणय्या ने किया था, परन्तु उन्होंने सम्पूर्ण कार्यवाही में भाग लेने का निश्चय किया। उनके निवास की व्यवस्था नगर के गणमान्य परिवार में की गई। वहां उनका अत्यन्त आदर और आत्मीयता से आतिथ्य किया गया। दोनों दिन उन्होंने श्री गुरुजी के साथ भोजन किया तथा उन दोनों के बीच अनेक विषयों पर अनौपचारिक वार्तालाप भी हुआ। वे श्री गुरुजी की प्रतिभा और हृदय जीतनेवाले सौजन्य से अत्यन्त प्रभावित हुए।

हिन्दवः सोदराः सर्वे

दूसरे दिन परिषद् के समापन समारोह के अवसर पर श्री गुरुजी द्वारा किए गए प्रेरणादायी आवाहन तथा पेजावर स्वामी द्वारा दिए गए ''हिन्दवः सोदराः सर्वे'' (सभी हिन्दू सगे भाई हैं) विदाई मन्त्र से श्रोतृवृंद मन्त्रमुग्ध हो गया। धर्माचार्य और प्रतिष्ठित सज्जन एक-एक व्यासपीठ से धीरे-धीरे उतरने लगे। मंडप के बाहर जाने के मार्ग पर श्री भरणय्या किसी की प्रतीक्षा करते हुए खड़े दिखाई दिए। ज्योंही श्री गुरुजी उस द्वार पर पहुंचे श्री भरणय्या ने उन्हें अपने बाहुपाश में बांध लिया। उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। कुछ क्षण बाद रुंधे स्वर से उन्होंने कहा, ''यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम लोगों के लिए आपने यह कार्य अपने हाथों में लिया है। श्री गुरुजी ने कहा, ''मैंने अकेले ने ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दू समाज ने इस समस्या का भार लिया है।''

शताब्दियों के अन्याय और लांछना के कलंक को धो डालने वाली उस एक कृति के प्रति कृतज्ञता तथा हर्ष ही मानों उनकी आंखों के आंसुओं से अभिव्यक्त हो रहा था! यह कितना अद्भुत परिवर्तन था![1]

1. श्री यादवराव जी जोशी; प्रस्तावना, स्मृति परिजात; भारतीय विचार साधना, नागपुर (पृष्ठ क्र. अंकित नहीं).

संघ जीवन का सर्वोत्तम क्षण

संघ के भूतपूर्व सहसरकार्यवाह श्री यादवराव जोशी जी कहते हैं, ''सन 1969 में उडुपी में कर्नाटक प्रदेश विश्व हिन्दू परिषद् के सम्मेलन में समस्त धर्माचार्यों द्वारा सर्वसम्मत्ति से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि 'सब हिन्दू भाई भाई हैं, कोई भी पतित नहीं है।' यह प्रस्ताव पारित होते ही श्री गुरुजी का हृदय आनन्द से उमड़ पड़ा। वे कह उठे, धन्य है ! धन्य है ! यह ऐतिहासिक क्षण धन्य है! अपने को न रोक पाते हुए श्री गुरुजी ने सम्मेलन के संचालक से कहा कि सभी प्रतिनिधियों से कहो, 'तालियां बजाओ।' जय घोष का आवाहन करने के लिए श्री गुरुजी ने स्वयं तालियां बजाईं और जयघोष किया। उनका चेहरा उस समय आनन्द से खिल उठा था। ऐसी आनन्द विभोर अवस्था में मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। मुझे लगता है कि वह उनके संघ जीवन के आनन्द (Finest hour) का सर्वोत्तम क्षण था। मुझे एक ओर ले जाकर उन्होंने कहा - 'यादवराव, यह सम्मेलन और इस सम्मेलन की कार्यवाही ऐतिहासिक माननी पड़ेगी।''[1]

समाज कल्याण का व्यापक दृष्टिकोण

श्री प्रतापचन्द्र नवले बी.ए. का कुमारी हीरा करेप से अन्तर्जातीय विवाह होना निश्चित हुआ। चिरंजीव वर ने श्री गुरुजी को निमन्त्रण पत्र भेजा। उसके अतिरिक्त आशीर्वचन का संदेश भेजने की प्रार्थना भी की। दिनांक 7.10.1945 को श्री गुरुजी उत्तर देते हैं, ''समाज कल्याण के व्यापक दृष्टिकोण से आपने स्वयं जो जीवन व्यवस्था की है वह आपको व्यक्तिशः निरन्तर सुखदायी हो और समाज जीवन में वैमनस्यशून्य एकत्व निर्माण करने वाली हो, यही है श्री परमेश्वर से मेरी प्रार्थना। बुद्धिपुरस्सर एवं विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर यह सम्बन्ध निर्माण करने से आपके सम्मुख सहजरूप से समाज के उत्कर्ष का लक्ष्य है। अतः यह विवाह परम मंगलमय ही होगा, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं।''[2]

श्री गुरुजी अन्तर्जातीय विवाह के विरोधी नहीं अपितु पक्षधर थे। उनकी धारणा थी कि प्रेम कानून से नहीं हो सकता, जहां प्रेम है वहां विवाह होगा और वह विवाह अन्तर्जातीय भी हो सकता है।

१. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ चं.प. भिशीकरऋ पृष्ठ २३०-३१.

२. श्री गुरुजी समग्र संकलनऋ प्रबुद्ध प्रतिष्ठित जन, पत्रा क्र. ६, दि. ७.१०.१९४५ऋ डॉ. हेडगेवार भवन, महाल, नागपुर.

अनेक क्षेत्रों में उत्कृष्ट

''यह कहना कि ये तथाकथित अस्पृश्य जातियां मन-मस्तिष्क सम्बन्धी गुणों में आनुवांशिक रूप से ही अक्षम हैं और वे आने वाले दीर्घकाल तक शेष समाज के स्तर तक नही पहुंच सकती, उनका अपमान ही नहीं, बल्कि तथ्यों का विडम्बनापूर्ण उपहास भी है। इतिहास साक्षी है कि गत एक हज़ार वर्षों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में ये तथाकथित अस्पृश्य ही अग्रणी रहे हैं। महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह और छत्रपति शिवाजी की सेनाओं के सर्वाधिक पराक्रमी व कर योद्धाओं में यही लोग रहे हैं। दिल्ली तथा बीजापुर की विद्रोही शक्तियों के विरुद्ध छत्रपति शिवाजी के कुछ महत्वपूर्ण युद्धों में हमारे इन्हीं शूरवीर और साहसी बन्धुओं ने मानव आपूर्ति एवं नेतृत्व प्रदान किया था।

''केवल युद्धक्षेत्र में ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक जगत् में भी हमारे ये बन्धु श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं। इन जातियों में ऐसे असंख्य साधु-संन्यासियों ने जन्म लिया है जिन्होंने हमारे समाज के सभी वर्गों की असीम श्रद्धा प्राप्त की है। इन भाइयों में हमारे धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा तथा विश्वास सम्पूर्ण समाज हेतु सदैव प्रेरणादायक रहा है। धर्म के नाम पर शेष समाज के हाथों सभी प्रकार का अपमान तथा उत्पीड़न सहकर भी इन बन्धुओं ने धर्म परिवर्तन के प्रलोभनों का दृढ़ता से प्रतिकार किया है। देश-विभाजन के दौर में बंगाल के लाखों नामशूद्रों (अछूतों) ने इस्लाम ग्रहणकर अपने प्राण बचाने के स्थान पर अवर्णनीय कष्ट सहन करना अधिक पसन्द किया। बाद में इन्हें भारत के सीमा-क्षेत्रों में ही हिन्दू के रूप में अप्रवासी (निर्वासित) बनना पड़ा।

गांधीजी को सुखद आश्चर्य की अनुभूति

''दिनांक 25.12.1934 को वर्धा के संघ शिविर में दुर्लभ दृश्य देखकर स्वयं गांधीजी को सुखद आश्चर्य हुआ था। इस शिविर में लगभग डेढ़ हज़ार स्वयंसेवक विभिन्न पर्ण-कुटियों व छोलदारियों में ठहरे हुए थे। गांधी जी का आश्रम निकट ही था। हज़ारों तरुण स्वयंसेवकों की गतिविधियों से गुंजरित शिविर देखकर गांधी जी ने उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार वर्धा के तत्कालीन जिला संघचालक एवं कांग्रेस के पूर्व प्रान्तीय मन्त्री श्री अप्पाजी जोशी ने गांधी जी को शिविर में सादर आमन्त्रित किया। गांधी जी ने आकर शिविर की आवास, भोजनादि की सभी व्यवस्थाओं को देखा और बाद में पूछा, ''यहां कितने हरिजन हैं ?'' हमारे

संघचालक जी ने कहा, ''हमें नहीं मालूम, क्योंकि हम इस विषय में कभी कुछ पूछते ही नहीं हैं।'' गांधी जी का प्रश्न था, ''आप अब तो पूछ कर हमें बता सकते हैं।''

संघचालक जी ने उत्तर दिया, ''मैं यह नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे लिए इतना पर्याप्त है कि ये सब हिन्दू हैं।''

''तब क्या मैं पूछताछ कर सकता हूं ?''

''यह आप पर निर्भर है।''

''स्वयंसेवकों से साग्रह व विस्तृत पूछताछ के बाद गांधी जी को ज्ञात हुआ कि शिविर में हरिजनों सहित सभी जातियों के लोग हैं, जो अपनी जातियों के भान के बिना पानी पीने से लेकर खेलों तक के शिविर के समस्त कार्यक्रमों में आनन्द एवं मस्ती से भाग ले रहे हैं। यह दृश्य देखकर गांधी जी दंग रह गए।

''तत्पश्चात् 26 दिसम्बर को डाक्टरजी भी गांधीजी से मिले और उन्हें बताया कि किस प्रकार संघ अन्तर्निहित एकता पर बल देकर तथा ऊपरी मतभेदों की उपेक्षा करते हुए एकात्मता स्थापना में सफल हो रहा है। इस दृश्यानुभव का गांधीजी पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने वर्षों बाद 16 सितम्बर, 1947 को दिल्ली की भंगी कालोनी में स्वयंसेवकों को सम्बोधित करते हुए उसका पुनः वर्णन किया।''[1]

हिन्दुस्तान टाईम्स ने उनके भाषण की रिपोर्ट में लिखा है, ''गांधी जी ने कहा कि वे वर्षों पूर्व वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कैम्प में गए थे। तब संघ के संस्थापक डा. हेडगेवार जीवित थे। स्वर्गीय जमनालाल बजाज उन्हें कैम्प में ले गए थे और गांधीजी उनके (स्वयंसेवकों के) अनुशासन, अस्पृश्यता के पूर्ण अभाव तथा सादगी से प्रभावित हुए थे।''[2]

'तटबंदी' का टूट जाना

'श्री गुरुजी और बाबासाहब - समता और समरसता के महान तपस्वी, नामक लेख में श्री दत्तोपंत ठेंगडी लिखते हैं, ''जिस दिन बाबासाहब डा. भीमराव अम्बेडकर ने बौद्ध मत की दीक्षा ली, उसके अगले दिन नागपुर के श्याम होटल में ' शेड्यूलड कास्टस् फेडरेशन' के नेता उनसे मिलने आए। उन लोगों से डा. अम्बेडकर ने कहा कि आप लोगों को

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ३५१-५३.

२. द हिन्दुस्तान टाइम्सऋ १७ सितम्बर १९४७ऋ पृष्ठ-२.

राजनीति में तथा मुझे धर्म में ज़्यादा रस मिलता है। मैं भण्डारा में चुनाव हार गया हूं, इसका मुझे ज़्यादा दु:ख नहीं है, क्योंकि मैं चुनाव हारने वाला हूं, यह बात मुझे पहले से ही समझ में आ गई थी लेकिन हमारे लिए एक बहुत अच्छी बात यह है कि अस्पृश्य और सवर्ण समाज के बीच जो तटबंदी मुझे दिखाई देती थी, वह भंडारा के चुनाव में टूट गयी।

सम्भावित महान सामाजिक क्रान्ति

''डा. अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि अब हमें जो राजनीतिक दल गठित करना है, वह केवल अस्पृश्य जातियों तक ही सीमित न रहे, उसमें सवर्ण भी आ सकें। दुर्भाग्य से 2-3 महीने के अन्तराल के बाद ही बाबासाहब का निधन हो गया। यदि डा.अम्बेडकर कुछ समय और हमारे बीच रहते और जो भूमिका उन्होंने तय की थी कि अब केवल अस्पृश्यों का ही संगठन न बनाया जाए बल्कि सभी के साथ मिलकर संगठन बनाना चाहिए - यदि यह भूमिका निभाते तो एक महान् सामाजिक क्रान्ति हो सकती थी। किन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया। यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परमपूज्य श्री गुरुजी की रणनीति और उनके द्वारा किए प्रयत्नों के कारण ही सम्भव हो पाया, यह स्मरण रखना चाहिए।

श्री गुरुजी की आत्मीयता

''बुद्ध महासभा के पंडित रेवाराम कवाड़े जी बौद्ध मत के अच्छे ज्ञाता थे। इन्हें स्वयं बाबासाहब ने 'पण्डित' की पदवी दी थी। उन्होंने डा. अम्बेडकर के निधन के एक वर्ष पश्चात्, नागपुर में आयोजित संघ शिक्षा वर्ग तृतीय वर्ष के सार्वजनिक समारोह का अध्यक्ष बनना स्वीकार किया। वे धार्मिक वृत्ति के थे। उन्हें बौद्धमत का कर्मकाण्ड पूरी तरह से याद था। कार्यक्रम हेतु उनके आगमन पर स्वयं श्री गुरुजी ने उनका स्वागत किया। स्वयं अपने हाथों से चाय बनाकर उनके हाथ में कप पकड़ाया। यह देखकर वे गद्गद् हो गए थे। कार्यक्रम में अपने भाषण में पंडित रेवाराम जी ने संघ की बहुत प्रशंसा की। चूंकि संघ को कोई राजनीतिक लाभ नहीं लेना होता है, इसलिए इसकी अधिक चर्चा नहीं की गई। श्री गुरुजी की अस्पृश्य जातियों के प्रति आत्मीयता का यह एक प्रकटीकरण है।''[1]

१. श्री गुरुजी और डॉ. बाबा साहब अम्बेडकरऋ श्री दतोपंत ठेंगड़ीऋ पा□चजन्य, चैत्रा शुक्ल ४, वि. २०६० (६ अप्रैल, २००३)ऋ पृष्ठ ३३-३४.

असाधारण कार्य

डा. अम्बेडकर की 73 वीं जयन्ती पर प्रकाशित गौरव विशेषांक के लिए श्री गुरुजी ने दिनांक 9.8.1963 को एक लघु परन्तु अत्यन्त ही अर्थपूर्ण संदेश दिया था। इस दृष्टि से श्री शिरीष कडलाक, अध्यक्ष भीमराव साहित्य संघ मुंबई को सम्बोन्धित करते हुए वे लिखते हैं-

''वन्दनीय डा. अम्बेडकर की पवित्र स्मृति का अभिवादन करना मैं अपना स्वाभाविक कर्त्तव्य समझता हूं। भारत के दिव्य सन्देश की गर्जना से जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को हिला दिया था, उन श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द ने 'दीन, दुर्बल, दरिद्र, पीड़ित, अज्ञानग्रस्त भारतवासी मेरे ईश्वर हैं, उनकी सेवा करना तथा सुप्त चैतन्य जगाकर उनका ऐहिक जीवन भी सुखपूर्ण तथा उन्नत करना सच्ची ईश्वर सेवा है,' ऐसा कहकर अपने समाज की 'छुओ मत' की अनिष्ट प्रवृत्ति को जानते हुए, संलग्न रूढ़ियों पर कठोर प्रहार कर, समाज को जागृत करते हुए नई रचना निर्मिति का आवाहन किया। इसी आवाहन का प्रत्यक्ष व्यवस्थापन, राजनैतिक और सामाजिक अवहेलना से क्षुब्ध डा. अम्बेडकर ने अन्य शब्दों में तथा अन्य मार्गों द्वारा निष्ठा से किया एवं अज्ञान-दु:ख से ग्रस्त तथा अपमानित, अपने समाज के एक विशाल और महत्त्वपूर्ण भाग को आत्मसम्मानपूर्वक प्रस्थापित किया। उनका यह कार्य असाधारण है। उनके द्वारा किए गए अपार तथा श्रेष्ठ उपकार से उऋण होना कठिन है।[1]

मातृशक्ति उन्नयन

मातृत्व के त्रिविध रूप

'मातृपूजन' ग्रन्थ का प्रकाशन समारोह दिनांक 4.10.1969 को पुणे में श्री गुरुजी के हाथों सम्पन्न हुआ। इस असवर पर उन्होंने आदिशक्ति 'मातृत्व' के विविध रूपों का सरल वर्णन करते हुए कहा, ''मातृत्व के सम्बन्ध में कोमलता और पवित्रता के विचार तो सर्वत्र प्रस्तुत किए जाते हैं। रोमन कैथोलिकों में मेडोना और उसके पुत्र येशु के ऐसे चित्र जो हृदय को स्पर्श करने वाले अत्यन्त प्रेमवान हैं, पूजे जाते हैं। अपने यहां ज्ञानदायी, करुणामयी, जगत् का धारण करने वाली होने के साथ-साथ 'विनाशाय सर्वभूतानाम्' स्वरूपिणी शक्ति, इन तीनों रूपों में उसका वर्णन हुआ है।

१. पत्रारुप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ २४०-४२ (मूल मराठी).

जगन्माता का यह स्वरूप अन्य लोगों के ध्यान में नहीं आया। हमारे यहां माता, मातृभूमि और जगन्माता, मातृत्व के ये त्रिविध रूप बताए गए हैं।

''सर्वज्ञान-प्रदायिनी शक्तिदात्री जगन्माता की वास्तविक भावना के अभाव और केवल स्वार्थ-सीमित दृष्टि से ही उसकी ओर देखने के कारण जीवन पशुतुल्य बनता जा रहा है। कामप्रधान जीवन सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन का लक्षण नहीं है। अन्तःकरण में यदि कृतज्ञता का भाव नहीं रहा, तो जीवन जंगली हो जाता है। इसलिए सुसंस्कृत होकर माता के प्रति अपनी भक्ति इन त्रिविध स्वरूपों में नित्य करना अत्यावश्यक है।''[1]

भारतीय नारी का दायित्व

संघ पर प्रतिबन्ध-समाप्ति के पश्चात् दिनांक 26.7.1949 को पुणे नगर की विविध महिला संस्थाओं द्वारा श्री गुरुजी के सम्मान में स्वागत समारोह आयोजित किया गया। अपने उत्तर में श्री गुरुजी कहते हैं, ''अपने राष्ट्र की जीवनधारा अक्षुण्ण रखने का उत्तरदायित्व महिलाओं ने ही सम्भाला है और उसे उन्हें निभाना है। भारतीयत्व की उदात्त भावना,पावित्र्य, राष्ट्रजीवन की श्रेष्ठता केवल घर के अन्दर ही नहीं तो बाहर भी अपने आचरण द्वारा सिखाने का कार्य अपने आप हमें करना चाहिए, ऐसा मेरा विचार है। कला-कौशल, आनन्द, ऐहिक सुख समाधान आदि नव-नवीन कल्पनाएं आपके समक्ष होंगी, परन्तु अपनी संस्कृति के संवर्धन का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है।

''हम अपने इतिहास में स्त्रियों के महान् पराक्रम की कथायें पढ़ते हैं। उच्चतम आदर्श सामने रखते हैं। आज के युग में भी ऐसे पराक्रम की घटनायें हुई हैं। डेढ़ दो वर्ष पूर्व पंजाब के दंगों में अपने पावित्र्य संरक्षण के लिए किया गया पराक्रम चित्तौड़ को पवित्र करने वाले जौहर से भी आगे बढ़ गया। अपने समाज जीवन का आदर्श न छोड़ने का दृढ़ निश्चय, जिसे उपहास से चौके-चूल्हे का जीवन कहते हैं, उसमें भी सम्भव है।''[2]

शौर्यशाली, अजरामर कीर्तिवान महिलाओं का अनुसरण

दिनांक 27.6.1955 के आर्गेनाइज़र में प्रकाशित, चेन्नई की महिलाओं को सम्बोधन में श्री गुरुजी ने कहा, ''प्रत्येक महिला झांसी की रानी बने,

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ १०६-०७.

२. (मराठी पुस्तक) परमपूजनीय सरसंघचालक श्री गुरुजी यांची भाषणे व मुलाखती-शंकर बालकृष्ण जोशीऋ पुणे विकास मुद्रणालयऋ पृष्ठ-८२.

यह तो अपेक्षा नहीं कर सकते परन्तु अपने घर की और परिवार की देखभाल तथा साथ ही समाज की कुछ सेवा करना किसी भी महिला के लिए सम्भव है। शांतिपूर्वक सह अस्तित्व की कल्पना युधिष्ठिर द्वारा कौरवों के सम्मुख रखने पर द्रौपदी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह सभी प्रकार की भीरुता धिक्कारती है। हर काल में अति श्रेष्ठ मानी जानेवाली जीजाबाई ने, आ सकने वाले संकटों व कठिन समस्याओं को जानते हुए भी अपने इकलौते पुत्र को रणांगण में भेजा। ऐसी महान्, शौर्यशाली, अजरामर कीर्तिवान महिलाओं का अनुसरण करना चाहिये।''[1]

असम के जोरहाट नगर में आयोजित विश्व हिन्दू परिषद् के अधिवेशन में दिनांक 28 मार्च, 1970 को सम्पन्न महिला सम्मेलन को उद्‌बोधित करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''जब कुरुक्षेत्र में युद्ध को जाने के लिए सब लोग सिद्ध हो गए तब माता का आशीर्वाद मांगने के लिए धर्मराज युधिष्ठिर और अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव पांचो पाण्डव एक साथ पहुंचे। कुन्ती ने कहा कि यह धर्म-युद्ध है। क्षत्रिय माता इसलिए सन्तान को जन्म देती है।

यदर्थं क्षत्रिया सूते, तस्य कालोऽयमागतः।

न हि वैरं समासाद्य सीदन्ति पुरुषर्षभाः।। (महाभारत उद्योग पर्व)

अर्थात् जिस कारण क्षत्राणियां पुत्र को जन्म देती हैं वह समय आ गया है। वैर प्राप्त होने पर पुरुषश्रेष्ठ हतोत्साह नहीं होते।

ऐसे समय में माताओं को निर्भीक होकर वीरोचित वृत्ति से अपने धर्म तथा सत्कर्म का पालन करो, इस प्रकार की प्रेरणा देनी चाहिए।''[2]

दाम्पत्य जीवन परस्पर पूरक हो

कु. मुक्ता देशपांडे, मुम्बई को दिनांक 18.06.1951 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''तुम्हारा नवजीवन उत्तम रहे। दाम्पत्य जीवन में एक दूसरे के मन को समझ कर व्यवहार करना चाहिए। आपस में एक दूसरे के पूरक बनकर जीवन उपयुक्त तथा सुखमय बनाना चाहिए। गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ माना गया है। वही समाज का भरण-पोषण करनेवाला है। वह एक महत्वपूर्ण सामाजिक कर्तव्य है, केवल भोगपूर्ति का साधन नहीं। इसका ध्यान रखकर व्यवहार करने से जीवन सुख समाधान से युक्त बनता है। इसी से

१. आर्गेनाइजरऋ २७.६.१९५५ऋ पृष्ठ-३.

२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ-१५३.

आवश्यकता के अनुसार समाज सेवा की प्रेरणा की प्राप्ति हो सकती है।''[1]

घर का सुयोग्य संस्कारक्षम वातावरण

जनवरी 1953 के 'कल्याण' मासिक के 'बालक-अंक' में 'अभ्युदय व नि:श्रेयस तथा उनकी प्राप्ति के उपाय' नामक लेख में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''माता-पिता को यह जानना चाहिये कि उनके ऊपर बहुत बड़ा दायित्व है। जिस समय उन्होंने किसी जीव को जगत् में प्रविष्ट कराया, उसी समय से उनके ऊपर यह भार है कि वह जीव अपना आत्यन्तिक कल्याण कर सके, ऐसा ही वायुमण्डल उसके चारों ओर रख कर उसे सुयोग्य संस्कारों से पूर्ण करें। इसलिए प्रत्येक गृह में कुछ नियमों का पालन अनिवार्य होना चाहिए। उनका कुछ निर्देश करने का प्रयत्न करता हूँ।

''सर्वप्रथम सूर्योदय के पूर्व निद्रा त्याग कर, शारीरिक शुद्धि कर, चराचर सृष्टि के स्वपिता, स्वामी, नियन्ता परमेश्वर का, जो कोई ध्यान अपनी श्रद्धा का विषय हो, उसका मन:पूर्वक स्मरण करें। अनेक भावपूर्ण स्तोत्र सगुण एवं निर्गुण स्वरूप की आराधना के निमित्त निर्मित हैं। उनको कण्ठस्थ कर पठन करना और साथ ही हृदय की शुद्धि भावना से उस परमात्मा का कुछ समय तक समाहित चित्त से चिन्तन करना चाहिए। स्नानादिक क्रिया, सूर्य नमस्कार जैसा पवित्र व्यायाम, सात्विक आहार-विहार, कुलाचार-पालन, प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान, समाजसेवा इत्यादि कार्य, कर्तव्य का निरलस पालन, सायंकाल तथा निद्रा के पूर्व ईश-चिन्तन इत्यादि श्रेष्ठ व्यवहार अत्यन्त नियमपूर्वक करना आवश्यक है। माता-पिता को स्वयं इन नियमों का पालन कर घर का वातावरण शुद्धि संस्कार करने के लिए समर्थ रखना तथा केवल शाब्दिक उपदेश मात्र से नहीं तो अपने प्रत्यक्ष आदर्श से बालकों को सत्वगुण प्राप्ति द्वारा सत्तत्व साक्षात्कार के लिए सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है।''[2]

स्वयं का अनुभव

स्वयं का अनुभव बताते हुए पुणे के एक भाषण में, सरसंघचालक के नाते श्रीगुरुजी ने कहा था, ''बचपन का स्मरण होते ही मेरा मन अनेक मधुर स्मृतियों से भर उठता है। वे सारी घटनाएं मन:चक्षुओं के सामने

१. पत्ारुप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ-१६०.

२. कल्याण मासिक, 'बालक-अंक'ऋ वर्ष २७ अंक-१, जनवरी १९५३ऋ पृष्ठ-२८६.

एक-एक करके उभरने लगती हैं। सुबह तड़के मुझे नींद से जगाया जाता है। उसी समय मेरी माँ एक ओर अपने हाथों से घर का कामकाज करती थीं और दूसरी ओर अपने मुँह से कोई न कोई स्तोत्र गान करती हुई ईश्वर का नाम स्मरण भी करती थीं। ताई के मधुर मंगल स्वर मेरे कानों में गूंजने से मेरे बाल मन पर कितनी गहरी और पवित्र अमिट छाप पड़ी होगी।''[1]

सावित्री का आदर्श

जोरहाट महिला सम्मेलन के दिनांक 28.3.1970 के उद्बोधन के अन्त में श्री गुरुजी कहते हैं, ''जिसके अन्दर पवित्र्य और सामर्थ्य है, जिसके सामने मृत्यु भी हताश होकर तथा हारकर पति का प्राण वापस करने के लिए बाध्य होती है, उस पतिव्रता सावित्री का आदर्श हम सामने रखें। जिनमें वह पावित्र्य तथा श्रेष्ठत्व है, वे अपने घर के अन्दर समरस होती हैं, अपने पति के साथ एकरूप होती हैं। उनमें आनेवाली पीढ़ी का पूर्ण संवर्धन कर एक-एक को श्रेष्ठ बनाने की क्षमता है।''[2]

समाज की उदासीनता से विचलित न हो

समाज-सेवा में सक्रिय सौ. मुक्ता सरदेसाई को पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, ''पंढरपुर, (महाराष्ट्र) में कुछ कार्य प्रारम्भ कर आप जो अनुभव प्राप्त कर रही हो, यही भाग्य सभी कार्यकर्ताओं का रहता है। अपना समाज उदासीन, अश्रद्ध और अकर्मण्य है, इसीलिये तो उसमें चैतन्य निर्माण करने हेतु लगन से कार्य करना आवश्यक है। स्वयं निराश होने से, सामाजिक अवस्था का अनुभव कर चिढ़ने से, या समाज के संबंध में अनादर की अथवा घृणा की भावना मन में निर्माण होना सर्वथा अनुचित है। ऐसी भावना या विचार अपने हृदय को स्पर्श न करने पाये। समाज के विषय में स्नेह, सद्भावना एवं आदर की भावना रखकर शुद्ध हृदय से प्रयत्नशील रहना यही उचित है। परमात्मा की कृपा से सफलता अवश्य मिलेगी। अपनी अपेक्षा से समय कुछ अधिक लगा तो चिन्ता न करें। कार्यकर्ता की धारणा ऐसी ही दृढ़ रहनी चाहिये। सबका यही अनुभव है।''[3]

१. नवयुग प्रवर्तक श्रीगुरुजीऋ पृष्ठ-६.

२. श्रीगुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ-१५५.

३. पत्ारूप श्री श्रीगुरुजीऋ पृष्ठ-१७२ (मूल मराठी).130

9. शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक प्रबोधन

गीता विद्यालय, कुरूक्षेत्र (हरियाणा) की रजत जयन्ती के अवसर पर अपने सम्बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''वास्तव में शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा मनुष्य उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करता हुआ जीवन के सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि मनुष्य में अनेक प्रकार के सद्‌गुण हों। ये सद्‌गुण सहसा नहीं आवेंगे। इनके लिए प्रयत्न करना होगा। इसीलिए इन गुणों के संस्कार बचपन से ही अपने जीवन में करते रहने की आवश्यकता रहती है।

''इन सद्‌गुणों का उल्लेख कई बार हमारे समाज-जीवन में होता रहता है। सच्चाई से रहना, किसी के बारे में अपने अन्त:करण में द्वेष की, घृणा की भावना न रखना, काया, वाचा, मनसा पवित्र रहना, काम-कांचन के सब प्रकार के व्यामोह से दूर रहना, अपने-आप को पूरी तरह काबू में रखना, इस प्रकार अन्त:करण को विशाल बनाना कि पूरा विश्व ही मेरा परिवार है, इस विशाल मानव-समाज की सेवा में स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर देना, इस समर्पण में भी कोई स्वार्थ मन में न आने देना आदि संस्कार बहुत आवश्यक हैं।''[1]

शिक्षा का लक्ष्य:- विश्वात्मक सत्य से तादात्म्य की अनुभूति

इस दृष्टि से प.पू. श्री गुरुजी लखनऊ यूनिवर्सिटी यूनियन के सेक्रेटरी श्री प्रकाश अवस्थी को अपने दिनांक 20.3.1961 के पत्र में लिखते हैं, ''लखनऊ यूनिवर्सिटी यूनियन की ओर से 'लाईट एण्ड लर्निंग' का वार्षिकांक आप प्रसिद्ध करने जा रहे हैं, यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। ऐसी यूनियनों के द्वारा कार्यवाहियां होना लाभदायक होता है। यह लाभ योग्य दिशा मे हो, इस हेतु को लेकर मैं एक विद्वान का अवतरण दे रहा हूं। मूल अंग्रेज़ी में है। वह वैसा ही दे रहा हूं -

'Culture is activity of thought and receptiveness to beauty and human feeling. Scraps of information have nothing to do with it. A merely well informed is the most useless bore on God's earth. What we should aim at is

१. श्रीगुरुजी समग्रदर्शन खण्ड-७ॠ भारतीय विचार साधना, नागपुरॠ पृष्ठ २-३.

producing a man who possesses both culture and expert knowledge in some special direction.'

A.W. Whitehead in 'The Aims of Education'.*

प्रेरणास्पद उत्तम आदर्श

दिल्ली प्रवास के दौरान एक बार श्री मोहम्मद करीम छागला से श्री गुरुजी की भेंट हुई। श्री छागला जी उस समय केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री थे। वे रूस के प्रवास से कुछ ही समय पूर्व लौटे थे। उन्होंने वहां के अनुभवों का वर्णन करते हुए बताया कि वहां के युवक जीवन के हर क्षेत्र में अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने की महत्वाकांक्षा से अनुप्राणित और अध्ययन के प्रति गम्भीर लगते थे। उन्होंने जिज्ञासावश श्री गुरुजी से पूछा, ''अच्छा मुझे समझ में नहीं आता कि हमारे युवकों में क्या कमी है? क्यों वे हड़ताल, अनुशासन हीनता और उपद्रवों में संलग्न हैं? परन्तु मुझे आभास होता है कि आपके संगठन में युवक अनुशासित एवं समर्पित हैं। तो क्या आप हमारे नवयुवकों की समस्या का कोई निदान प्रस्तुत कर सकते हैं?''

श्री गुरुजी ने प्रति-प्रश्न किया, ''आपका कथन ठीक है, किन्तु क्या आपने विद्यार्थियों के समक्ष कोई महान आदर्श प्रस्तुत किया है?''

श्री छागला जी- बोले, ''मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए कि नहीं किया है।'' श्री गुरुजी ने उत्तर दिया, ''प्रेरणास्पद उत्तम आदर्श के अभाव में हम छात्रों से यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि वे जीवन के मूल्यों के प्रति समर्पण तथा अनुशासन को आत्मसात् कर लें। यही ऐसा उच्चादर्शवाद है, जिससे प्रेरित होकर वे अपने उग्र आवेग को संयमित कर अपनी उफनती

* अर्थात्- 'संस्कृति चिन्तन की चेष्टा है, सौन्दर्य तथा मानवीय भावनाओं की ग्रहणशीलता है। केवल जानकारी के जुड़े हुए टुकड़ो से उस का कोई सम्बन्ध नहीं। मात्र पर्याप्त जानकारी रखने वाला व्यक्ति ईश्वर की दुनिया में सबसे नीरस प्राणी है। जिसमें संस्कृति तथा विशिष्ट दिशा दर्शन करने के लिए विशेष ज्ञान है, ऐसे व्यक्ति का निर्माण हमारा उद्देश्य होना चाहिए।'

''अपनी राष्ट्र परम्परा में 'कल्चर' में शुचितासम्पन्न, शीलसम्पन्न, चारित्र्यसम्पन्न, नि:स्वार्थ जीवन बनाना तथा व्यक्ति का स्वरूप सुस्पष्ट कर विश्वात्मक सत्य से तादात्म्य की अनुभूति करने के मार्ग पर निरन्तर बढ़ते रहना, ये गुण सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। इसमें श्रीमान् व्हाईटहेड महोदय के विचारों का अन्तर्भाव है ही। इस दृष्टि से भारतीय लक्ष्य-मूलग्राही, परमोन्नति की ओर अग्रसर बनने की योग्यता सभी व्यक्तियों मे निर्माण करना है। शिक्षा व तदुत्पन्न संस्कृति इसी दिशा में प्रयन्तशील रहे यह अपना राष्ट्रीय आदर्श है।''

ऊर्जा को राष्ट्रनिर्माण की रचनात्मक दिशा में मोड़ दे सकते हैं। इस राष्ट्रीय आदर्शवाद को हृदयंगम करने का कार्य विद्यालयों व महाविद्यालयों में हमारे सत्य इतिहास के पाठन से प्रारम्भ होगा।

''यदि आप हिन्दुओं की अतीतकालीन उपलब्धियों का, आक्रान्ताओं के विरूद्ध संघर्ष में उनके आत्म-बलिदानी उत्साह और वीरता का उल्लेख ओजस्वी रूप मे करेंगे - फिर आक्रान्ता ग्रीक, मुस्लिम अथवा अंग्रेज़ कोई भी हो तो आप तुरन्त 'साम्प्रदायिक' घोषित कर दिए जाएंगे। यही है असली अड़चन और समस्या का मूल मर्म।'' श्री छागला एक क्षण शान्त रहे, फिर उन्होंने स्वीकार किया कि 'हां ऐसा ही है।'[1]

मधुर प्राध्यापक-छात्र सम्बन्ध

प्राध्यापक-छात्र सम्बन्ध के बारे में हिस्लाप कालेज नागपुर के प्राचार्य डा. भगत को दिनांक 4.1.1969 के पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''मैं तो हिस्लाप कालेज का पुराना छात्र हूं। सन 1922 से 1924 दो वर्ष इंटरमीडिएट में पढ़कर आगे की शिक्षा के लिए मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में चला गया। इन दो वर्षों की अनेक सुखद स्मृतियां मेरे अन्त: पटल पर अंकित हैं। हमारे उस समय के प्राचार्य रेवरण्ड टी. डब्ल्यु. गार्डिनर महोदय तथा अन्य सभी प्राध्यापकों का स्नेहपूर्ण व्यवहार, उनकी उत्तम अध्ययनशीलता, नम्रता, निरहंकारिता का प्रभाव मुझ पर पड़ा है। प्राध्यापक-छात्र सम्बन्ध कितने मधुर स्नेहपूर्ण रहते थे, इसकी आज के दूषित वायुमण्डल में कल्पना करना भी कठिन है। हम सब मिल एक ही परिवार के रूप में रहते थे। प्राध्यापक गण छात्रों के हित के लिए सदैव यत्नशील रहते थे तो छात्र उन पर पूर्ण विश्वास रखकर उनके प्रति नम्रता से व्यवहार करते थे। सम्भवत: इसी कारण कालेज में उत्तम संस्कार पाकर छात्र आगे चलकर विभिन्न क्षेत्रों में सफल होकर नाम कमा सके।''[2]

प्रश्नोत्तर

प.पू. श्री गुरुजी द्वारा शिक्षा सम्बन्धी कुछ चयनित प्रश्नों के दिए गए उत्तर इस प्रकार हैं :-

१. विचार नवनीतऋ मा.स.गोलवलकरऋ ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुरऋ पृष्ठ २४४-४५.
२. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पष्ठ-२७६.

विद्यालयों का वातावरण

प्रश्न :- विद्यालयों का वातावरण सुधारने की दृष्टि से आप के क्या सुझाव हैं ?

उत्तर :- एक बार मैं नासिक के एक विद्यालय में गया था। वहां दीवारों पर अनेक युद्ध-चित्र लगाए गए थे। वे सारे चित्र यूरोप और अन्य पश्चिमी देशों की लड़ाईयों के थे। भारतीय इतिहास से एक भी चित्र नहीं था। मैने प्रधानाचार्य जी से पूछा कि ये चित्र हमारे बाल छात्रों के मन पर अच्छे संस्कार कैसे कर पाएंगे ? आप हल्दीघाटी या पानीपत आदि के युद्ध-चित्र क्यों नहीं लगाते ? इस पर प्रधानाचार्य जी का कहना था कि अपने विचारों की परिधि केवल अपने ही देश की सीमाओं तक संकुचित नहीं रखनी चाहिए। इसी प्रकार एक बार पं. जवाहर लाल नेहरू जी ने मुझ से कहा था कि हमें अपने दिल की खिड़कियां खुली रखनी चाहिए ताकि दुनिया की सब दिशाओं से आने वाले हवा के झोंके अन्दर आ सकें। तब मैंने उनसे कहा कि हम केवल खिड़कियां नही खोल रहे, हम तो चारों ओर की दीवारें ढहाते हुए पूरा छप्पर ही अपने माथे पर गिरा रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीयवाद की ये भ्रामक कल्पनाएं युवा मनों में भयानक विकृति निर्माण कर रही हैं।

शुद्ध राष्ट्रवाद की नींव के बिना मानवता और अन्तर्राष्ट्रीयता का कोई मतलब नहीं रहता। फिर हमारा जो राष्ट्रीय तत्वज्ञान और धरोहर है, उसमें तो सम्पूर्ण मानवजाति के कल्याण का भाव समाया हुआ है। अत: युवकों को अपने राष्ट्रवाद की सीख देने से मानव-मूल्य ही मज़बूत होंगे।

वर्तमान शिक्षा पद्धति

प्रश्न :- क्या हम कह सकते हैं कि आज की शिक्षा पद्धति उद्देश्यविहीन है ?

उत्तर :- एक बार मैंने एक विज्ञापन फलक देखा जिस पर लिखा था- "Earn while you learn." (पढ़ाई के साथ कमाई भी करो) "Learn even while you earn." (आप कमाने लगो तब भी पढ़ते रहो) प्रत्येक व्यक्ति आजीवन विद्यार्थी ही होता है। अपने जीवनलक्ष्य के निर्धारण पर सब कुछ निर्भर करता है।

पश्चिम देश अब धीरे धीरे भौतिकवाद से आध्यात्मिकता की

ओर चलने लगे हैं परन्तु हम तो दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए भौतिकवाद के प्रवाह में बहते जा रहे हैं। यह तो केवल दैवदुर्विलास है।

धार्मिक शिक्षा

प्रश्न :- किसी एक धर्म की बात किए बिना अपने विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करना कैसे सम्भव हो सकता है ?

उत्तर :- इस दृष्टि से कुछ मूलभूत तत्व स्वीकार किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ - सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करने वाली एक सर्वव्यापी अदृश्य शक्ति है, उस पर विश्वास करना तथा उसका साक्षात्कार करना अपने जीवन का लक्ष्य हो।

प्रश्न :- इस दृष्टि से कौन से मार्ग अपनाए जा सकते हैं?

उत्तर :- इसके अनेक मार्ग हैं। विशेषत: बुराइयों से बचने के लिए अपने मन को नियन्त्रित करना आधारभूत विषय हो सकता है। अपनी श्रद्धा चाहे किसी भी उपासना पद्धति पर हो, योग शिक्षा के माध्यम से मन को एकाग्र करने का अभ्यास कराना धर्म-प्रधान जीवन के लिए उपयुक्त होगा। छात्रों के जीवन में क्रमश: आत्मसंयम, मनोनिग्रह आदि सद्गुणों के विकास करने पर बल देना चाहिए। वर्तमान शिक्षा पद्धति में केवल रोज़ी-रोटी कमाने के लिए कुछ जानकारी देने का प्रयास करने की व्यवस्था है।

संस्कृत शिक्षण

प्रश्न :- संस्कृत पढ़ाने की प्रचलित पद्धति क्या दोषपूर्ण लगती है ?

उत्तर :- हां, अनेक दोष हैं। जैसे महाविद्यालय के स्तर पर विद्यार्थी अंग्रेजी के समान संस्कृत में सम्भाषण कर सके, ऐसा कोई प्रयास नहीं है। प्राचीन भारतीय भाषा होने पर भी संस्कृत में पी.एच.डी. प्राप्त करने के लिए शोध प्रबन्ध अंग्रेज़ी में लिखना पड़ता है। ऐसे पी.एच.डी. प्राप्त लोग भी सामान्यत: संस्कृत के छोटे छोटे वाक्य नहीं बोल सकते। ऐसे एक डाक्टर ने मुझे बताया कि संस्कृत का शोध प्रबन्ध अंग्रेजी में न होने पर विचारार्थ भी स्वीकार नहीं होगा। तो मैने पूछा कि क्या अंग्रेजी विषय का शोध प्रबन्ध, जो अपनी किसी भाषा में लिखा गया हो, स्वीकृत होगा? इस प्रकार की कल्पना करना ही शुद्ध पागलपन माना जाएगा। इंग्लैण्ड की परम्परागत भाषा जैसे लेटिन में, डाक्टरेट पाने के लिए सम्बन्धित छात्र को उस भाषा में लिखना, पढ़ना तथा बोलने का ज्ञान होना आवश्यक है। गुणवत्ता का

विचार छोड़कर सम्बन्धित भाषा में काव्यरचना करनी भी शोध छात्र को सीखनी पड़ती है।

आजकल मुम्बई में विद्यार्थियों को विज्ञान और संस्कृत में से एक विकल्प स्वीकारने को कहा जाता है। स्वाभाविकत: अत्युत्तम विद्यार्थी विज्ञान को ही चुनते हैं। क्या इस प्रकार संस्कृत का महत्व बढ़ेगा ? अब यूरोप में कई भाषाएं लेटिन से अधिक विकसित हुई हैं फिर भी वहां लेटिन का अध्ययन भारत में संस्कृत के अध्ययन से अधिक होता है। राष्ट्रीय एकात्मता उत्पन्न करने की संस्कृत शिक्षा की क्षमता का किसी को आकलन नहीं हो रहा। अपनी भारतीय भाषाओं के प्रति अपनत्व और उनको विकसित करने की आकांक्षा का अभाव ही हमारी मुख्य समस्या है।

भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक निर्माण

प्रश्न :- भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक निर्माण शायद एक बड़ी समस्या है।

उत्तर :- ऐसी कोई बात नहीं। मैं आप को एक उदाहरण देता हूं। स्वतन्त्रता पूर्व रायबहादुर श्री केलकर मध्य प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री थे। शिक्षा मन्त्री बनते ही उन्होंने अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी और मराठी को शिक्षा का माध्यम बनाया। एक अंग्रेज़ अधिकारी जो डी.पी.आई. थे, लाल पीले हुए और मन्त्री महोदय के प्रस्ताव का उन्होंने कड़ा विरोध किया। परन्तु श्री केलकर जी दृढ़प्रतिज्ञ थे। उन्होंने अंग्रेज़ अधिकारी को स्पष्ट शब्दों में कहा, ''आप मेरे अधीन एक निदेशक हो। आप को मेरे आदेशों का पालन करना होगा।'' हिन्दी और मराठी में पाठ्य पुस्तकें निर्माण करना अत्यधिक कठिन होगा, ऐसा अन्य अधिकारियों ने भी कहा। परन्तु श्री केलकर जी ने सभी आक्षेपों को निरस्त करते हुए नई नीति को तुरन्त लागू करने के आदेश दिए। निस्संदेह अन्तत: पाठय पुस्तकें निर्मित करवाई गईं, विद्यार्थियों ने हिन्दी तथा मराठी माध्यम सहर्ष सोत्साह अपनाया तथा नई नीति पूर्णत: सफल हुई। श्री केलकर जी जैसी प्रबल इच्छाशक्ति चाहिए।[1]

विद्यार्थी जीवन राष्ट्रोपयोगी हो

श्री गुरुजी से श्री मदन लाल खुराना, प्रयाग (उत्तरप्रदेश) ने अनुरोध किया था कि वे 'साधना' पत्र में विद्यार्थी यूनियन के सम्बन्ध में

1. Spotlights ; M.S. Golwalkar; Sahitya Sindhu, Bangalore; p.p. 24-27.

कुछ लिखें। अपने दिनांक 2 मार्च, 1960 के पत्रोत्तर में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''(साधना) सफल हो। विद्यार्थी जीवन में बहुत उथल-पुथल होना स्वाभाविक है। स्पष्ट ध्येय तथा तदर्थ समर्पण का विशुद्ध भाव न होने से, साथ ही चारों ओर की आंदोलनकारी ध्वंसात्मक प्रणालियों में यौवन सुलभ झुकाव हो जाने से जीवन अस्तव्यस्त होकर आगे राष्ट्रोपयोगी होने की सम्भावना कम होती जा रही है। इसमें सब को मिलकर सुधार करने की चेष्टा करने की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल छात्रों को उद्दंड आदि अपशब्दों का 'उपहार' देना ठीक नहीं, लाभदायी भी नहीं।''[1]

निरर्थक आन्दोलनों से अनिच्छा

दिनांक 20 जुलाई 1962 के पत्र में श्री माधवराव परलकर, मुम्बई को श्री गुरुजी लिखते हैं, ''अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का कार्य व्यवस्थित चले। विद्यार्थी-बन्धुओं में ज्ञानोपार्जन, बलोपार्जन, शुद्ध चारित्र्योपार्जन की तीव्र आकांक्षा जागृत हो। सस्ती लोकप्रियता दिलानेवाले निरर्थक आन्दोलनों से अनिच्छा पैदा हो। राष्ट्र चिन्तन तथा उसके विशुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार हो। राष्ट्रार्थ जीने का निश्चय उदित होकर स्थायी हो। सब प्रकार की व्यक्तिगत आकांक्षाओं का वही निश्चय प्रेरणास्रोत एवं नियामक हो। इन सारी बातों की ओर उनका ध्यान खींचकर, इन्हीं बातों में वे रस लेंगे, ऐसा प्रयत्न करें।''[2]

छात्रबन्धुओं का सर्वांगपूर्ण विकास

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के विदर्भ प्रान्तीय अधिवेशन सम्बन्धी मार्गदर्शन हेतु, आयोजक श्री प्रभाकर जी धनागरे को दिनांक 29 दिसम्बर, 1966 के पत्र में श्री गुरुजी कहते हैं, ''छात्र बन्धुओं को उनके अध्ययन में आवश्यक सब प्रकार से सहयोग प्राप्त हो। उनका सर्वांगपूर्ण विकास हो। वे उत्तम राष्ट्रसेवक, आदर्श शील-चारित्र्य-ज्ञान एवं कर्तृत्व-सम्पन्न बनें, इस लक्ष्य को स्वीकर कर आप सोचें और अपनी योजना कार्यान्वित करें।''[3]

विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता कैसे दूर हो?

विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता, उसके कारण और उसके दूर करने

१. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ ३१०-११.
२. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ-३१६.
३. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ-१४४.

के उपाय, इस विषय में सोचने वाली केन्द्र सरकार की एक उच्चस्तरीय समिति के प्रवक्ता ने एक प्रश्नमालिका तैयार करके प.पू. श्री गुरुजी के पास दिनांक 9-4-1966 को भेजी और मार्गदर्शन चाहा। अपने उत्तर में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''एक संस्कृत श्लोक में समुचित रूप से कहा गया है-

यौवनं धन सम्पतिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

यौवन, धन, संपत्ति, प्रभुत्व तथा अविवेक ये अकेले ही अनर्थ कर देने वाले हैं, फिर जहां ये चारों हो जाएं, वहां के अनर्थ का तो कहना ही क्या? विद्यार्थी अवस्था में सादगी व संयम-नियमपूर्वक रहने, मन को व्यसनों और दुर्गुणों की ओर जाने का अवसर न देने आदि की सतर्कता यदि हम देखते हैं तो युवक अवांछनीय कार्यों और अवांछनीय व्यवहार से दूर रह सकते हैं।

ध्येयोन्मुख शिक्षा प्रणाली

''विद्यार्थियों की ग्रहणशील आयु में, उनके मन पर सतत् संस्कारों से यह अंकित कर देना चाहिए कि कर्त्तव्य सर्वोपरि है और सब अधिकार-चाहे व्यक्ति के हों, चाहे समूह के, कर्त्तव्य सापेक्ष हैं और कर्त्तव्य की तुलना में गौण हैं। विद्यार्थियों से समुचित कर्त्तव्य-भावना जागृत करने के लिए हमारी शिक्षा प्रणाली ध्येयोन्मुख होनी चाहिए। यदि हम अपनी पवित्र मातृभूमि के प्रति तीव्र त्याग भावना का दृढ़ आधार निर्माण करते हैं, तो सम्पूर्ण समाज की आकांक्षा, भावना और बुद्धि में सामंजस्य प्रस्थापित होगा। जब इस सामूहिक इच्छा-आकांक्षा के साथ सामुदायिक और नियंत्रित शारीरिक बल का संयोग होगा, तो वही बात निर्माण होगी जिसे लोग अनुशासन कहते हैं।

सैनिक शिक्षा

''सैनिक शिक्षा के द्वारा केवल शारीरिक स्तर पर कृति-सामंजस्य उत्पन्न हो सकता है- इस दृष्टि से जब तक इसकी ओर देखा जाता है, तब तक वह ठीक है और शिक्षा के लिए तब तक वह पूरक भी सिद्ध होती है। संस्कारक्षम शालेय जीवन से महाविद्यालय की शिक्षा पाने तथा विद्यार्थियों को यथाक्रम सैनिक शिक्षा दी जानी चाहिए। अर्थात्, यह शिक्षा सशस्त्र सैनिकों के स्तर जैसी ऊंची न हो। परन्तु, केवल सैनिक शिक्षा के भरोसे अनुशासन का वास्तविक भाव नहीं भरा जा सकता। वह तो सार्वजनिक महान् ध्येय के प्रति भक्ति से निर्मित इच्छानुशासन करने के लिए किए गए

विशेष प्रयत्नों से भरा जा सकता है।''[1]

सामाजिक कार्यकर्ता का प्रेरणास्पद आदर्श

श्री बापूराव लाखनीकर सत्कार समिति हेतु दिनांक 26 नवम्बर, 1965 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''मित्रवर श्री बापूराव लाखनीकर 51 वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। विगत 24 वर्षों से लाखनी तथा आसपास के गांवों में शिक्षा-प्रसार के लिए उन्होंने शालाएं खोली तथा विगत वर्ष से लाखनी में महाविद्यालय भी चालू किया। भण्डारा ज़िले के शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक सैकड़ों ही नहीं तो हज़ारों बालकों और युवकों को उन्होंने अनेकों उत्तम सुविधाएं उपलब्ध करा दी हैं।

अभिनन्दनीय आश्चर्य

''यह एक अभिनन्दनीय आश्चर्य है कि यह सारी प्रगति उन्होंने अपने अकेले के भरोसे की है। अर्थ-शक्ति और सत्ता-शक्ति पीछे न रहते हुए बड़ा काम करना असम्भव ही माना जाता है। ऐसी अवस्था में अपनी ही साधन-सामग्री पर निर्भर रह कर, अनेक क्षेत्रों से खड़ी हुई बाधाओं को कुशलता से तथा धैर्य से एक ओर ढकेलते हुए श्री बापूराव द्वारा किया गया भव्य कार्य-विस्तार देखने पर उनके आत्मविश्वास, कर्तृत्वसम्पन्नता तथा साहस का भव्य स्वरूप आंखों के सामने आता है।

ध्येयनिष्ठ दूरदृष्टि

''उनके द्वारा संचालित संस्थाओं में केवल लौकिक शिक्षा देकर कुछ परीक्षाएं उत्तीर्ण करवाना ही लक्ष्य नहीं है, अपितु विशेष बात यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी सुसंस्कृत हो, चारित्र्यवान बने, राष्ट्रभक्त बने तथा नि:स्वार्थ निरन्तर राष्ट्रसेवा-रत बने, इसकी ओर विशेष ध्यान है। इस दृष्टि से स्वधर्म, उज्ज्वल इतिहास, श्रेष्ठ साधु-सन्त तथा राष्ट्रपुरुषों के जीवन के संस्कार अन्त:करण में अंकुरित हों इसके लिए परिश्रमपूर्वक प्रयत्नशील रहना इस संस्था की बहुत बड़ी विशेषता है। अपना स्वयं का जीवन बनाने के साथ ही, अपने सब समाज बन्धुओं में भी स्नेहपूर्ण एकता स्थापित करना तथा अनुशासनबद्ध राष्ट्र निर्माण के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति से परिश्रम करे ऐसी प्रेरणा यहां प्राप्त होने की व्यवस्था है। इसलिए ये संस्थाएं असाधारण ही हैं तथा इनका निर्माण करने वालों की धयेयनिष्ठ दूरदृष्टि का अभिनन्दन किए बिना रहा नहीं जाता।''[2]

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ३७२-७६.

२. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ३२७-२८.

सांस्कृतिक प्रबोधन

सिंदी (महाराष्ट्र) - कार्यकर्ता शिविर के दिनांक 10.03.1954 प्रात: के उद्‌बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''प्राचीन काल से हमने तीन बातों का विचार किया है। एक व्यष्टि (मैं का अस्तित्व) है। इसको सभी ने स्वीकार किया है। माया कहकर जिन्होंने जगत् को मिथ्या कहा, उन्होंने भी 'मैं नहीं हूं', ऐसा नहीं कहा। द्वितीय सृष्टि है, इसे मिथ्या कहते हुए भी यह आंखों के आगे है। अत: इसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। तृतीय इन सब का कोई निर्माता है, जो दिखाई नहीं देता।

यो बुद्धे: परतस्तु स:

''गीताकार भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में - 'यो बुद्धे: परतस्तु स:', बुद्धि से परे, उससे भी सूक्ष्म अगोचर तथा जिसके अधिष्ठान से बुद्धि भी काम करती है, ऐसी कोई वस्तु है। वह अमूर्त है, उसकी कोई लम्बाई चौड़ाई नहीं है, अत: सर्वव्यापक है, समस्त मानवों में वही व्याप्त है, सभी में एक ही वस्तु है, यह भाव ही कभी-कभी उत्पन्न होता है, दूसरे को सुखी करने की प्रेरणा देता है। जैसे मेरे शरीर से मुझे सुख दु:ख की अनुभूति होती है, उसी प्रकार दूसरे के शरीर से भी उस 'मुझे' ही सुख दु:ख का अनुभव होगा, अत: उस के सुख दु:ख में ही मेरा सुख दु:ख हैं, इस सत्य धारणा के कारण ही मानव सुसूत्रता की इच्छा, एकात्मता की कामना तथा अनुभूति और बन्धुभाव की लालसा करता है। मानवसमाज के सुख की प्रेरणा हमें तभी मिल सकती है, जब हमें यह ज्ञान हो कि हम सबके अन्दर एक ही सत्य है, उसे फिर आत्मा, परमात्मा, शून्य, महाशून्य जिस नाम से पुकारा जाए। जितनी मात्रा में इसकी अनुभूति होगी, उतनी ही मात्रा में मानव-एकता सत्यसृष्टि में आ सकेगी।''[1]

अविच्छिन्न परम्परा

''हमारे देश का यह अनोखा स्वरूप प्राचीन परम्परा तक ही सीमित नहीं है। अधुनातन काल में भी नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) का श्रीरामकृष्ण से ऐतिहासिक मिलन का उदाहरण है। उन्हें ज्ञात हुआ कि दक्षिणेश्वर मन्दिर में एक परमहंस रहते हैं। वे उनके पास गए और जो प्रश्न वर्षों से उनके मस्तिष्क में मंडरा रहा था उसे सीधे शब्दों में उनके समक्ष रख दिया- 'महाशय, आपने ईश्वर को देखा है?' एक क्षण के भी संकोच के बिना

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-३ऋ पृष्ठ ४-५.

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया – 'हां मैं उसे ऐसे ही देखता हूं जैसे यहां तुम्हे देख रहा हूं, और मैं उसे तुम्हें दिखा भी सकता हूं।' साथ ही श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र के प्रति अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण भी की।''[1]

धर्म का स्थान

धर्म की दोहरी परिभाषा करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, ''हमारे देश में कुछ लोग पवित्र सूत्र यज्ञोपवीत धारण करते हैं, जब कि कुछ लोग धारण नहीं करते। कुछ चोटी रखते हैं, कुछ नहीं। कुछ मूर्ति पूजा करते हैं, कुछ नहीं। ये वस्तुएं उनके लिए अर्थ रखती हैं जो उन्हें मानते हैं और वे हमारे सर्वव्यापी धर्म के छोटे-छोटे बाह्य लक्षण मात्र हैं। उन्हीं को धर्म मान लेने का भ्रम नहीं होना चाहिए।

''हमारे धर्म की परिभाषा दोहरी है। प्रथम तो मनुष्य के मस्तिष्क का उचित पुनर्वासन तथा द्वितीय है सामंजस्यपूर्ण सांघिक अस्तित्व के लिए विविध प्रकार के व्यक्तियों का परस्पर अनुकूल बनना अर्थात् समाज धारणा के लिए एक उत्तम समाज-व्यवस्था।

''हम प्रथम पहलू को लें। मस्तिष्क के पुनर्वासन का क्या अर्थ होता है। हम जानते हैं कि मनुष्य का व्यक्तित्व उसके मन का प्रक्षेपण मात्र होता है। किन्तु मन एक ऐसे पशु के समान है जो कितनी ही वस्तुओं के पीछे लगता है तथा उसकी रचना कुछ इस प्रकार की है कि सभी वस्तुओं के साथ वह एक हो जाता है। साधारणत: मनुष्य का मन यह विचार करने के लिए नहीं रुकता कि क्या ठीक है और क्या गलत। वह अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किसी भी स्तर तक नीचे झुक सकता है। इस प्रकार के मन के साथ मनुष्य की साधारण पशु के स्तर से उच्च उठने की सम्भावना नहीं होती। अतएव मन को आत्मसंयम एवं कुछ अन्य महान गुणों से संस्कारित करना है। अच्छे आचरण के वे लक्षण भगवद्गीता एवं हमारे अन्य पवित्र ग्रन्थों में विविध सन्दर्भों में उल्लिखित हैं। उन्होंने शरीर के लिए पांच 'यमों' और मन के लिए पांच 'नियमों' का वर्णन किया है।

दूसरा है सामाजिक पहलू। मनुष्य के जीवन का सम्पूर्ण समाज के व्यापक हितों के साथ तालमेल बैठना चाहिए। ये दोनों ही स्वरूप एक दूसरे के पूरक हैं। प्रथम पहलू की परिभाषा इस प्रकार की है-

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ८८-८९.

यतोभ्युदयनि:श्रेयसिद्धि: स धर्म:

जिसका यह अर्थ है कि धर्म एक प्रकार की व्यवस्था है जिसके द्वारा अभ्युदय और नि:श्रेयस् दोनों बातें प्राप्त हाती हैं अर्थात् जो मनुष्य को अपनी इच्छाओं पर संयम रखने को प्रोत्साहित करती है और सम्पन्न भौतिक जीवन का उपयोग करते हुए भी दैवी तत्व अथवा शाश्वत सत्य की अनुभूति के लिए क्षमता का निर्माण करती है। द्वितीय स्वरूप है-

धारणात् धर्म इत्याहु: धर्मो धारयति प्रजा:

जिसका अर्थ है वह शक्ति जो व्यक्तियों को एकत्रित लाती है और उन्हें समाज के रूप में धारण करती है- धर्म है। इन दो परिभाषाओं का मेल प्रकट करता है कि धर्म की स्थापना का अर्थ एक ऐसे सुसंगठित समाज का निर्माण करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने एकत्व का अनुभव करता है तथा दूसरों के भौतिक जीवन को अधिक सम्पन्न, अधिक सुखमय बनाने के लिए त्याग की भावना से अनुप्राणित होता है एवं उस आध्यात्मिक जीवन का विकास करता है जो उसे चरम सत्य की अनुभूति की दिशा में ले जाता है।''[1]

परिपूर्ण मानव

पं. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर में दिनांक 22 फरवरी, 1972 को 'परिपूर्ण मानव' विषय पर उद्बोधन में श्री गुरुजी कहते हैं, ''अपने भीतर के अनेक गुणावगुणों, विकारों को भलीभांति नियन्त्रित करके मानसिक सुव्यवस्था का निर्माण (जिसे अंग्रेजी में rehabilitation of our minds कहा गया है) करना भी धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस धर्म को अपने जीवन का आधार मानकर इसके अनुरूप अर्थ-काम को नियोजित कर और इस धर्म के सद्गुण सम्पन्न जीवन का पूरी तरह से अपने अन्दर आविष्कार कर अन्तिम लक्ष्य की नित्य उपासना करते हुए चतुर्थ एवं अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण स्वरूप है। यही 'Integrated man' परिपूर्ण मानव की कल्पना है। अर्थ काम मात्र ही जिसके जीवन में हैं, वह "Disintegrated

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ४५-४६.

man" अपूर्ण और विशृंखलित मानव है। समाज की धारणा का विचार करने वाला, समाज की धारणा, सुव्यवस्था पर आंच न आए ऐसा गुणोत्कर्ष रखने वाला, समाज में विकृति उत्पन्न न हो, इस मात्र में अर्थोपार्जन, कामोपभोग और फिर संयमित एवं एकाग्र अन्तःकरण से अपने मनोनुकूल किसी भी प्रकार की उपासना-पद्धति या सम्प्रदाय का अवलम्बन कर, ईश्वर की किसी भी मूर्ति की उपासना द्वारा चतुर्थ और अंतिम लक्ष्यरूप पुरुषार्थ को प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाला ही परिपूर्ण मानव है, व्यवस्थित मानव है।''[1]

हिन्दू-संस्कृति

''लोग कभी-कभी पूछते हैं- 'आप हिन्दू-संस्कृति की कैसी परिभाषा करते हैं?' हां हम उसे अनुभव करते हैं, यद्यपि उसकी परिभाषा नहीं कर सकते। कुछ लोग केवल इसीलिए इसे पूर्णरूप से अस्वीकार कर देते हैं कि वे इसकी परिभाषा नहीं कर सकते। वे कहते हैं- ''ऐसी वस्तु से क्या लाभ जिसकी हम परिभाषा ही नहीं कर सकते।'' किन्तु क्या यह तर्क युक्तिसंगत है? उदाहरण के लिए चिकित्साशास्त्र का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम जीवन की रक्षा हेतु ही विकसित हुआ है, किन्तु आधुनिकतम विज्ञान भी यह बताने में असमर्थ है कि 'जीवन' क्या है? परन्तु इसके कारण चिकित्साशास्त्र की उपयोगिता में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई। 'जीवन का बाह्य प्रगटीकरण एवं मानव पर उसका संघात हमें उसकी सत्यता में विश्वास कराने के लिए पर्याप्त है।'

अस्वीकृतियों के बीच सत्य का प्रकटीकरण

हमारी संस्कृति ने भी, यद्यपि वह परिभाषा के क्षेत्र में नहीं आती हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों पर अपनी अमिट छाप लगा दी है। हम इस प्रकार की सभी अभिव्यक्तियों में संस्कृति के तत्व को पहचान सकते हैं। पं. जवाहरलाल नेहरू के जीवन का एक उदाहरण है। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी का जो विदेश ले जाई गईं थीं, देहान्त हो गया। उनके शरीर का अग्नि संस्कार कर राख अपने देश में लाई गईं और प्रयाग में पवित्र गंगा, यमुना तथा अदृश्य सरस्वती के संगम में विसर्जित की गई। बाद में पण्डित नेहरू ने स्वयं कहा था कि उनकी आधुनिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण सभी विद्रोह कर रहे थे किन्तु उनके भीतर की किसी चीज़ ने, किसी ऐसी चीज़ ने जिसका

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ-१७७.

स्पष्टीकरण नहीं हो सकता, उन्हें राख को त्रिवेणी संगम में विसर्जित करने के लिए बाध्य कर दिया।

हमारा सांस्कृतिक इन्द्रधनुष

''हमारी संस्कृति की हिमालय के समान उन्नत दृष्टि का एक और शिखर है जिस पर पहुंचने की महत्वाकांक्षा अभी तक संसार में अन्य किसी ने नहीं की है तथा जिस भाव की अभिव्यक्ति--

''एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति'' (ऋग्वेद : 1-164-46)

वाक्य द्वारा की गई है। (अर्थात् सत्य एक है, ऋषि उसे विविध प्रकार से बखानते है) इस सुन्दर भाव को व्यक्त करने के लिए इसके समान अंग्रेजी में कोई शब्दरचना नहीं। 'सहिष्णुता' शब्द जो इस भाव को व्यक्त करने के लिए प्रायः प्रयोग में आता है, बहुत नीचा है। यह तो सहन करने मात्र का भाव व्यक्त करने के लिए एक अन्य शब्द है। इसमें एक अहं का भाव है जो केवल दूसरों के दृष्टिकोण को मात्र सहन करता है किन्तु उनके लिए कोई प्रेम अथवा सम्मान नहीं रखता। परन्तु हमारी शिक्षा अन्य विश्वासों और दृष्टिकोणों को इस रूप में स्वीकार करने की भी रही है कि वे सब एक ही सत्य तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग हैं। आत्मा की यह सार्वलौकिकता विश्व के चिन्तन-क्षेत्र में हमारी संस्कृति की एक नितान्त अनोखी देन है।''[1]

विश्व हिन्दू परिषद्

विदेशों में हिन्दू संस्कारों की व्यवस्था

दक्षिण क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रचारक श्री एन. कृष्णप्पा अपने एक संस्मरण मे लिखते हैं, ''दिनांक 24 नवम्बर, 1963 को श्री गुरुजी का कार्यक्रम बेलगांव (कर्नाटक) में था। वहां उनसे मिलने के लिए त्रिनिदाद के एक संसद सदस्य श्री शम्भुनाथ कपिलदेव आए थे। त्रिनिदाद के हिन्दुओं को हिन्दू-संस्कार देने की कोई व्यवस्था नहीं थी। नामकरण, विवाह आदि सभी संस्कार ईसाइयों की पद्धति से गिरिजाघरों में ही हुआ करते थे। इस प्रथा के स्थान पर वहां के हिन्दुओं के संस्कार और शिक्षा आदि हिन्दू-पद्धति से हों और एतदर्थ योग्य पण्डित-पुरोहित भारत से त्रिनिदाद जाएं, इस प्रकार के विचारों से प्रेरित हो कर ही श्री कपिलदेव भारत आए थे। भारत में उन्होंने इस विषय में भारतीय शासन के सम्बन्धित अधिकारियों से बातचीत

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ३५-४०.

की तो उन्हें उत्तर मिला– यह कैसे सम्भव हो सकता है? भारत सरकार की नीति तो सेक्यूलर है।

श्री कपिल देव निराश हो गए। दिल्ली में किसी महानुभाव ने उन्हें सलाह दी कि श्री गुरुजी से मिलने पर उनका काम बन जाएगा। श्री कपिल देव ने पूछा – ये गुरुजी कौन हैं ? सुझाव देने वाले ने बताया – श्री गुरुजी हिन्दुओं के लिए कार्य करने वाले संगठन 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के प्रधान हैं। आपका यदि काम होना होगा तो उन्हीं के द्वारा बनेगा। वे ही आपका यह काम कर पाएंगे। श्री कपिल देव श्री गुरुजी से मिलने के लिए निकल पड़े। पहले नागपुर, फिर वहां से मुम्बई और मुम्बई से बेलगांव पहुंचे। श्री गुरुजी से श्री कपिल देव की भेंट हुई। वे जो छोटा-सा काम लेकर आए थे, वह तो पूरा हो ही गया, इतना ही नहीं तो दुनिया भर में बसे हुए हिन्दुओं को प्रेरणा देने, मार्गदर्शन करने, सहायता देने के लिए हिन्दुओं की विश्वव्यापी संस्था स्थापित करने का निर्णय भी इसी वार्तालाप की उपलब्धि है।''[1]

श्री गुरुजी ने इस दिशा में कार्य करने का दायित्व संघ के ज्येष्ठ प्रचारक श्री शिवराम शंकर उपाख्य दादासाहब आपटे को सौंपा।

विश्व हिन्दू सम्मेलन की आवश्यकता

स्वामी चिन्मयानन्द जी, मुम्बई को दिनांक 4 अप्रैल, 1964 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''हमारे पुराने साथी पत्रधारक श्री शिवराम शंकर आपटे जी पर एक छोटा सा कार्यभार सौंपा गया है, इसी सम्बन्ध में वे आप से विचार विनिमय करेंगे। विश्व के विभिन्न देशों में बसे हुए हिन्दुओं के प्रतिनिधियों का सम्मेलन आयोजित करने की कल्पना सामने आई है।

''विदेशों में रहने वाले हिन्दुओं का अपने मूल स्रोत से सम्बन्ध नहीं रहा है। भारत से अखण्ड रूप से धर्म और संस्कृति का जीवनरस प्राप्त होने से वंचित रहने के कारण वे विदेशी जीवन पद्धति की ओर बहते जा रहे हैं। उनके मन में हिन्दू जीवन पद्धति के प्रति दृढ़ विश्वास तथा भ्रातृभाव का पुनर्जागरण करने के लिए तथा इस अवस्था को बदलने के लिए उन्होंने कोई भी देश रहने के लिए चुना हो– क्या उपाय किए जा सकते हैं, इस दृष्टि से विचार-विमर्श करने के लिए उनका एक सम्मेलन होना आवश्यक है। एतदर्थ मूल प्रेरणा भारत से ही मिलनी चाहिए। इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय

1. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-1; राधेश्याम बंका; पृष्ठ 353&54-

करने के लिए श्री आपटे जी को देशभर के अपनी अपरिहार्य आध्यात्मिक श्रेष्ठ परम्परा में विश्वास रखने वाले गणमान्य महानुभाव, जो इस कार्य में सक्रिय सहभागी हो सकते हैं तथा जिनका केवल आशीर्वाद ही इस कार्य को सफल बना सके, उनसे भेंट करने का दायित्व सौंपा है।

इस प्रारम्भिक सम्मेलन से आगे क्या किया जा सकता है तथा इस कल्पना को कैसे स्पष्ट रूप से साकार किया जा सकता है, इसके बारे में विचार होना चाहिए। आपके सहयोग, परामर्श तथा आशीर्वाद की अपेक्षा से मैने श्री आपटे जी को इस कल्पना के सविस्तार स्पष्टीकरण हेतु आपके पास भेजा है।''[1]

विश्व हिन्दू परिषद् की स्थापना

स्वामी चिन्मयानन्द जी के समान श्री स्वामी शंकरानन्द जी सरस्वती, मैसूर[2] तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषों को भी श्री गुरुजी ने पत्र लिखे। श्री आपटे जी ने भी विदेशों की 40 से भी अधिक संस्थाओं तथा व्यक्तियों को पत्र द्वारा सम्पर्कित किया तथा लगभग 200 प्रमुख नेताओं और चिन्तकों से वे व्यक्तिगत रूप से मिले। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप श्री कृष्ण जन्माष्टमी के शुभ दिन, दिनांक 29.8.1964 को स्वामी चिन्मयानन्द जी के आश्रम सान्दीपनी साधनालय मुम्बई में 'विश्व हिन्दू परिषद्' की स्थापना करने का निश्चय किया गया। इस अवसर पर आयोजित प्राथमिक बैठक में परिषद् की अस्थायी समिति की घोषणा की गई। सिख पंथ के नेता मास्टर तारासिंह, विदर्भ के लोकप्रिय संतपुरुष तुकड़ोजी महाराज, श्री गुरुजी, नैरोबी से श्री सूद एवं श्री पोद्दार तथा त्रिनिदाद से श्री राम कृपलानी भी इस बैठक में उपस्थित थे। बैठक में यह भी निर्णय किया गया कि सन 1966 के कुम्भ मेले के पावन अवसर पर एक वैश्विक हिन्दू सम्मेलन' का आयोजन प्रयाग (उत्तरप्रदेश) में हो।[3]

मुसलमान, ईसाई तथा श्री गुरुजी

ईसाई और मुसलमान समाजों के प्रति दृष्टिकोण

'द इलस्ट्रेटेड वीकली' के सम्पादक सरदार खुशवन्त सिंह के

१. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ५५-५६.
२. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ५६-६०.
३. पत्ररूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ८-६०.

साथ मुम्बई में हुई दिनांक 17.11.1972 की भेंटवार्ता में श्री गुरुजी कहते हैं, ''धर्मांतरण कराने के ईसाइयों के ढंग को छोड़ दें तो उनसे हमारा कोई वैर नहीं। बीमारों को दवाइयां तथा भूखे लोगों को रोटी देने की आड़ में वे अपने धर्म का प्रचार न करें। मुझे खुशी है कि ये लोग भारतीय गिरजाघरों को रोम के बन्धन से मुक्त स्वायत्त बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

''उनकी निष्ठा को प्रेम से जीतने की ही नीति मुसलमानों के बारे में सबसे योग्य रहेगी।'' सरदार खुशवन्त सिंह जी यह सुनकर चकित रह गए। श्री गुरुजी ने आगे कहा, ''जमात-ए-इस्लामी का एक प्रतिनिधि -मण्डल मुझसे मिलने आया था। मैंने उनसे कहा कि मुसलमानों को इस बात को पूरी तरह भुला देना चाहिए कि कभी उन्होंने इस देश पर राज्य किया था। विदेशी मुस्लिम देशों को अपना घर नहीं मानना चाहिए। भारतीयता की मुख्य विचारधारा में उन्हें घुल-मिल जाना चाहिए।''[1]

उर्दूभाषा का आग्रह

प्रख्यात ईरानी पत्रकार डा. सैफुद्दीन जिलानी से दिनांक 30 जनवरी, 1971 को कोलकाता में हुई भेंटवार्ता में श्री गुरुजी ने कहा, ''उर्दू मुसलमानों की धर्म भाषा नहीं है। पवित्र 'कुरान' अरबी भाषा में लिखी है। अत: मुसलमानों की वाकई में कोई धर्मभाषा है, तो वह अरबी ही हो सकती है। इस पर भी 'उर्दू' के बारे में इतना आग्रह किसलिए? कारण स्पष्ट है कि उस भाषा के आधार पर मुसलमानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में वे संगठित करना चाहते हैं।

पाणिनी, राम, कृष्ण आदि ही वास्तविक राष्ट्रपुरुष

वे आगे कहते हैं, ''कुछ मुसलमानों का कहना है कि उनके राष्ट्रपुरुष रुस्तम हैं। किन्तु रुस्तम तो इस्लाम धर्म के उदय होने से काफी पहले हो गए थे। वे इनके राष्ट्रपुरुष कैसे हो सकते हैं? यदि वैयाकरण पाणिनि की पांच हज़ारवीं जयन्ती मनाते हुए पाकिस्तान के लोग बड़े गर्व के साथ उनको अपना एक पूर्वज मानते हैं तो भारत के 'हिन्दू मुसलमान' (मैं उन्हें हिन्दू मुसलमान ही मानता और कहता रहा हूं) पाणिनी, वाल्मीकि, राम, कृष्ण आदि को उतने गर्व से अपना पूर्वज क्यों नहीं मानते? मुसलमान यदि राम, कृष्ण आदि को अवतार न मानें तो कोई फर्क नहीं पड़ता, किन्तु उन्हें राष्ट्रपुरुष तो मानना ही चाहिए।

1. राष्ट्राय नम:; मो.ग.तपस्वी; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ-159-

सत्पुरुषों का अनुकरण

ईश्वर-साक्षात्कार के बारे में श्री गुरुजी ने कहा, ''ऐसा नहीं कि ईश्वरीय साक्षात्कार केवल हिन्दू ही कर सकते हैं। अपने-अपने धर्ममतों के अनुसार ईश्वर का साक्षात्कार कोई भी कर सकता है। शृंगेरी मठ के शंकराचार्य का ही एक उदाहरण लें। यह उदाहरण वर्तमान शंकराचार्य के गुरु का है। एक बार एक अमरीकी व्यक्ति उनके पास गया और कहने लगा कि 'मुझे हिन्दू कर लीजिए'। शंकराचार्य ने उससे पूछा कि 'आपको हिन्दू बनने की इच्छा क्यों हो रही है?' उसने कहा, 'मुझे ईसाई धर्म से शान्ति प्राप्त नहीं हुई और मेरी आध्यात्मिक तृष्णा शान्त नहीं हुई।' इस पर शंकराचार्य ने कहा, 'क्या आपने वाकई प्रामाणिकता से ईसाई धर्म का पालन किया है? उसके बाद यदि आपका यह मत बने कि ईसाई धर्म का प्रामाणिकता से पालन करने के बाद भी मन को शांति नहीं मिली, तो फिर आप मेरे पास अवश्य आइए।' हमारे धर्म में धर्म परिवर्तन को कोई प्रश्रय नहीं है। हमारा कहना है कि 'यह सत्य है। आपको स्वीकार न हो तो छोड़ दें, अन्यथा इसे ग्रहण करें।'

श्री जिलानी कहते हैं कि वे श्री गुरुजी के इस व्यापक दृष्टिकोण को देखकर विस्मयचकित रह गए। इसी भेंटवार्ता मे श्री गुरुजी आगे कहते हैं, ''लोगों को तो ऐसे सत्पुरुषों का अनुकरण करना चाहिए जो परमात्मा के चरणों में लीन हैं, सच्चरित्रवान हैं और जिनकी दृष्टि विशाल है।''[1]

तुष्टीकरण की घातक नीति

दिल्ली में दिनांक 11 जून, 1970 को श्री गुरुजी की पत्रकार वार्ता में एक पत्रकार ने उनसे प्रश्न किया कि 'क्या आप को नहीं लगता कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नीतियों के फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमानों के बीच काफी बड़ी खाई पैदा हो गई है?' श्री गुरुजी ने उत्तर दिया, ''हमारा तो अनुभव ऐसा नहीं है। हमारा अनुभव यह है कि अल्पसंख्यक कहलाए जाने वालों का तुष्टीकरण करने की नीति पर जब चला जाता है, तभी विघटनकारी प्रवृत्तियां बढ़ती हैं। इस सिलसिले में आपको एक स्वानुभव वाला किस्सा बताता हूं। एक बार नागपुर के रहने वाले मुस्लिम लीग के एक कार्यकर्ता के साथ रेलगाड़ी के एक ही डिब्बे में यात्रा करने का मुझे अवसर मिला। गाड़ी में बैठने पर उनके एक मित्र ने कहा, 'नवाब साहब, क्या आप

१. राष्ट्राय नमःऋ पृष्ठ १४८-५६.

इन्हें पहचानते नहीं?' तब उन नवाब साहब ने अपने मित्र को जवाब दिया, 'जी हां, मै इन्हें पहचानता हूं। ये संघवाले हैं, सच्चे आदमी हैं, शूर हैं, इनके साथ हमारी दोस्ती पक्की हो सकती है।'

मैंने कहा, 'आपने एक दम सही फरमाया है। हम दोस्त बन सकते हैं, भाई बन सकते हैं और देश के उत्थान में सहयोगी भी। किन्तु जो लोग आप का तुष्टीकरण करके आपके दिमाग को बिगाड़ते हैं, वे ही आपके सच्चे शत्रु हैं।''[1]

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ २५८-५९.

10. राजनीतिक व आर्थिक चिन्तन

राष्ट्र की संकल्पना

श्री गुरुजी कहते हैं, ''यदि आधुनिक विद्वानों द्वारा की गई अनेकों अभिव्यक्तियां और परिभाषाएं संकलित करके उनका सार निकालें तो हमें कुछ निश्चित एवं सरल निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

''किसी राष्ट्र के लिये प्रथम अपरिहार्य वस्तु एक भूखण्ड है जो यथासंभव किन्हीं प्राकृतिक सीमाओं से आबद्ध हो तथा एक राष्ट्र के रहने और बुद्धि एवं समृद्धि के लिये आधार रूप में काम दे। द्वितीय आवश्यकता है उस विशिष्ट भू-प्रदेश में रहने वाला समाज जो उसके प्रति मातृभूमि के रूप में प्रेम एवं पूज्य भाव विकसित करता है तथा अपने पोषण, सुरक्षा और समृद्धि के स्थान के रूप में उसे ग्रहण करता है। संक्षेप में, वह समाज उस भूमि के पुत्र रूप में स्वयं को अनुभव करे।

''वह समाज केवल मनुष्यों का एक समुच्चय ही नहीं होना चाहिये। विजातीय व्यक्तियों का किसी स्थान पर एकत्रीकरण मात्र नहीं चाहिये। उनके जीवन की एक विशिष्ट पद्धति बनी होनी चाहिये, जिसको जीवन के आदर्श, संस्कृति, अनुभूतियों, भावनाओं, विश्वास एवं परम्पराओं के सम्मिलन के द्वारा एक स्वरूप दिया गया हो। इस प्रकार जब समाज समान परम्पराओं एवं महत्वाकांक्षाओं से युक्त, अतीत जीवन की सुख-दु:ख की समान स्मृतियों और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियों वाला तथा जिनके सभी हित संबधित होकर एकरूप हो गये हैं, इस सुव्यवस्थित रूप में संगठित हो जाता है तब इस प्रकार के लोग उस विशिष्ट प्रदेश में पुत्र के रूप में निवास करते हुए एक राष्ट्र कहे जाते हैं।''[1]

राष्ट्रीय जन

श्री गुरुजी के अनुसार- ''साधारणत: अपने देश और उसकी परम्पराओं के प्रति, उसके ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रति, उसकी सुरक्षा तथा समृद्धि के प्रति, जिनकी अव्यभिचारी एवं एकान्तिक निष्ठा हो वे जन राष्ट्रीय कहे जायेंगे।

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ-१२२.

साम्प्रदायिक कौन

''वे लोग साम्प्रदायिक कहे जाएंगे, जो देश के प्रति निष्ठा रखते हुए भी शेष समाज से अलग, अपने पंथ, बिरादरी, भाषा और तथाकथित जाति के आधार पर सोचते हों, और अपने मर्यादित लाभ एवं राजनीतिक सत्ता के उपभोग के निमित्त ऐसे विशेष अधिकारों व सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हों जो समाज के सर्वसामान्य व्यक्तियों को उपलब्ध न हों और इस उद्देश्य से वे दूसरों के साथ घृणा व द्वेष भी करते हों, उनका विरोध करते हों तथा कभी-कभी हिंसात्मक उपायों का भी अवलम्बन करते हों।''[1]

राष्ट्रीय एकात्मता का विश्लेषण

सन् 1962 में दि. 2 तथा 3 जून को भारत के प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय एकात्मता परिषद् (नेशनल इन्टेग्रेशन काउन्सिल) की प्रथम बैठक हुई जिसमें यह निर्णय किया गया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी को परिषद् की कार्यवाही में आमंत्रित किया जाए। परिषद् की बैठक में विचार-विनिमय हेतु लिपिबद्ध विचारों में श्री गुरुजी लिखते हैं,

''1. भारतीय राष्ट्रजीवन पुरातन है। एक तत्त्वज्ञान के अधिष्ठान से निर्मित समान जीवनादर्शों से युक्त एक सांस्कृतिक परंपरा से जनजीवन परस्पर संबद्ध है। ईसाई या इस्लाम के आक्रमणकारी आगमन के बहुत पूर्व से विद्यमान है। अनेक पंथ, संप्रदाय, जातियों का कभी-कभी अनेक राज्यों में विभक्त सा दृश्यमान होते हुए भी उसकी एकात्मता अविच्छिन्न रही है। जिस मानवसमूह की यह एकात्म जीवनधारा रही है, उसे 'हिंदू' नाम से संबोधित किया जाता है। अत: भारतीय राष्ट्रजीवन हिन्दू राष्ट्र जीवन है।

''2. राष्ट्रीय एकात्मता का विचार इसी शुद्ध भूमिका में से होना चाहिये। इस वास्तविक राष्ट्रधारा से, उसकी परंपरा-आशा-आकांक्षाओं से एकरसता का निर्माण ही एकात्मता (इन्टेग्रेशन) है।

''3. इस राष्ट्रीय अस्मिता को पुष्ट एवम् सबल करने वाले कार्य ही राष्ट्रीय हैं। इस अस्मिता से अपने को पृथक् मान कर इस राष्ट्र की आशा-आकांक्षाओं के विपरीत, उनके विरुद्ध आकांक्षाओं को धारण कर अपने पृथक् अधिकारों की मांग करने वाले समूह सांप्रदायिक (कम्युनल)

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-४; पृष्ठ-१६१.

कहे जाने चाहियें। अपने विभक्त अधिकारादि की पूर्ति हेतु राष्ट्र के जनसमूह पर आघात करने वाले – ये आघात धर्मान्तरण के रूप में, श्रद्धास्थानों को ध्वस्त या अपमानित करने के रूप में, महापुरुषों को अवगणित करने के रूप में या अन्य किसी रीति से हों – राष्ट्र विरोधी माने जाने चाहियें।

''4. भारत में हिन्दू को किसी भी प्रकार सांप्रदायिक (कम्युनल) नहीं कहा जा सकता। वह सदैव संपूर्ण भारत की भक्ति करने वाला, उसकी उन्नति तथा गौरव हेतु परिश्रम करने के लिये तत्पर रहा है। भारत के राष्ट्र जीवन के आदर्श (वैल्यूज़) हिन्दू-जीवन से ही प्रस्थापित हुए हैं। अत: वह राष्ट्रीय है, कम्युनल (सांप्रदायिक) कदापि नहीं।

''5. बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता (मेजारिटी कम्युनलिज़्म)-यह कल्पना निरी भूल है। जनतंत्र में बहुसंख्यकों के मत को व्यावहारिक जीवन में सर्वमान्य मानना आवश्यक है। अत: बहुसंख्यकों का व्यावहारिक अस्तित्व राष्ट्रीय अस्तित्व माना जाना उचित है। इस दृष्टि से भी हिन्दू-जीवन तथा उसके उत्कर्ष हेतु किये गए प्रयत्न राष्ट्रीय हैं, सांप्रदायिक नहीं। मेजारिटी कम्युनलिज़्म (बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता) शब्द प्रयोग जनतांत्रिक भाव के विरुद्ध है। परकीय राज्य में परकीय राज्यकर्ता सारी जनता को दास तथा विभिन्न जातियों (कम्युनिटीज़) में विभक्त मानने के कारण वे मेजोरिटी, माइनारिटी कम्युनलिज़्म जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनकी दृष्टि से यह ठीक हो सकता है किन्तु स्वराज्य में मेजोरिटी का ही प्रभुत्व रहना उचित होने के कारण मेजारिटी कम्युनलिज़्म शब्द प्रयोग तर्क के, न्याय के, सत्य के विरुद्ध है।''[1]

विदेश-नीति

अपने देश की विदेश-नीति क्या हो इस विषय पर दि. 13 मार्च, 1954 को संघ कार्यकर्ताओं तथा उसके पश्चात् नागपुर के इतवारी रोटरी क्लब द्वारा आयोजित सभा के समक्ष व्यक्त विचारों में श्री गुरुजी ने कहा, ''इस पृथ्वी पर किसी भी राष्ट्र का जीवन पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं रहता। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से सम्बन्ध आता है, उनमें परस्पर अनेक प्रकार का आदान-प्रदान चलता रहता है। समय-समय पर जो स्थितियां निर्माण होती रहती हैं उनमें अपना सम्बन्ध कैसा रहेगा, इस हेतु समुचित विचार करना आवश्यक है।

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-३ऋ पृष्ठ १२३-२५.

संसार का चित्र

''अपने उत्तर में चीन और उसके परे जापान है। पड़ोस में म्यांमार (बर्मा) है जिसका कल तक अपने से अभिन्न सम्बन्ध था। दक्षिण में सिंहल (श्रीलंका) है जो अपनी ही भूमि का एक अंग है किन्तु आज की राजनैतिक परिस्थिति में अलग है। उत्तर में नेपाल और भूतान हैं, जो पूर्व में सदैव से हिन्दूराज्य के नाते रहे हैं। शेष अफगानिस्तान से मिस्र तथा मोरक्को तक अनेक छोटे बड़े मुस्लिम देश, दूसरी ओर रूस, उसके आगे जर्मनी, फ्रांस आदि योरोपीय देश हैं। तत्पश्चात् महासागर को पार कर अमेरिका, जिसके दक्षिणी भूखण्ड में अनेक छोटे-छोटे राज्य दिखाई देते हैं।

क्या हमारी सीमाएं सुरक्षित हैं?

''हमारा देश विशाल है यद्यपि वह हाल में छोटा हो गया है। जनसंख्या की दृष्टि से यदि चीन को छोड़ दिया तो इतनी बड़ी जनसंख्या कहीं नहीं। क्या अपना राष्ट्रजीवन सुरक्षित है? क्या अपने देश की सीमाएं सुरक्षित हैं? उस पर आक्रमण करने का किसी को साहस न हो, ऐसी स्थिति है? इस देश के किसी बालक को तो क्या, कुत्ते को भी छेड़ने की हिम्मत न हो, क्या ऐसी बात है ? उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा।

हमारी नीति क्या हो

''ऐसी स्थिति में तीन मार्ग हमारे लिए सम्भव हैं। क्या रूस अथवा अमेरिका के साथ मेल किया जाए ? (उस समय रूस भी एक शक्ति था)। इससे उन्हें तो आनन्द होगा, किन्तु हमारी स्थिति तो वैसी ही दुर्दशापूर्ण होगी, जैसी कि दैत्य और बौने की मित्रता से बौने की हुई थी। अब केवल तीसरा मार्ग बचता है और वह है तटस्थ रहने का। किन्तु तटस्थ वही रह सकता है जो दोनों से अपनी रक्षा कर सके और दोनों के संघर्ष में अपनी भूमि पर संघर्ष नहीं होने दूंगा यह कठोरतापूर्वक बता सके। अत: हमें ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न करना चाहिए कि लोग हमारी अनुकम्पा की लालसा करें।''[1]

विदेशों से भारत के संबंध कैसे रहें?

पंजाब प्रांत संघचालक लाला हंसराज जी गुप्त एक संस्मरण में लिखते हैं, ''सन् 1968 के जुलाई मास की बात है। अपना संघ-शिक्षा वर्ग का दो मास का दीर्घ व थकाने वाला प्रवास पूर्ण कर पूजनीय श्री गुरुजी स्वास्थ्य-लाभार्थ इंदौर में माननीय पं. रामनारायण जी शास्त्री के यहां गए हुए

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-३ऋ पृष्ठ ६४-७०.

थे। इस बार के संघ-शिक्षा वर्ग में ही प्रथम बार पूजनीय श्री गुरुजी को सीने में बांयी ओर कुछ कष्ट है, इसका अनुभव हो रहा था।

प्रतिनिधि-मण्डल

''उन दिनों में हमारे दिल्ली नगर निगम के सदस्यों ने रूस में एक प्रतिनिधि मंडल भेजने का विचार किया था। उसमें तत्कालीन मेयर के नाते मेरा भी समावेश था। परन्तु किसी विशेष कारणवश भारतीय जनसंघ के वरिष्ठ अधिकारियों ने मेरा रूस में जाना अनावश्यक समझा व रूस जैसे देश के साथ कोई संबंध न रखा जाए इस नीति का आश्रय लिया। जनसंघ का सदस्य न होते हुए भी जनसंघ के तत्वावधान में ही नगर निगम का महापौर होने के कारण, जनसंघ के श्रेष्ठ नेताओं का निर्णय मान्य करना मैंने अपना कर्तव्य समझा व रूस जाने का विचार त्याग दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पंजाब प्रांत के प्रांत संघचालक होने के कारण तथा परम पूजनीय श्री गुरुजी से पारिवारिक संबंध का जो एक विशेष अनुभव हम सब लोग करते रहे हैं, उस कारण मैंने अपने कार्यक्रम में यह परिवर्तन उन्हें प्रेषित कर दिया।

अद्‌भुत सावधानता व सुस्पष्ट आकलन

''उसके उत्तर में दिनांक 26.7.1968 का जो पत्र उन्होंने मुझे लिखा था, उसमें परम पूजनीय गुरुजी ने भारत के क्षितिज को देखते हुए यह मत प्रकट किया था कि रूस की गलत नीति के सम्बन्ध में रोष प्रकट करने का कार्य राजनीतिक दल के नाते से जनसंघ ने किया है, यह ठीक ही है। तथापि भारत की राजनैतिक गतिविधि तथा आवश्यकताओं को देखते हुए विश्व के विभिन्न देशों से सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखना आवश्यक है व उसके लिए योग्य व्यक्तियों का - शिष्टमंडल का - जाना व अपने भारत तथा भारतीयता के लिए अनुकूलता निर्माण करना नितान्त आवश्यक है। इतना ही नहीं, तो केवल राजनीतिक स्वार्थ या आर्थिक सहायता अथवा संस्कृति के नाम पर कालिमा लाने वाले तथाकथित सांस्कृतिक शिष्टमण्डलों से भारत की प्रतिष्ठा को धक्का लगता है।

''अत: ऐसे शिष्टमण्डल न भेजकर योग्य व्यक्तियों के शिष्टमण्डलों का भेजा जाना, विचारों का आदान-प्रदान होना आवश्यक है, ऐसा उन्होंने स्पष्ट मत प्रकट किया था। प्रत्यक्ष मेरे या निगम के पूर्वनिश्चित मंडल का जाने या न जाने का प्रश्न मात्र पूर्णत: जनसंघ के अधिकारियों का है व

उनका जो निर्णय होगा उसका पालन उस समय करना यह मेरे लिए करणीय है, इस अनुशासन के पक्ष की ओर भी मेरा ध्यान दिलाने की सतर्कता उनकी उस अस्वस्थ स्थिति में भी उन्होंने प्रदर्शित की। कैसी अद्‌भुत सावधानता व कैसा भारत के राजनीतिक क्षितिज का सुस्पष्ट आकलन, देखकर किसी की भी बुद्धि दंग हुए बिना नहीं रह सकती।

पू. श्री गुरुजी ने इंदौर से 26-7-1968 को लिखे हुए पत्र में कहा था - ''अपने अत्यंत विश्वास के, विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टि के, राष्ट्र हितार्थ कुशलता से वायुमंडल बनाने की क्षमता जिनमें है ऐसे सज्जनों को इन सभी देशों में समय-समय पर भेजकर वहाँ के लोगों को तथा राजनैतिक दायित्व चलानेवाले सज्जनों को भारतानुकूल बनाने का प्रयत्न करना हितकारक होगा।''[1]

राज्य-रचना का आधार व्यवस्था और सुयोग्य शासन हो

ठाणे के अखिल भारतीय कार्यकर्ता सम्मेलन में दिनांक 31.10.1972 के बौद्धिक में श्री गुरुजी कहते हैं, ''हम लोगों ने तो पहले ही कहा था कि भाषा के आधार पर इतने राज्य बनाने की आवश्यकता नहीं। सम्पूर्ण देश की सुस्थिर और अच्छी राज्यव्यवस्था बनाने के लिए जो भी छोटे-बड़े राज्य बनें, फिर उनमें एक भाषा के लोग रहें, दो के रहें अथवा तीन भाषाओं का पोषण भी उनमें हो। जिस प्रकार व्यवस्था और सुयोग्य शासन का विचार कर ज़िले बनाए जाते हैं, उसी प्रकार राज्य बनें।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था

''उसी प्रकार सम्पूर्ण देश की रचना में हमने जो दूसरा निर्णय किया है वह है प्रजातांत्रिक व्यवस्था का। ऐसा सोचा गया कि विश्व में जितने प्रकार की राज्य व्यवस्थाएं हैं, उनमें सबसे कम खराब इस व्यवस्था को माना गया है। सम्पूर्ण प्रजा का इस व्यवस्था में प्रतिनिधित्व होता है। परन्तु इस व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि सर्वसामान्य समाज भली प्रकार से सुशिक्षित हो। केवल सुशिक्षित ही नहीं, उसे अर्थनीति, राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की जानकारी आदि बातें भी अच्छी प्रकार से विदित होनी चाहियें। इस प्रकार शिक्षित और जानकार समाज ही अपने योग्य प्रतिनिधि चुनने में समर्थ हो सकता है। प्रशिक्षित और जागरूक मतदाता न होने के कारण यह दुरावस्था उपस्थित होती है कि योग्य प्रतिनिधियों का चुनाव नहीं हो पाता।

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ १७६-८१.

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व

''इस सम्बन्ध में यह विचार सामने आता है कि आजकल जैसा सर्वसामान्य और जनगणना के अनुसार जनसंख्या को आधार मानकर क्षेत्रीय प्रतिनिधि चुनने की जो प्रणाली है, उसे वैसा ही बनाए रखकर उसके साथ उद्योग-धंधों के प्रतिनिधित्व की प्रणाली भी चलावें। राष्ट्र-जीवन के जितने महत्व के कार्य हैं उन कार्यों को करने वाले समूहों से अलग-अलग प्रतिनिधि चुन लिए जायें। इस प्रकार अन्य सभी काम-धन्धों का वर्गीकरण कर प्रतिनिधित्व कराया जाए। अंग्रेज़ी में इसे Functional Representation (व्यावसायिक प्रतिनिधित्व) कहा है। विश्व के कुछ देशों में यह लागू भी है। यद्यपि प्रयोग कोई भी हो, पूर्ण कदापि नहीं होता। इसलिए विचार ऐसा ही करना पड़ता है कि जो अधिकाधिक लाभदायी और कम से कम हानिकारक हो, वही किया जाए।''[1]

राजनीति जीवन का सर्वस्व नहीं

सन 1949 में संघ पर प्रतिबन्ध हट जाने के पश्चात् नागपुर, दिल्ली, पुणे, अमृतसर, लखनऊ, पटना, कोलकाता, कर्णावती (अहमदाबाद), राजकोट, चेन्नई आदि स्थानों पर हुए स्वागत -समारोहों पर श्री गुरुजी द्वारा दिए गए भाषणों के संकलित सार में कहा गया है, ''राजनीति से जीवन कहीं अधिक विशाल और उच्च है। राजनीति को ही सर्वव्यापी समझना भारतीय राष्ट्र की आत्मा को भूलकर विचार करना है। केवल राजनैतिक जीवन में से भेद-भाव और पक्षोपक्ष निर्माण होते हैं और देश में असहिष्णुता फैलती है। सचमुच आज दूसरों के मतों के प्रति आदर प्रकट करने का शुद्ध भाव नष्ट हो गया है। अपेक्षा यह है कि वास्तव में ये सारे पक्षोपपक्ष अपनी-अपनी स्वतन्त्र बुद्धि के अनुसार भारत की उन्नति का विचार करें और वे सब एकत्र आकर उस विचार को साकार रूप देने का प्रयास करें।

वास्तविक राष्ट्रभक्ति

''हाल ही में पंडित नेहरू अमेरिका से लौटते समय लंदन मे रुके थे। समाचारपत्रों में आप लोगों ने पढ़ा होगा कि अनेक भारतवासियों ने उस समय उनके सामने प्रदर्शन किया, उन्हें काले झण्डे दिखाए और अपने काले कलूटे अन्तःकरण का प्रदर्शन किया। 'पं. नेहरू मुर्दाबाद' उद्घोष भी उन्होंने किया। विदेशों में इस प्रकार का व्यवहार याने भारत के साथ गद्दारी है।

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-६ऋ पृष्ठ १२६-२६.

पं. नेहरू का अपमान भारत के प्रधानमंत्री का अपमान है, भारत राष्ट्र का अपमान है। राजनीति मेरी प्रकृति नहीं है, फिर भी यह समाचार पढ़कर मैं अत्यंत व्यथित हुआ।

''दूसरी ओर इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल, जो इस समय विरोधी दल के नेता हैं, जब अमेरिका गए थे तब वे अपनी सरकार की आलोचना करेंगे ऐसा समझकर वहां के पत्रकारों ने उनसे पूछा - 'आप की सरकार का शासन कैसा चल रहा है?' चर्चिल ने उत्तर दिया, -'मैं तुम्हारे प्रश्न का हेतु बहुत अच्छी तरह समझता हूं। परन्तु भूलिए मत, मैं इंग्लैण्ड में विरोधी दल का नेता हूं तथा विदेश में मैं अपनी सरकार का समर्थन करनेवाला हूं।' यह वास्तव में राष्ट्रभक्ति है।''[1]

नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा

'पोलिटिकल डायरी' के अन्तर्गत सामयिक समस्याओं पर, समय-समय पर साप्ताहिक 'आर्गेनाइज़र' में लिखे गए पं. दीनदयाल उपाध्याय के लेखों के संग्रह का प्रकाशन दिनांक 17 मई, 1968 को मुम्बई में श्री गुरुजी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर दिए गए भाषण में श्री गुरुजी कहते हैं, ''शासन अच्छा चलता है, देश की रक्षा होती है, जनसाधारण सुरक्षित अनुभव करते हैं, सुख की वृद्धि होती है, आत्मविश्वास, राष्ट्रभक्ति आदि पवित्र गुणों का विकास होकर सर्वसाधारण मनुष्य चारित्र्यसम्पन्न, शीलसम्पन्न, आत्मसमर्पण की भावना से युक्त बनता है, इसमें मेरी रुचि है। मुझे इसमें कोई रुचि नहीं कि वहां कुर्सी पर कौन बैठता है। शिखर पर बैठने की सबकी इच्छा होती है, परन्तु मैंने कहा कि भाई शिखर पर बैठने की इच्छा क्यों हो! बड़े-बड़े मन्दिरों के शिखर पर तो कौवे भी बैठते हैं। हमें तो, उस नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा करनी चाहिए जो अपने कन्धों पर मन्दिर को भव्य स्वरूप देता है।''[2]

भारत की सभी भाषाएं राष्ट्रीय हैं

दिनांक 7 सितम्बर, 1949 को कोलकाता में पत्र प्रतिनिधियों के सम्मुख दिए गए भाषण में राष्ट्रभाषा संबंधी समस्या के विषय में श्री गुरुजी ने कहा, ''देश की समस्त समस्याओं की ओर सांस्कृतिक दृष्टि से देखते हुए, वह समस्या, जो कि आज हमारे सम्मुख उपस्थित है तथा जिस पर

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-२ऋ पृष्ठ ७५-७६.
२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ-११०.

इतना अधिक बल दिया जा रहा है, राष्ट्रभाषा संबंधी है। मेरे विचार में आज जो उलझन निर्माण की गयी है, वह केवल देश की अन्यान्य सभी भाषाओं को समान रूप से राष्ट्रीय न मानने के कारण ही है। चाहे वह तमिल हो अथवा बंगला, मराठी या पंजाबी, सभी हमारी समान श्रद्धा की पात्र हैं। मेरी इच्छा है कि हम लोग देश की एकाधिक भाषाओं को जानने में समर्थ हों, जो कि हम पर समान अधिकार रखती हैं। अतएव सम्पूर्ण समस्या के हल की दृष्टि से, हमें आज विशेषकर हिंदी को ही प्रधानता देना उचित होगा क्योंकि वही सुविधाजनक है। जहाँ तक कि मेरा स्वयं का सम्बन्ध है, मैं हिंदी के पक्ष में हूँ और विशेषकर उस हिंदी के पक्ष में हूँ जो कि सर्वसाधारण सभी भारतीय भाषाओं के समान ही संस्कृतनिष्ठ एवं संस्कृत-जन्य है।

''हमें इस प्रकार का भय मानने की अब तनिक भी आवश्यकता नहीं कि प्रांतीय भाषा के अधिकारों पर किसी प्रकार का अतिक्रमण होने जा रहा है, इस बात को कोई भी नहीं चाहेगा कि वे सारी भाषाएं, जिन्होंने सदियों तक हमारे विचारों को इतने सुयोग्य ढंग से अभिव्यक्त किया है, नष्ट हो जायें और उनमें से केवल कोई एक देशी भाषा जीवित रहे। किंतु फिर भी राष्ट्रभाषा के रूप में केवल उस एक भाषा को उपयोग में लाया जाए, जो कि सर्वसाधारण जनों के लिए विचारों के आदान-प्रदान की दृष्टि से सुगम है तथा जिसे हिन्दी कहते हैं।''[1]

कोयंबटूर (तमिलनाडु) में श्री गुरुजी के एक कार्यक्रम में पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री आर.के. षण्मुखम् चेयिार उपस्थित थे। उन्होंने संविधान सभा में हिन्दी का विरोध किया था। इस कार्यक्रम में श्री गुरुजी ने सरल सुबोध हिन्दी में अपने विचार प्रस्तुत किए। उस समय के भाषण को सुनकर श्री षण्मुखम् ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि ''इस प्रकार की हिन्दी हो तो मेरी कोई आपत्ति नहीं और यह राष्ट्र की सम्पर्क-भाषा का स्थान ले सकती है।''[2]

नागरी लिपि और देश का नाम भारत हो

''लिपि, देश का नाम आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में वाद-विवाद का तूफान खड़ा करने की तनिक भी आवश्यकता संघ अनुभव नहीं करता,

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-२ऋ पृष्ठ ६१-६२.

२. श्री हो.वे.शेषाद्रि जी से साक्षात्कार के आधार परऋ दिनांक ३.११.२००३.

क्योंकि हिन्दी के साथ स्वाभाविक रीति से ही, सबसे अधिक पूर्ण लिपियों में से एक, ऐसी नागरी लिपि ही हमारी राष्ट्रलिपि होनी चाहिए। वैसे ही देश का नाम 'भारत' होना ही युक्तियुक्त है। वह हमारी ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार है तथा 'भारतीय नाट्य', 'भारतीय कला' जैसे वाक्य प्रयोगों से, उसे हम अपने व्यावहारिक जीवन में अप्रत्यक्ष रूप से मान्य भी कर चुके हैं। यह संज्ञा, हमें अपने वैभवशाली अतीत का स्मरण कराकर, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण हेतु प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देती है।''[1]

मत (वोट) का अधिकारी कौन?

सन 1957 के आम चुनावों से पूर्व लिखे गए एक लेख में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''देश के अग्रणी लोग मतदाताओं को समझाने बुझाने में व्यस्त हैं। इस सम्बन्ध में दो प्रमुख सिद्धान्त सामने आ रहे हैं। दोनों सिद्धान्त उतने ही पुराने हैं जितनी की विधायिकाओं हेतु आम चुनाव की लोकतांत्रिक प्रणाली। उनमें पुरातन की ही पुनरावृत्ति है, नवीनता कुछ नहीं। समाचार पत्रों के अनुसार इनमें से एक है पण्डित नेहरू का प्रतिपादन कि व्यक्ति के गुण-दोष भूलकर दल अर्थात् उनकी कांग्रेस को चुना जाए और दूसरा है चक्रवर्ती राजगोपालचार्य का कथन कि दल की उपेक्षा कर व्यक्ति की समीक्षा एवं उसके चरित्र का आकलन किया जाये। राजाजी ने ठीक ही कहा है, क्योंकि अन्ततः जनप्रतिनिधियों का चरित्र ही विधायिका के अन्दर और बाहर सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।

''किन्तु उक्त दोनों विचार आंशिक रूप से ही सत्य हैं, क्योंकि उत्तम चरित्रवान् व्यक्तियों से रहित तथा राष्ट्रहित में निःस्वार्थ समर्पण के अभाव में कोई भी दल सिर्फ ऊँची घोषणाओं, लम्बे-चौड़े दावों और जुलूसों के आधार पर एक लकवाग्रस्त अनुपयोगी और हानिकारक शरीर से अधिक कुछ नहीं हो सकता। दूसरी ओर, समान लक्ष्य और कार्यक्रम से परस्पर-सम्बद्ध चरित्रवान्, किन्तु किसी संगठित दल से न जुड़े हुए लोग ऐसे मशीनी पुर्ज़ों के समान हैं, जो अपने आप में सक्षम होते हुए भी किसी सामूहिक कार्य के लिये अनुपयोगी तथा उपलब्धि-अर्जन के लिए अक्षम होते हैं।

''अतः इन दोनों विचारों को एक साथ लेना होगा और राष्ट्रीय हितों के लिए समर्पित, स्वार्थरहित, योग्य, सामूहिक कार्यान्वयन में समर्थ तथा

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-२ऋ पृष्ठ-६३.

सामंजस्यपूर्ण राष्ट्रीय विचारों से अनुप्राणित चरित्रवान् लोगों के दल को चुनना होगा। इन दोनों के अन्तर को न पहचान पाने पर पछतावा ही हाथ लगेगा। ऐसी स्थिति में मतदाता ठीक से समझ लें कि वह किस दल का समर्थन करे और कैसे प्रत्याशी को चुने।''[1]

भारतीय जनसंघ की स्थापना

दिनांक 2 जुलाई, 1956 के साप्ताहिक 'पांचजन्य' में श्री गुरुजी का डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के संबंध में एक लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख में श्री गुरुजी ने डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के साथ हुए वार्तालाप पर प्रकाश डाला है। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जनसंघ की स्थापना की थी और सहकार्य के लिये सुयोग्य संघ कार्यकर्ताओं की मांग भी की थी। इस कारण श्री गुरुजी ने राजनीतिक दल और संघ के परस्पर संबंध तथा इस विषय को लेकर मन में उत्पन्न होनेवाले संभ्रम आदि का स्पष्टीकरण इस महत्वपूर्ण लेख में किया है। श्री गुरुजी ने लिखा है, ''डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की संघ संबंधी अपेक्षाओं का विचार कर मुझे उन्हें स्वाभाविक रूप से सतर्क करना पड़ा। मैंने उन्हें स्पष्ट रूप से बताया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को राजनीति में नहीं घसीटना चाहिए, क्योंकि वह किसी भी राजनैतिक दल के आधीन रहकर कार्य नहीं कर सकता। उसका वास्तविक कार्य राष्ट्र के सच्चे सांस्कृतिक जीवन को पल्लवित करना है। उन्होंने इस स्थिति को समझा और इस तथ्य को स्वीकार कर लिया, पर साथ ही यह सम्मति प्रकट की कि नये राजनैतिक दल को भी किसी अन्य संस्था के आधीन नहीं रखा जा सकता। उसके उचित पोषण और विकास के लिए उसका पृथक् अस्तित्व आवश्यक है।

हिन्दू-राष्ट्र पर दृढ़ निष्ठा

''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और प्रस्तावित दल के आपसी संबंधों के सिलसिले में इन मूलभूत बातों पर एक मत हो गया। एक अन्य प्रश्न जिस पर सोच-विचार करना आवश्यक था- वह था दल का आदर्श क्या हो? जहाँ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सम्बन्ध है - उसके निश्चित आदर्श हैं। इसलिए यदि संघ के किसी स्वयंसवेक का सहयोग प्राप्त करना हो तो यह तभी मिल सकता है जब राजनैतिक दल भी उसी आदर्श के अनुसार कार्य करने को तैयार हो।

१. पा□चजन्यऋ २५.२.१९५७ऋ पृष्ठ ५,१२.

''डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने भी कहा कि वे हिन्दू राष्ट्र के आदर्श से पूर्णत: सहमत हैं और हिन्दू राष्ट्र को वैभव के उच्च शिखर पर ले जाना किसी लोकतंत्र की आधुनिक कल्पना के विरुद्ध नहीं समझते, क्योंकि हिन्दू राष्ट्र हिन्दुओं और अहिन्दुओं को पूर्ण नागरिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का विश्वास दिलाता है, जब तक वे राष्ट्रविरोधी हलचलों में भाग न लें, अनुचित ढंग से सत्ता हथियाने का प्रयत्न न करें और राष्ट्र को उसके वैभव और महानता के उच्च शिखर से गिराने का प्रयत्न न करें।

रा.स्व.संघ का सहयोग

''जब इन बातों का निर्णय हो गया तब मैंने अपने कुछ सहयोगियों को (पं. दीनदयाल उपाध्याय, श्री अटल बिहारी वाजपेयी आदि), जो बड़े विश्वस्त और अनुभवी थे, चुना। ये सहयोगी ऐसे थे जो नवीन दल की स्थापना का बोझ उठाने और अपनी नि:स्वार्थ सेवाओं को अर्पण करने के लिए तैयार थे और इस नये दल को शक्तिशाली तथा संगठित आधार पर स्थापित करके इसे लोकप्रिय अखिल भारतीय राजनीतिक दल बनाने की योग्यता रखते हैं। इस प्रकार डॉ. मुखर्जी अपनी आकांक्षा भारतीय जनसंघ की स्थापना के रूप में साकार कर सके।''[1]

संतुलित बुद्धि से तौलनिक विचारों का प्रतिपादन लाभप्रद

श्री अशोक घारपुरे, सांगली (महाराष्ट्र) को श्री गुरुजी ने दिनांक 22.10.1969 के पत्र में लिखा, ''साप्ताहिक विजयन्ता' का विशेषांक प्रकाशित करने का आपने संकल्प किया है, ऐसा ज्ञात हुआ। भारतीय जनसंघ के प्रान्तीय अधिवेशन के उपलक्ष्य में यह उपक्रम है, इसलिए 'जनसंघ' के लक्ष्य, नीति आदि विषयों के बारे में यथार्थ जानकारी देने वाले लेख तो उसमें प्रकाशित करने का आपने अवश्य ही सोचा होगा। उसी के साथ अन्य सब दलों के बारे में संतुलित बुद्धि से लिखी गयी सर्वंकष जानकारी प्रकाशित कर तौलनिक विचारों का प्रतिपादन करना यदि संभव हुआ तो वह लाभप्रद सिद्ध होगा। साथ ही विशुद्ध राष्ट्रभावना जागृत करने वाली कथाएं, घटनाएं, कविता आदि के द्वारा यह विशेषांक सर्वांगपरिपूर्ण हो, ऐसा प्रयास करें।''[2]

१. पा□चजन्य नई दिल्लीऋ २.७.१९५६ऋ पृष्ठ ५-६.

२. अक्षर प्रतिमा, खण्ड-२ऋ पृष्ठ २४०-४१.

राजनैतिक क्षेत्र के कार्यकर्ता का दायित्व

भारतीय जनसंघ के प्रमुख श्री पीताम्बर दास जी को दिनांक 28.6.1967 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''....राजनीति के विचित्र मार्ग में ऐसे ही कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो अपने साथ आने वाले नये-नये बंधुओं को सन्मार्ग पर बनाये रख सकें, फिसलने से रोक सकें, ध्येय का स्पष्ट दर्शन कराकर निष्ठावान्-चारित्र्यवान् बना सकें। अतः आपका स्थान बहुत दायित्वपूर्ण है और उस दायित्व को पूर्ण करने की आपकी क्षमता है।''[1]

नगरसेवकों का स्वागत

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नागपुर शाखा की ओर से, प.पू. श्री गुरुजी की उपस्थिति में, नागपुर महानगरपालिका के नवनिर्वाचित सदस्यों के स्वागत का एक कार्यक्रम दिनांक 15 अप्रैल, 1969 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर श्री गुरुजी ने अपने भाषण में कहा, ''मैं तो इन निर्वाचनों को कबड्डी के समान मानता हूं। दो पक्ष इधर-उधर खड़े हो जाते हैं। एक-दूसरे के विरुद्ध सभी प्रकार के प्रयत्नों में जुट जाते हैं। 'यह मारा', वह मर गया' कहते हैं। अंग्रेज़ी में 'आउट' बोलते हैं। अपने यहाँ 'आउट' नहीं कहते, 'मारा', 'मर गया' कहते हैं। यह अपने तत्त्वज्ञान के अनुरूप ही है, क्योंकि हमारी यह मान्यता है कि मनुष्य मरने के बाद पुनः जीवित होता है। पुनर्जन्म के अमिट सिद्धांत को दिखाने वाला यह खेल है। जब खेल चलता है, तो बड़े आवेश के साथ चलता है। परंतु जब वह समाप्त हो जाता है, तो कोई हारा हो या कोई जीता हो, सभी आपस में बैठते-उठते हैं, घनिष्ठ मित्र के नाते एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। मैं समझता हूं कि निर्वाचनों में भी यह बात लाभदायक होती है। मेरी प्रार्थना है कि नवनिर्वाचित बंधु भी इसी प्रकार का विचार रखें कि सभी का लक्ष्य एक समान ही है। नगरपालिका याने वास्तविक रूप में नगर का पालन करनेवाली। इस कार्य को यथार्थ रूप में हम निभा सकें, उसका निर्वाह कर सकें, यही सबका एकमेव लक्ष्य है अतः इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए आपस में अधिकाधिक विचार-विमर्श कर सभी दृष्टि से योग्य योजनाएं बनाएं ओर सब मिलकर कंधे से कंधा मिलाकर प्रयत्न करें।''[2]

---

१. अक्षर प्रतिमा खण्ड-२ऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ १०३-०४.

२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-५ऋ पृष्ठ ११४-११५.

शासन में सेवाभावी रहने से राज्य में सुख-समृद्धि

श्री हरिहर पटेल, भुवनेश्वर (उड़ीसा) को दिनांक 2.4.1967 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''शासन में अच्छे सेवाभाव के चारित्र्यवान् व्यक्ति रहने से सुखशान्ति, समृद्धि का जीवन प्राप्त होता है। आप तथा आपके अन्य सहयोगियों के अधिकारग्रहण से ऐसे व्यक्तियों के हाथों में राज्य की बागडोर आने का उत्तम प्रसंग उपस्थित हुआ है। इसमें मुझे परम संतोष का अनुभव हो रहा है। आप सब की पूर्ण सफलता पर मुझे विश्वास है। मंत्रिमण्डल के प्रमुख भी श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिनका अन्तःकरण क्षुद्रता की ओर झुकना सर्वथा असंभव है। आशाभरी दृष्टि से आप लोगों के शासन के सुदर्शन की ओर देख रहा हूँ, जिससे कि उत्कल प्रान्त के सब बंधु प्रगतिपूर्ण सुखमय जीवन का लाभ प्राप्त कर सकें।''[1]

सबका भारतीयकरण करना नितान्त आवश्यक

दिल्ली के साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' द्वारा 'भारतीयकरण' पर विशेषांक निकालने के अवसर पर, पत्र के सम्पादक श्री देवेन्द्र स्वरूप को दिनांक 8.3.1970 के पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, ''विशेषतः जब जातिवाद, पंथवाद, भाषावाद, प्रादेशिक अभिमान का अतिरेक, दलगत स्वार्थ, व्यक्तिगत मान, पद-प्रतिष्ठा, स्वार्थ, इत्यादि विशुद्ध भारतीय एकात्म राष्ट्रभाव को मारक अवगुणों का सर्वत्र प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, भारतीयकरण हेतु योजनाबद्ध व्यापक प्रयत्न करना अतीव आवश्यक है। इसका विरोध करना राष्ट्रविनाशकारी क्षुद्र प्रवृत्तियों का पोषण करना ही है, जो कि आक्रान्ताओं से घिरे हुए, विघटनकारी तत्वों से छिन्न-विच्छिन्न हो रहे, अपने संकटग्रस्त देश को दासता की भीषण गर्त में ढकेल देगा।''[2]

आर्थिक चिन्तन

आर्थिक समस्या एवं श्रमनीति के बारे में श्री दत्तोपंत ठेंगडी जी का समय-समय पर श्री गुरुजी के साथ विचार विनिमय होता रहता था। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं, ''आर्थिक समस्या और श्रमजीवी लोगों के प्रति नीति के विषय में श्री गुरुजी के विचार मौलिक थे। उनके साथ हुई मेरी बातचीत में उन विचारों का बुनियादी महत्व मुझे नित्य अनुभव में आता था। परंतु सार्वजनिक कार्यक्रमों में उन्होंने यह विचार क्वचित ही प्रकट किये हैं।

---

१. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ ३३१-३२.

२. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ३३८-३९.

संभवत: दैनंदिन संघकार्य से जिन विषयों का सीधा स्वाभाविक संबंध नहीं था, उन विषयों पर अपने विचार प्रकट न करने का ही उन्होंने सोचा होगा, ऐसा मुझे लगा।

कार्ल मार्क्स की प्रेरणा-नीतिशास्त्र

''पाश्चात्य वामपंथी विचारप्रणालियों की श्रीगुरुजी को पूर्ण जानकारी थी। मार्क्सवाद का उनका विरोध तो स्वाभाविक ही था, परन्तु कार्ल मार्क्स को उनके अनुयायी जैसे अपरिपक्व, असंस्कृत, जड़वादी चित्रित करते हैं, वैसा श्री गुरुजी नहीं मानते थे। वे समझते थे कि कार्ल मार्क्स को नीतिशास्त्र से ही प्रेरणा प्राप्त हुई थी। मार्क्स ने एक उपकरण के नाते ही अर्थनीति का उपयोग किया है और अपनी चिंतन-प्रणाली, धर्ममत जैसा एक मत बनकर दुनिया में ख्याति प्राप्ति न करे, ऐसा ही मार्क्स का विचार था। इसलिये श्री गुरुजी को लगता था कि मार्क्स के अनुयायियों ने अपने विचार प्रवर्तक गुरु के प्रति बहुत अन्याय किया है। श्री गुरुजी का पूर्ण विश्वास था कि यदि कार्ल मार्क्स हिन्दू विचारप्रणाली के संपर्क में आ जाते, तो निश्चित ही उनके विचारों की अभिव्यक्ति भिन्न स्वरूप धारण करती।

सामूहिक सौदेबाज़ी शब्दप्रयोग अनुचित

''श्री गुरुजी सामूहिक सौदेबाज़ी (कलेक्टिव बार्गेनिंग) शब्दप्रयोग अनुचित मानते थे। इससे औद्योगिक व्यवहार में मालिक और श्रमिक यही दो पक्ष विद्यमान हैं, ऐसा अर्थ होता है। वस्तुत: औद्योगिक व्यवहार निर्धारण में समाज यह सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है, इसका विस्मरण ''सामूहिक सौदेबाजी'' शब्द के प्रयोग से होता है। औद्योगिक क्षेत्र में शांतता-समाधान और उत्पादन, ये केवल मालिक और श्रमिक के बीच घरेलू झगड़ा नहीं माना जा सकता। अत: औद्योगिक क्षेत्र के पारस्परिक संबंध निर्धारण में समाज का यथोचित स्थान मान्य करना आवश्यक है। परिणामत: उपर्युक्त शब्द-प्रयोग करने में चिन्तन एकांगी होकर राष्ट्रीय हितों को हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

''व्यवस्थापक और श्रमिकों के बीच सुसंवाद तो आवश्यक ही है। अपने-अपने हितों के विषय में नित्य जागरूकता भी इनके लिये स्वाभाविक ही है। परन्तु इन दोनों पक्षों के लिये अपने अपने हित राष्ट्रीय हित की तुलना में गौण हैं, ऐसा अनिवार्य रूप से मानना आवश्यक है। औद्योगिक क्षेत्र की समझौता-वार्ता करते समय सामाजिक हित में सब से अधिक हितकर

क्या रहेगा, इस दृष्टि से सुसंवाद रहे, न कि उनके आपसी स्वार्थों का सामंजस्य।

स्वायत्त स्वयंशासित इकाईयों का विकास

''श्री गुरुजी का विचार था कि राजनीतिक दल और जन-संगठनों के पारस्परिक संबंध क्रियाशील सदस्यों की आपसी मित्रता पर अवलंबित न रहें, यद्यपि आपसी मैत्री का अपरोक्ष रूप में उपयोग ही होता है। विभिन्न विषयों के अनुरूप राजनीतिक दल का क्षेत्र राज्य के क्षेत्र से समकक्ष रहे, ऐसी ही धारणा सर्वोत्कृष्ट समाज-व्यवस्था की कल्पना में निहित है। भारत की विचार प्रणाली के अनुसार शासनविहीन समाज-व्यवस्था को आदर्श माना गया है। यदि वह आज की स्थिति में अव्यवहार्य हो, तो न्यूनतम शासनयुक्त समाज-व्यवस्था ही अपने सम्मुख रहती है। हम स्वायत्त स्वयंशासित सामाजिक एवं आर्थिक इकाईयों का विकास हो, ऐसी अपेक्षा करते हैं। उनकी सहायता करना और उनको एक दूसरे के अनुकूल बनाकर समाज समृद्ध करना, इतना ही शासन का कार्य रहना चाहिये।

एकात्म एवं समविस्तृत संघ

''अत: जिन विभिन्न जन-संगठनों में स्वयंसेवक कार्य कर रहे हैं, वे संगठन किसी राजनीतिक दल के समर्थक या किसी दल की अग्रिम पंक्ति न बनें। जहां तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संबंध है, वह न स्वयं किसी दल का मोर्चा है और न किसी क्षेत्र में उसने अपने मोर्चे बनाये हैं। मोर्चे का प्रश्न ही निर्माण नहीं होता। उसका कारण भी स्पष्ट है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने संपूर्ण समाज से एकात्म है और परिकल्पना की दृष्टि से संपूर्ण समाज से समविस्तृत (को-टर्मिनस) है। ''विंग शब्द का उपयोग करना हो तो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत स्वयंसेवक ही संघ की ''विंग्ज़'' हैं, ऐसा कह सकेंगे। अन्यथा स्वयंसेवकों द्वारा संचालित, प्रभावित अन्यान्य जन-संगठन और संघ में पारस्परिक कोई भी संस्था-संचालन के या संवैधानिक संबंध नहीं हैं।

काम ही समाज-भगवान की पूजा है

''अनेकविध क्षेत्रों मे कार्य करते समय आनेवाली मजबूरियों की श्री गुरुजी कदर तो करते थे, परन्तु बोलते या लिखते समय वे शब्दावली की रचना बहुत सावधानी से करते थे। गलत शब्दावली के कारण सुनने वालों या पढ़ने वालों में शब्दों के गलत सहचारी भाव एवं विचार उत्पन्न

होंगे और परिणामत: गलत आदर्श और आकांक्षाएं जागृत होंगी, इसको वे जानते थे। उदाहरणस्वरूप कहना हो तो भारतीय मजदूर संघ की प्रत्येक व्यक्ति के काम करने के अधिकार की मांग उनको पसंद नहीं थी। काम कर राष्ट्र की सर्वांगीण समृद्धि में सहयोग करना प्रत्येक व्यक्ति का पवित्र कर्तव्य है। अपनी स्वाभाविक अभिरुचि एवं क्षमता के अनुकूल प्रत्येक नागरिक को काम करने का सुअवसर प्राप्त हो, ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक संरचना विकसित करना नेतृत्व करने वालों का दायित्व है। इस संरचना की आदर्श अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का अपनी-अपनी अभिवृत्ति के अनुरूप योगदान और राष्ट्रजीवन की सब आवश्यकताओं की पूर्ति, इनका सुसंवादी मेल बैठ सकेगा। ''काम ही समाज-भगवान की पूजा है'', यह संकल्पना ''काम की गरिमा'' के पाश्चात्य विचारों की तुलना में बहुत अधिक उदात्त है। परन्तु ''काम करने का अधिकार'' शब्दावली के अभिप्रेत अर्थ गलत होंगे। इसी कारण काम करने का अधिकार, यह शब्दावली श्री गुरुजी पसंद नहीं करते थे। वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था के विकास का अनुरोध करते थे, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वाभाविक अभिवृत्ति के अनुरूप काम की उपलब्धि के बारे में आश्वस्त रहे।

अधिकतम उत्पादन के समर्थक

''श्री गुरुजी अधिकतम उत्पादन के समर्थक थे। परिणामत: वे विवेकशून्य कामबंदी के अनुकूल नहीं थे। आजकल की परिस्थिति में आवश्यकतानुरूप श्रमजीविकों की हड़ताल की ज़रूरत वे अनुभव करते थे। श्रमजीवी लोग उत्पादनवृद्धि में अपना दायित्व समझें, ऐसा वे चाहते थे। परंतु इस हेतु मालिक (एम्पलायर) भी सहानुभूतिपूर्ण दायित्व की भूमिका ग्रहण करें, यह आवश्यक है। हड़ताल पर पूर्णरूपेण पाबंदी लगाने का शासनाधिकार उन्हें मंज़ूर नहीं था। उनको लगता था कि इस अधिकार के कारण शासन सत्तावादी बनेगा। अत: श्री गुरुजी ऐसे समझौते की व्यवस्था का विकास चाहते थे, जिसमें कलह हल करने हेतु हड़ताल करने के अधिकार की व्यर्थता-अनावश्यकता ही सिद्ध हो। हड़ताल पर संपूर्ण पाबंदी लगाने का प्रस्ताव, लोकतंत्रप्रणीत श्रमिक संगठनों की कार्यवाही में शासन का अनुचित हस्तक्षेप है, ऐसा वे मानते थे।''[1]

१. स्मृति पारिजातऋ भारतीय विचार साधना, नागपुरऋ पृष्ठ २८७-९३.

सम्पत्ति के विषय में संघ की भूमिका

एक अन्य संस्मरण में श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी लिखते हैं, ''श्री गुरुजी हमेशा अपने भाषणों में समाजवाद और साम्यवाद का जमकर विरोध करते थे। इस कारण वाममार्गियों को लगता था कि श्री गुरुजी पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक हैं, पर वास्तव में वे पूँजीवाद के भी समर्थक नहीं थे, क्योंकि समाजवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद इन तीनों का जन्म भौतिकवाद से हुआ है, एक बार सम्पत्ति के विषय में संघ की भूमिका स्पष्ट करते हुए मैंने श्री हीरेन बाबू* को श्रीमद्भागवत का (7.14.8) यह श्लोक सुनाया -

'यावद् भ्रियेत जठरं, तावत् स्वत्त्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत, स स्तेनो दण्डमर्हति।।'

अर्थात् अपने शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन करना है, उतनी ही संपत्ति लेने व संग्रह करने का अधिकार उस व्यक्ति को है, अधिक की इच्छा रखने वाला चोर होता है, अत: वह दंडनीय है। ये सुनते ही हीरेन जी ने मुझसे पूछा, 'क्या ये तुम्हारे गुरुजी का कहना है?' मैने कहा- 'हाँ, उन्होंने ही हमें यह कहा है।' इस पर हीरेन बाबू ने कहा- 'क्षमा करना, मेरे मन में आपके गुरुजी के प्रति जो धारणा थी, उससे यह विचार मेल नहीं खाता है। उनके विषय में अभी तक हमारे मन में जो दुर्भावना थी, उसमें सुधार करना होगा। उसे बदलना होगा।''[1]

प्रत्येक प्रांत स्वयं पूर्ण होकर देश को स्वयं पूर्ण बनाए

महाराष्ट्र के साहित्यकार प्रा. अनन्त काणेकर ने श्री गुरुजी के बारे में एक संस्मरण में लिखा है, ''श्री गुरुजी केवल सामाजिक समस्याओं का ही चिन्तन नहीं करते थे, आर्थिक समस्याओं का उनका चिंतन उतना ही अभ्यासपूर्ण होता था।

''श्री गुरुजी के विषय में मेरे मन में कभी कोई गलतफहमी नहीं थी। उनसे मिलने की मेरी इच्छा थी। यह इच्छा एक बार पूर्ण भी हुई। 'नवयुग मैंशन' में श्री फड़के के निवास स्थान पर हमारी दो घण्टे तक बातचीत हुई।

''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अनेक आरोप लगाये जाते हैं किंतु मुझे उनसे कुछ लेना-देना नहीं क्योंकि संस्था, कोई भी हो, दल कोई भी

* साम्यवादी नेता

1. अविस्मरणीय श्री गुरुजी; श्री कौशलेन्द्र; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ 156&57-

हो, उस पर आरोप-प्रत्यारोप होते ही रहते हैं। श्री गुरुजी से मेरी बातचीत आर्थिक समस्याओं पर हुई। अनाज की ज़िलाबंदी, प्रांतबंदी को लेकर उन्होंने कहा, 'प्रत्येक प्रांत स्वयंपूर्ण होकर देश को स्वयंपूर्ण बनाये। यदि सभी प्रांत सोचने लगे कि पंजाब से अनाज नहीं आयेगा तो काम कैसे चलेगा?'

''मैं समाजवादी, कुछ वामपंथी, फिर भी श्री गुरुजी ने आर्थिक विषय पर जो विचार व्यक्त किए, उनसे मेरा कहीं कोई मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ।

''श्री गुरुजी का राष्ट्रसमर्पित जीवन था। उन्होंने केवल हिन्दुत्व का ही विचार नहीं किया। मुसलमान नहीं चाहियें, यह उनकी भावना कदापि नहीं थी, किंतु उनका यह आग्रह अवश्य ही था कि मुसलमान राष्ट्रीय प्रवाह से समरस हों।''[1]

सर्वाधिक अनुकूल औद्योगिक स्वरूप

'उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा सर्वाधिक अनुकूल औद्योगिक स्वरूप' नामक विषय पर, सितम्बर-अक्तूबर 1949 में विभिन्न स्थानों पर पत्रकारों से वार्ता करते हुए श्री गुरुजी कहते हैं, ''उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है राज्य का पूँजीवाद, जो उतना ही अच्छा या बुरा है जितना पूंजीवाद। मैं ऐसी सहकारी औद्योगिक व्यवस्था की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा हूँ जिसमें सहकारी समिति का ही नहीं, समाज का भी प्रत्येक सदस्य कामचोरी की अपेक्षा दायित्व एवं कर्तव्य को अधिक महत्व देगा। भारतीय संस्कृति समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व तथा कर्तव्यों पर बल देती है। मै चाहूंगा कि स्वतंत्र भारत इस भावना से पुनः आप्लावित हो।

''पूरे देश में लघु उद्योगों एवं गृह उद्योगों का जाल फैलाना होगा। वे बड़े औद्योगिक केन्द्रों का पोषण करें, जैसा कि जापान का परिदृश्य है। उदाहरणार्थ - साईकिल उद्योग का प्रत्येक पुर्ज़ा अलग-अलग जगह बनकर साईकिल एक स्थान पर बनाई जा सकती है। केवल सुरक्षा आदि से संबंधित कुछ उद्योग ही विशाल स्तर पर लगाने चाहियें। इस दृष्टिकोण द्वारा कृषि व अन्य उद्योगों का सामंजस्य पूर्ण विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे ग्रामीण व शहरी जीवन के मध्य बढ़ती जा रही असमानता समाप्त करने में भी सहायता मिलेगी।''[2]

1. अविस्मरणीय श्री गुरुजी; श्री कौशलेन्द्र; लोकहित प्रकाशन, लखनऊ; पृष्ठ 169&170-
2. Spotlights; M.S. Golwalkar; Sahitya Sindhu, Bangalore; p.p.6-7.

अधिकतम लोगों को रोजगार

श्री गुरुजी के विचार संकलन 'आर्थिक समस्याओं का समाधान' में कहा गया है, ''इन दिनों औद्योगिकीकरण किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मापदण्ड बन जाने के कारण विश्व संघर्ष तथा युद्ध की ओर बढ़ता जा रहा है। अतिरिक्त उत्पादन की खपत अन्य देशों में करने की होड़ से एक सीमा के बाद बाज़ार के लिए संघर्ष जन्म लेने लगता है, जिसकी परिणति युद्ध में होती है।

''दूसरी बात, लोग बेरोज़गार बना दिए जाते हैं। यह नहीं होना चाहिए। आवश्यकताओं को पैदा करते जाने वाला पश्चिमी सिद्धांत तथा उसकी पूर्ति के लिए अधिक मशीनों की आवश्यकता के इस चक्र का परिणाम मनुष्य के सुख के लिए है। यह भस्मासुर की भांति है, यदि इस पर नियंत्रण नही किया जाए तो यह अपने निर्माता का ही विनाश कर देगा, नैतिक शक्ति से सम्पन्न बुद्धिमान लोग ही ऐसे भस्मासुर को नियंत्रित व निर्देशित कर सकते हैं।

''आर्थिक, औद्योगिकीकरण एवं मशीनीकरण संबंधी नीतियों का निर्धारण अधिकतम लोगों को रोज़गार देने के आधार पर होना चाहिए, ताकि लोगो में मुद्रा वितरण होता रहे। एक नवनिर्मित बाँध का उदाहरण सामने है, जिसके निर्माण के समय खुदाई व समतलीकरण के लिए विदेशों से करोड़ों रुपये की मशीनों का आयात किया गया। संबंधित अभियंताओं से भेंट होने पर मैंने मशीनी उपयोग का कारण पूछा। मैंने यह भी पूछा कि क्या वह सस्ता पड़ा? उन्होंने बताया कि शारीरिक श्रम करने पर भी इतना ही व्यय होना था। हजारों श्रमिकों की मज़दूरी भी इतनी होती जितनी कि मशीनों की कीमत। ऐसी दोषपूर्ण नीति के परिणामस्वरूप हमने एक ओर अपना धन विदेशों को भेजा और दूसरी ओर हज़ारों मज़दूरों को मज़दूरी से वंचित किया।

'''सभी योजनाएं व कार्यक्रम देश को निर्धनता के दुष्चक्र से निकालने में पूर्ण असफल हो रहे हैं। कुछ लोग नए आर्थिक जादुई करिश्मों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री गुरुजी आगे कहते हैं, ''युद्ध के बाद का जापान और पश्चिमी जर्मनी उस समग्र आर्थिक रूपांतरण के जादू के जीवंत प्रमाण हैं, जो वहां के नागरिकों के अनुशासित प्रयासों व राष्ट्रभक्ति के उत्साह का परिणाम है। आण्विक प्रलय की विभीषिका से ग्रस्त तथा वधशाला के रूप में परिणत जापान ने ऐसी चमत्कारिक प्रगति की है कि

आज अमेरिका भी बाज़ार में जापान के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ है। हर वह व्यक्ति इस बात का साक्षी है, जिसने जापान की यात्रा की है, कि यह प्रगति वहां के छोटे से छोटे मज़दूर की उत्कट राष्ट्रभक्ति का परिणाम है। प्रत्येक जापानी के हृदय की धड़कन से एक ही आवाज़ आती है- देश पहले।

''जर्मनी को भी युद्ध के कारण अपने उद्योगों का लगभग ऐसा ही विनाश सहन करना पड़ा है। इसके साथ ही उसकी श्रेष्ठ युवा शक्ति का विलोप भी हुआ। इस पर युद्ध ऋण के भुगतान हेतु विजेता देशों की सेनाओं को अपनी भूमि पर रखने और उनका व्यय भार उठाने को बाध्य होना पड़ा। इन संकटों व अग्निपरीक्षाओं के साथ ही उनको विभाजन की विभीषिका भी झेलनी पड़ी। इन सबके पश्चात् भी जर्मनीवासियों ने साहस नहीं खोया। पश्चिमी जर्मनी अक्षरश: अपनी भस्म से ही नवजीवन तथा उत्साह के साथ ही पुन: उठ खड़ा हुआ है और आधुनिक राष्ट्रों से स्पर्धा कर रहा है। इस चमत्कारी प्रगति का रहस्य भी उसके नागरिकों की राष्ट्रभक्ति में निहित है। श्रमिक तथा वैज्ञानिक व अध्यापक, व्यापारी व कृषक सभी ने अपने राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति एवं सम्पन्नता के लिए बड़े से बड़े त्याग और बलिदान किए हैं। यही वे तथ्य हैं, जिनके आधार पर इन देशों ने अपनी भूमि से गरीबी और भुखमरी का उन्मूलन किया है न कि केवल नारे लगाकर अथवा अपनी भीमकाय योजनाओं की दुंदुभि बजाकर। प्रत्येक राष्ट्र को एकमेव यही मार्ग अपनाना होगा। राष्ट्रीय प्रगति एवं समृद्धि के मार्ग पर आसान पगडंडियां नहीं हुआ करतीं।''[1]

जनसंख्या-समस्या का समाधान

जून 1958 में 'आर्गेनाइज़र' के सम्पादक से भेंट वार्ता में जनसंख्या-समस्या के समाधान के बारे में श्री गुरुजी कहते हैं, ''नहीं, केवल आर्थिक अभाव के कारण किसी को सीमित परिवार रखने के लिए बाध्य किया जाना समाज पर आक्षेप होगा। इसका निदान परिवार सीमित करने में नहीं, बल्कि पर्याप्त काम देना है। असाध्य रोगी की नसबंदी उचित हो सकती है,परंतु गरीब व्यक्ति की नहीं। 'कृपावध' कहकर भी इसका बचाव नहीं किया जा सकता। निर्धन होना कोई अपराध तो नहीं है।

''इसमें एक अन्य आपत्ति भी है। यदि एक बार परिवार नियोजन

१. विचार नवनीतऋ पृष्ठ ४६६-५००.

को प्रोत्साहन दिया गया तो, निर्धनों की अपेक्षा सम्पन्न लोग ही इसे अधिक अपनाने लगेंगे। शिक्षित व सम्पन्न लोग इन चीज़ों को अधिक समझते और अपनाते हैं। निर्धन तो न इसे समझते हैं और न ही अपनाते हैं। वे इससे आशंकित रहते हैं। परिणामस्वरूप परिवार नियोजन के प्रचार से शिक्षित वर्ग की संख्या कम होती है और कुल मिलाकर इससे जनसंख्या की गुणवत्ता ही गिरती है।''[1]

ग्रामों की आत्मनिर्भरता

सन् 1952 की दीपावली से पूर्व 4 दिवसीय वर्ग में एकत्र आए शिवणे ग्राम के ग्रामीणों ने पुणे के लगभग 150 स्वयंसेवकों के साथ मिलकर 1200 फुट लम्बा एक रास्ता तैयार किया था। गांव की एकता से बने इस कार्य को देखने के लिए श्री गुरुजी विशेष रूप से शिवणे आए थे। इस अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने कहा, ''ग्रामीणों ने अपने परिश्रम और स्वावलम्बन से, गांव की एकता की सच्ची भावना से यहां रास्ता बना कर एक कदम आगे बढ़ाया है। विदेशों से आने वाली सहायता अथवा यन्त्रों पर निर्भर रह कर हम अपने देश का विकास कर सकते हैं क्या? अपने साधुसंतों की सीख है- 'भिक्षापात्र अवलंबिणे, जलो जिणे लाजिरवाणे' (भिक्षा पात्र का अवलम्बन, भस्म हो ऐसा लज्जाजनक जीवन)। गांव के ही लोग स्वयं के पैरों पर खड़े हों और अपने गांव की उन्नति के लिए यत्न करें, यही श्रेष्ठ है।''[2]

•••

१. आर्गेनाइज़रऋ १६.६.१६५८ऋ पृष्ठ-५.

२. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-३ऋ पृष्ठ-६०.

11. सन्ध्या-समय एवं सूर्यास्त

श्री हो.वे. शेषाद्रि जी अपने एक संस्मरण में श्री गुरुजी के बारे में बताते हैं, ''प.पू. श्रीगुरुजी सन् 1960 में सिरसी (कर्नाटक) में विश्राम हेतु आए। श्री श्रीनिवास प्रभु नामक आयुर्वेदिक पंडित ने जिनकी योगाभ्यास में भी प्रामाणिकता थी, उनका परीक्षण करके बताया कि -

1. श्री गुरुजी के शरीर में Nervous Shock लगा है।
2. कुम्भक करते समय दोष रह जाने के कारण- उन्हें शरीर का दर्द रहता है।
3. श्री गुरुजी की शारीरिक स्थिति के कारण उनकी खाद्य-आवश्यकता बहुत ही कम है।
4. छाती पर रेखा खींच कर श्री प्रभु जी ने भावी कर्क रोग का भी संकेत किया।

बाद में श्री गुरुजी ने बताया कि अपने सभी दांत एक साथ निकलवाने से उन्हें Nervous Shock लगा होगा। प्राणायाम करने पर कुम्भक में भी दोष रहा है। उन्होंने कहा कि रोग का पहली बार ठीक निदान हुआ है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि वैद्याचार्य के पास उपयुक्त दवाई उपलब्ध नहीं हो पाई।''[1]

विदेही धारणा

श्री गुरुजी कई बार कहते थे कि शरीर अपने कार्य का साधन मात्र है। इसके अनुसार वे अपने शरीर से कड़े परिश्रम करवा लेते थे। इस साधन को तन्दुरुस्त रखने की सावधानी वे रखते थे, किन्तु न उसके मिज़ाज़ का ख्याल करते, न उसकी भुनभुनाहट पर ध्यान देते। परिणाम यह निकलता कि अस्वस्थ होने पर भी श्री गुरुजी की वह पीड़ा प्राय: किसी के ध्यान में नहीं आ पाती थी। शारीरिक व्याधि से उनका मन बिल्कुल अलिप्त रहा करता था। 'विदेही धारणा' यही तो है! उसे शब्दों में बांधना सम्भव नहीं है, किसी प्रसंग द्वारा ही उसे स्पष्ट कराया जा सकता है।

बैतूल के कारावास (सन 1949) से श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में सतत दर्द रहा करता था। अनेक उपायों के बावजूद वह थोड़ा भी कम न हुआ। अन्तत: वैद्यों की सलाह पर चाँदी की शलाका से दागने का इलाज

१. श्री हो.वे. शेषाद्रि जी से साक्षात्कार के आधार परऋ दिनांक ३ नवम्बर, २००३.

करना निश्चित हुआ। यह उपाय था कुछ कठोर ही, किन्तु गुणकारी था। उसके लिए एक दिन निश्चित किया गया। यह घटना होगी सन 1952 की। प्रवास एवं विविध कार्यक्रमों से कुछ समय निकाल कर श्री गुरुजी पुणे आए और उस तप्त-शलाका-प्रयोग के लिए प्रस्तुत हो गये।

श्री गुरुजी के कन्धों को जब तप्त-शलाका से दागना शुरू हुआ, तब हर समय चमड़ी के जलने की चर्रर्र आवाज़ से देखने वालों का दिल ही दहल उठता। चमड़ी झुलसती। उसकी गन्ध से रोंगटे खड़े हो जाते, किन्तु इस अग्निदिव्य में श्री गुरुजी पूर्णरूप से शान्त और प्रसन्न थे। उनकी बातों से व्यंग के फुहारे छूट रहे थे। उस दागने की ओर किसी का ध्यान न जाए, इसीलिए मानो श्री गुरुजी ने हास्य-विनोद का भण्डार ही खोल रखा था। एक-दो नहीं, बत्तीस बार शलाका-कर्म करने के पश्चात् वह दिव्य प्रयोग समाप्त हुआ।[1]

सन 1969 के अगस्त मास में श्री अमिताभ महाराज की श्री गुरुजी से इन्दौर में भेंट होने पर दोनों गले मिले। श्री गुरुजी की जेब का फाउन्टेन पेन उनके सीने में गड़ गया। कुछ पीड़ा की अनुभूति हुई तथा श्री गुरुजी के मुख से 'हा' की आवाज़ निकली। बातचीत के पश्चात् जब अमिताभ महाराज लौट गए तो भी वेदना बनी रही। ध्यान में आया कि सीने पर एक गांठ बन रही है। उपचार और प्रवास दोनों साथ-साथ चलते रहे। संघ शिक्षा वर्ग के प्रवास में दि. 2 मई 1970 को श्री गुरुजी पुणे पहुंचे। उसी दिन वहां डा. नामजोशी ने उनकी वैद्यकीय परीक्षा के बाद सुझाव दिया कि मुम्बई में आधुनिक उपकरणों से परीक्षा करा लेनी चाहिए। इस दृष्टि से नियोजित प्रवास क्रम के अनुसार श्री गुरुजी दि. 18 मई, 1970 को मुम्बई पहुंचे। शरीर की सम्पूर्ण परीक्षा के बाद कर्क रोग (कैंसर) की पुष्टि हुई। पू. श्री गुरुजी ने कहा कि संघ शिक्षा वर्ग का निश्चित प्रवास पूर्ण होने के बाद ही आगे की कार्यवाही हो। अत: संघ शिक्षा वर्ग के प्रवास के पश्चात् दि. 1 जुलाई का दिन शल्यक्रिया के लिए निर्धारित किया गया।

मेरे एक उल्लेखनीय रोगी

मुम्बई 'टाटा मैमोरियल हास्पिटल' के विख्यात कर्करोग विशेषज्ञ डा. प्रफुल्ल देसाई अपने आलेख में लिखते हैं, ''आज की तारीख के ठीक

१. आरती आलोक कीऋ हरि विनायक दात्येऋ ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुरऋ द्वितीय संस्करण १९८४ऋ पृष्ठ २७२-७३.

तीन वर्ष पूर्व एक रात जब तूफानी वर्षा हो रही थी, मेरे एक व्यावसायिक सहकर्मी ने मुझसे सम्पर्क कर जानना चाहा कि क्या मैं गुरुजी गोलवलकर से उनको कष्ट दे रही स्वास्थ्य सम्बन्धी एक समस्या के सन्दर्भ में मिल सकता हूँ?

''दूसरे दिन प्रातः मैं कार में बैठा उन्हें देखने के लिए जा रहा था। मेरे मस्तिष्क में विचार उतनी ही गति से दौड़ रहे थे जितनी गति से कार। मैं सदा गोलवलकर जी के विषय में सुनता और पढ़ता रहता था। हम जानते थे कि वे अपने विचारों के बड़े पक्के हैं और हिन्दुत्व और हिन्दू राज्य के सम्बन्ध में उनकी धारणाएँ कट्टर अपरिवर्तनीय हैं। (अन्तिम मुद्दे पर मैं कितना गलत सोचता था!) इन्हीं सब कारणों से मैं उनसे मिलने के लिए बड़ा उत्सुक था। मेरी धारणा थी कि चिकित्सकीय मामलों में रोग की गम्भीरता को समझाने की दृष्टि से मेरा एक कठिन व्यक्तित्व से पाला पड़ने जा रहा है।

''उनके कृश और कोमल शरीर को देखने के बाद मुझे लगा कि अब तक उनके बारे में मैं जो कुछ जानता, सुनता या समझता था उससे वे बिल्कुल विपरीत हैं। उनसे हुई अपनी पहली भेंट में ही मुझे विश्वास हो गया कि मैं एक अत्यन्त वेधक दृष्टिवाले जिज्ञासु व्यक्ति से मिल रहा हूँ जिनके व्यक्तित्व में एक स्वाभाविक लचीलापन है। किसी भी विषय पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने के लिए वे सदैव अपना द्वार खुला रखते हैं। उनके साथ अपने प्रथम वार्तालाप में ही मैने उनको अच्छी तरह जान लिया था।

''30 जून 1970 को गुरुजी अस्पताल में भर्ती हुए तथा 1 जुलाई 1970 को शल्यक्रिया हुई जो सफल रही।

देदीप्यमान गुणावली

''इस प्राथमिक घटनाक्रम में ही उनकी अनेक उज्ज्वल विशेषताएँ परिलक्षित हुईं जैसे उनका गहरा ज्ञान और विज्ञान सम्मत निर्देशों का अनुपालन करने की सिद्धता, अपने स्वास्थ्य से सम्बन्धित उनके कतिपय किन्तु तथ्यवेधक प्रश्न जो उनकी जिज्ञासु मेधा का परिचय कराते थे, विपरीत परिस्थितियों का साहस, शान्ति और दूरदर्शिता से सामना करने की क्षमता और अंगीकृत कार्य के प्रति निष्ठा और उसके समुचित निर्वाह की तत्परता। मुझे लगा कि जिस एक तर्क ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया, वह

था मेरे द्वारा यह कहा जाना कि 'आपको शल्यक्रिया करवा ही लेनी चाहिए जिससे आप अपने स्वीकृत कार्य में पुनः जुट सकें।' इसके बाद और कोई बहस नहीं हुई।

''ऐसी बड़ी शल्यक्रिया को उन जैसे 65 वर्षीय वयोवृद्ध ने आश्चर्यजनक रीति से सहन कर लिया। दूसरे दिन तो वे उठकर चलने भी लगे। अस्पताल में उनके तीन सप्ताह के वास्तव्य में मुझे उनके मन-मस्तिष्क का अध्ययन करने का पर्याप्त अवसर मिला। उनके साथ हुए कुछ वार्तालापों से मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति को बहुत कुछ सीखने को मिला।

''वे अपने रोग के फैलाव के बारे में पूरी सच्चाई जानना चाहते थे और यह भी कि उनके लिए कितनी आशा बची है। इस पर मैंने स्थिति की यथावत् जानकारी देते हुए जब उन्हें बताया कि उनके लिए कितना समय बचा है तो उनकी प्रतिक्रिया थी- ''वाह! अति उत्तम! पर्याप्त लम्बा समय है और मेरे पास निपटाने के लिए अभी बहुत से कार्य शेष हैं।'' उन्होंने एक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए डॉक्टरी अनुमति माँगी। उस समय तक शल्यक्रिया होकर केवल सात दिन ही हुए थे। मैंने कहा कि ''मैं आपको एक ही शर्त पर अनुमति दूँगा कि आप अस्पताल से गायब न हो जायें।'' अपनी सहज विनोदबुद्धि से उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया -''क्या मैं आपको डाकू लगता हूँ?'' अस्पताल में वे जब तक रहे तब तक वातावरण हास्य, विनोद और आनन्द से परिपूर्ण रहा।

राजनैतिक दर्शनकार

''ऐसा कोई विशेषण, जो उनके व्यक्तित्व को पूरी तहर अभिव्यक्त कर सके, खोज पाना अत्यन्त कठिन है। वे एक राजनैतिक दर्शनकार, प्रगाढ़ अध्येता और मनुष्यों, घटनाओं व विषयों के सम्बन्ध में जानकारी देनेवाले चलते-फिरते ज्ञानकोष थे। उनके विचारों में विज्ञान, धर्म और संस्कृति का एक सुन्दर सम्मिश्रण था। उन्होंने एक बार मुझसे कहा कि 'विज्ञान के विकास पर ही मानव की प्रगति निर्भर है।' एक गहरी धार्मिक निष्ठावाले व्यक्ति के मुँह से यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। वे उन लोगों में से नहीं थे जो अपना दर्शन और अपने विचार दूसरों पर थोपते हैं। किन्तु जो कुछ वे कहते थे या जिस पर चर्चा करते थे उस पर पूरी निष्ठा रखते थे। उनका यह कथन है कि 'जिसको मैं सही समझता हूँ उस पर पूरी तरह दृढ़ रहता हूं,' उनकी आन्तरिक शक्ति और साहस का परिचायक है और यह भी

बताता है कि उनका अनुयायी वर्ग इतना विशाल क्यों है।

''तत्पश्चात दो वर्षों तक मैंने उनको अत्यन्त सक्रिय व स्वस्थ देखा। मेरी अपेक्षा से कहीं अधिक वे सक्रिय थे। पहली शल्यक्रिया के बाद ही रोग के विस्तार को देखकर मैं होनी के बारे में आशंकित था। वे एक आदर्श रोगी थे जो चिकित्सक को सब प्रकार का सहयोग देते थे। जब कभी वे मुम्बई आते थे तो अनुवर्ती जाँच व निष्कर्ष के लिए मिलने आया करते थे। ऐसी ही एक नियमित यात्रा में मैंने उनसे पूछा, ''हमारे तरुण का क्या हालचाल है?'' उत्तर था, ''और अधिक तरुण बन रहा है।''

''काल तो किसी को छोड़ता नहीं, सो वह गुरुजी के पीछे भी लगा। इसी वर्ष फरवरी या मार्च से वे पुनः अस्वस्थता का अनुभव करने लगे। यद्यपि वे अपने कार्य में सक्रिय रहे परन्तु काल की काली परछाइयाँ उनको घेरने लगी थीं। अप्रैल 1973 में उनका जो एक्स-रे लिया गया उसमें अनिष्टसूचक चिन्ह दिखायी दिये। बाद की घटनाएँ तो इतनी ताज़ी है कि उनका प्रदीर्घ विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।''[1]

सूर्यास्त

शल्य चिकित्सा के उपरान्त रुग्णालय से विदाई लेते समय श्री गुरुजी ने डाक्टर देसाई से कहा था, ''मर्त्य मानव को चाहिए कि वह अपने स्वास्थ्य की अनावश्यक चिंता न करे। हर जीवित प्राणी कभी न कभी जाने ही वाला है। इसलिए मनुष्य कितने काल तक जीवित रहा, इससे भी अधिक महत्त्व इस बात का है कि उसने किस तरह जीवन व्यतीत किया। मेरे सामने एक कार्य है। मुझे इस कार्य को पूर्ण करना है, इस कारण मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे अन्त तक स्वस्थ रखे।''[2]

इसके पश्चात् श्री गुरुजी के जीवन का अंतिम पर्व प्रारम्भ हुआ। मृत्यु के कदमों की आहट सुनकर भी उन्होंने अपना क्षण-क्षण अपेक्षित कार्य-पूर्ति में ही व्यतीत किया। दि. 25.3.1973 को अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा में उनका 40 मिनट का 'विजय ही विजय' अन्तिम भाषण हुआ। उनका संदेश देने की एक-एक सांस पर भी उनको होने वाले प्रत्येक

१. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ चं.प.भिशीकरऋ लोकहित प्रकाशन, लखनऊऋ पृष्ठ ३२२-२६.
२. वहीऋ पृष्ठ-३२६.

कष्ट को देखकर सुनने वाले को लगता था कि वे अपना कथन बंद करें। परन्तु उनको मालूम था कि यही उनका अन्तिम संदेश होने वाला है। इसलिए वे बोलते रहे। दि. 2 अप्रैल को श्री गुरुजी ने स्वतः के हस्तलेख में तीन पत्र लिखकर उन्हें कार्यालय प्रमुख श्री पांडुरंगपंत क्षीरसागर को सौंप दिए। कार्य करने में अक्षम शरीर के प्रति श्री गुरुजी को कोई आसक्ति नहीं थी। दिनांक 4 जून तक मिलने आने वालों से वे बातचीत व विनोद करते रहे।

शूलों की शय्या पर इच्छा-मरण

श्री अटल बिहारी वाजपेयी अपने एक संस्मरण में लिखते हैं:-

¼5 जून 1973½

सवेरे का समय, चाय-पान का वक्त, पूजनीय श्री गुरुजी के कमरे में (उसे कोठरी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा) जब हम लोग प्रविष्ट हुए तब वे कुर्सी पर बैठे हुए थे। चरण स्पर्श के लिये हाथ बढ़ाये। सदैव की भांति पाँव पीछे खींच लिये। मेरे साथ आये हुए स्वयंसेवकों का परिचय हुआ। उनमें आदिलाबाद के एक डाक्टर थे। श्री गुरुजी विनोदवार्ता सुनाने लगे कि एक मरीज़ एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने पूछा - क्या कष्ट है? सारी कहानी सुनाओ।

मरीज़ बिगड़ गया और बोला-अगर मुझे ही अपना रोग बताना है तो फिर आप निदान क्या करेंगे? बिना बताये जो बीमारी समझे, ऐसा डाक्टर मुझे चाहिये। डाक्टर एक क्षण चुप रहे। फिर बोले - 'ठहरो, तुम्हारे लिये दूसरा डाक्टर बुलाता हूं।' जो डाक्टर आया, वह जानवरों का डाक्टर था। बिना कुछ कहे सब कुछ समझ लेता था।

कथा सुनकर हँसी का फव्वारा फूट पड़ा। रात्रि भर के जागरण की थकान पल भर में दूर हो गयी। श्री गुरुजी स्वयं हँसी में शामिल हो गये। फिर और एक किस्सा सुनाया, हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये।

इतने में चाय आ गयी। चाय सबको मिली या नहीं, इसकी चिन्ता श्री गुरुजी स्वयं कर रहे थे। कौन चाय नहीं पीता, किसको दूध की आवश्यकता है, इसका उन्हें बड़ा ध्यान रहता था। सबके बाद स्वयं चाय ली। कप में नाम मात्र की चाय थी। उन्होंने उसे और कम

करवाया। शायद हमारा साथ देने के लिये ही वे चाय-पान कर रहे थे। निगलने में बड़ा कष्ट था। साँस लेने में अत्यधिक पीड़ा थी।

किन्तु चेहरे पर थी वही मुक्त मोहिनी मुस्कान। हृदय-हृदय को हरने वाला हास्य। मुरझाये मन की कली-कली को खिलाने वाली खिलखिलाहट। निराशा, हताशा और दुराशा को दूर भगाने वाला दुर्दम्य आत्मविश्वास।

कमरे के किसी कोने में मौत खड़ी थी। शरीर छूट रहा था। एक-एक कर सभी बन्धन टूट रहे थे। महामुक्ति का मंगल मुहूर्त निकट था। एक क्षण के लिये मुझे लगा, शूलों की शय्या पर भीष्मपितामह मृत्यु की बाट जोह रहे हैं, इच्छा-मरण सुना भर था, आज आँखों से देख लिया।

सायंकाल उन्हें कुर्सी में ही बैठकर प्रार्थना करने के लिए कहा गया तथा रात्रि ukS बजकर ikap मिनट पर उन्होंने इहलोक यात्रा पूर्ण की।

अनन्त निद्रा में निमग्न

¼6 जून 1973½

हेडगेवार भवन। एक दिन में कितना अन्तर हो गया।कल सब शान्त था, आज शोक का निस्तब्ध चीत्कार हृदय को चीर रहा था। कल सब अपने काम में लगे थे, आज जैसे सब कुछ खोकर खाली हाथ खड़े थे। आँखों में पानी, हृदयों में हाहाकार, कभी न भरने वाला घाव, कभी न मिटने वाला दर्द।

पूजनीय श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर दर्शन के लिये कार्यालय के कमरे में रखा था। आज उन्होंने मुझे चरण स्पर्श करने से नहीं रोका। अपने पाँव पीछे नहीं हटाये। हार पहनने में विरोध नहीं किया। सिर पर प्रेम से हाथ नहीं फेरा। प्यार भरी मुस्कान से नहीं देखा। हाल-चाल नहीं पूछा। वे अनन्त निद्रा में निमग्न थे। हंस उड़ चुका था, काया के पिंजड़े को तोड़कर पूर्ण में विलीन हो चुका था।

गुरुजी नहीं रहे। उनका विराट व्यक्तित्व छोटी-सी काया में कब तक कैद रहता? जीवन भर तिल-तिल जलकर लाखों जीवनों को आलोकित-प्रकाशित करने वाला तेजपुंज मुट्ठी भर हाड़-मांस के शरीर में कब तक सीमित रहता?

लेकिन गुरुजी हमेशा रहेंगे, हमारे जीवन में, हृदयों में, कार्यों में। अग्नि उनके शरीर को निगल सकती है, हृदय-हृदय में उनके द्वारा प्रदीप्त प्रखर राष्ट्रप्रेम तथा निस्स्वार्थ समाजसेवा की चिनगारी को कोई नहीं बुझा सकता।[1]

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-१ऋ पृष्ठ ३६७-६८.

महाप्रयाण

श्री गुरुजी अब अपने बीच नहीं रहे, यह वार्ता तेज़ हवा की भांति नागपुर नगर में फैल गई। दि. 5 जून को रात्रि 9.30 बजे कार्यालय के बाहर भारी भीड़ इकट्ठी हुई। दि. 6 को डा. हेडगेवार भवन के अहाते में शोकाकुल, श्रद्धालु नागरिक, स्वयंसेवक हज़ारों की संख्या में उपस्थित थे। सभी मौन गम्भीर। श्री बालासाहब देवरस दोपहर को पहुंचे। श्री गुरुजी को देखते ही वे रुद्धकण्ठ हो उठे। पुष्पमाला अर्पण करते समय तो वे बेकाबू होकर रो पड़े। श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर पर पुष्पमालाओं का अम्बार लग गया। एक ओर गीता पाठ अखण्ड रूप से चल रहा था।

तीन पत्र

श्री गुरुजी द्वारा श्री पांडुरंगपन्त क्षीरसागर को दिये गये तीन पत्र सब के सम्मुख खोले गये। लिफाफे में बंद पत्रों में अंकित श्री गुरुजी का भावविश्व सभी को अंतर्मुख करता हुआ प्रगट होने लगा। वातावरण में नीरव शांति भरी हुई थी। एक पत्र में श्री गुरुजी ने संघ के सरसंघचालक के नाते नेतृत्व का भार श्री बालासाहब देवरस के कंधों पर सौंपा था। महाराष्ट्र प्रान्त संघचालक श्री बाबासाहब भिड़े ने यह पत्र दूर ध्वनिक्षेपक पर गंभीर आवाज़ में पढ़ा। अन्य दो पत्र स्वयं श्री बालासाहब देवरस ने पढ़कर सुनाए। एक पत्र में श्री गुरुजी ने आज्ञा दी थी कि उनका कोई स्मारक न बनाया जाए। दूसरे पत्र में श्री गुरुजी ने अत्यंत विनम्रता से भावभीने शब्दों में, दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की थी, जिसे सुनकर तो उपस्थित जनसमुदाय का हृदय विह्वल हो उठा। आँखों में आँसू भर गए। सहस्रों कंठों से सिसकियों की करुण ध्वनि निकल पड़ी।

अन्तिम संस्कार

अंत्ययात्रा रेशमबाग की ओर चलने लगी। 'राम धुन', 'भारत माता की जय', 'श्री गुरुजी अमर रहें'; इन धीर गंभीर घोषणाओं से आकाश गूँज उठा। श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर के पीछे अपार जनसागर उमड़ पड़ा था। सभी पैदल चल रहे थे, भारी कदमों से। श्री गुरुजी का पार्थिव देह वहन करनेवाला मात्र एक ट्रक ही इस महायात्रा में था। तीन लाख से अधिक लोग इस महापुरुष को विदाई देने इस महायात्रा में सम्मिलित हुए थे। सायं 5.45 बजे निकली यह महायात्रा 7.45 को रेशमबाग पहुँची।

संघ के प्रथम सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार के स्मृतिमंदिर के सम्मुख चंदन की चिता रची गई थी। श्री गुरुजी का पार्थिव शरीर चंदन की चिता पर रखा गया। पुणे के श्री वासुदेवराव गोलवलकर (श्री गुरुजी के चचेरे भाई) ने मंत्राग्नि दी। चंदन की चिता से ज्वालाएँ आकाश की ओर उठने लगीं। देखते ही देखते चंदन की भगवे रंग की लपटों ने श्री गुरुजी के पार्थिव शरीर को अपनी गोद में समेट लिया। निरंतर 33 वर्ष तक संघकार्य के लिए समर्पित एक दधीचि का देह साथ लेकर ज्वालाएँ दिव्यलोक में केशवधाम की ओर चल पड़ी। स्मृति मंदिर भी इन लपटों से आलोकित हो गया। डॉ. हेडगेवार जी की प्रतिमा की साक्षी से उनके चरणों के पास जलती अग्नि ज्वालाओं में एक समिधा बनकर श्री गुरुजी की आत्मा को निश्चित रूप से शांति मिली होगी।[1]

श्रद्धांजलियाँ

श्री गुरुजी के देहावसान के उपरान्त अपने देश के राजनैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के गणमान्य नेताओं एवं सभी भाषाओं और विचारों के दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने उन्हें अपनी भावभीनी श्रद्धांजलियाँ समर्पित कीं। प्रतीकात्मक प्रस्तुति निम्नांकित है-

संत को संतों की श्रद्धांजलि

श्रद्धावनत

मेरे हृदय में उनके लिए बड़ा आदर रहा है। उनका दृष्टिकोण व्यापक उदार और राष्ट्रीय था, वे हर चीज़ पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करते थे। उनका अध्यात्म में अटूट विश्वास था और सभी धर्मों के लिये उनके हृदय में आदर का भाव था। उनमें संकीर्णता लेश-मात्र भी नहीं थी। वे हमेशा उच्च राष्ट्रीय विचारों से कार्य करते थे।

श्री गोलवलकर को अध्यात्म से गहरा प्रेम था। वे इस्लाम मसीही आदि अन्य धर्मों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे और यह अपेक्षा करते थे कि भारत में कोई अलग न रह जाए।

-आचार्य विनोबा भावे

1. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजी; पृष्ठ 270&72-

तपस्वी संत

श्री गोलवलकर जी जीवन के अन्तिम क्षणों तक हिन्दू धर्म, हिंदू संस्कृति तथा राष्ट्र की सेवा के लिए अथक प्रयत्न करते रहे। वे सफेद कपड़ो में एक तपस्वी संत थे। **-स्वामी जयेन्द्र सरस्वती**

शंकराचार्य, कांची काम कोटि पीठ

महान गौ रक्षक

श्री गोलवलकर जी ने धर्म प्राण भारत से गोहत्या के कलंक को मिटाने के लिए सदैव आगे रहकर प्रयास किया। हिंदू संगठन के वे आकांक्षी थे तथा हमें उनके इस महान लक्ष्य की पूर्ति कर उनकी आकांक्षा को साकार रूप देना चाहिए। **-स्वामी निरंजन देव तीर्थ**

पुरी के जगदगुरु शंकराचार्य

हिन्दू समाज की अपूर्णीय क्षति

श्री गुरुजी के निधन से राष्ट्र व हिन्दू समाज की अपूर्णीय क्षति हुई है। श्री गोलवलकर जी से धार्मिक विषयों में मतभेद हो सकते थे किन्तु उनकी उत्कृष्ट राष्ट्र-भक्ति तथा समर्पित भाव से राष्ट्र और समाज-सेवा के क्षेत्र में किए गए कार्य प्रेरणादायक रहेंगे। **-स्वामी करपात्री**

भारतीय संस्कृति के महान पुजारी

श्री गोलवलकर जी के स्वर्गवास का समाचार, आकस्मिक सा लगा। उनमें सक्रियता, संगठन शक्ति और भारतीय संस्कृति का अनुराग था। वे समालोचक और गुणग्राही दोनों एक साथ थे। वे राष्ट्रीय चरित्र पर बहुत बल देते थे, इसीलिए उनसे हमारा सम्पर्क और अणुव्रत आंदोलन के प्रति उनका आकर्षण हुआ। **-जैन संत आचार्य तुलसी**

देश के नेताओं के श्रद्धासुमन

अपूर्व संगठक

श्री गोलवलकर अपने ढंग से अत्यन्त निष्ठापूर्वक आजीवन देश की सेवा करते रहे। वे धर्म में निष्ठा रखने वाले व्यक्ति थे और उनमें संगठन की अपूर्व क्षमता थीं। **-राष्ट्रपति श्री.वी.वी.गिरि**[1]

संसद के वर्षाकालीन सत्र के प्रथम दिन दिनांक 23 जुलाई 1973 को लोकसभा और राज्यसभा दोनों सदनों में परम पूजनीय श्रीगुरुजी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई-

१. चरैवेतिऋ श्रद्धांजलि अंक, १ जुलाई, १९७३ऋ कैलाश नाथ सारंगऋ मुकर्जी चौक, भोपालऋ पृष्ठ १२-१३.

लोकसभा अध्यक्ष श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लों-

'गुरुजी' नाम से विख्यात श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर की मृत्यु की दु:खद सूचना सदन में दी जा रही है। 67 वर्ष की आयु में वे 5 जून 1973 को नागपुर में स्वर्गवासी हुए। श्री गोलवलकर श्रेष्ठ संगठनक्षमता वाले नेता थे। अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता और अपने उद्देश्य के प्रति अथाह निष्ठा के बल पर वे जनजीवन में, विचारकों के बीच प्रमुख रूप से जाने-माने जाते थे। यद्यपि कई लोग ऐसे हो सकते हैं, जो उनकी विचारधारा और राजनीतिक दर्शन से मतभिन्नता रखते हों, फिर भी यह सत्य है, कि उन्होंने अपने तरीके से देश की सेवा में अथक प्रयत्न किये। उनके निधन से देश के सार्वजनिक क्षेत्र में गहरी क्षति हुई है।

राज्यसभा अध्यक्ष तथा उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक-

श्री एम.एस.गोलवलकर जी की मृत्यु की सूचना सदन में प्राप्त हुई है। श्री गोलवलकर जी का जन्म 1906 में हुआ। नागपुर में अध्ययन के बाद वे बनारस आये और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। बाद में कुछ काल उन्होंने रामकृष्ण मिशन-कार्य में भी सक्रिय सहयोग दिया। वे श्रेष्ठ संगठनक्षमता वाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र-सेवा में लगाया। वे गहरी धार्मिकता वाले व्यक्ति थे और हिन्दू-संस्कृति और सभ्यता में सुधार के लिये उन्होंने लवलीन होकर कार्य किया। हमारे राष्ट्रजीवन में आदरपूर्ण स्थान उन्होंने प्राप्त किया। उनके निधन से एक सम्माननीय व्यक्ति हमने खोया है।

प्रधानमंत्री और सदन की नेता श्रीमती गांधी-

जो सदन के सदस्य नहीं थे ऐसे एक अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री गोलवलकर जी भी नहीं रहे। वे विद्वान थे और शक्तिशाली आस्था वाले व्यक्ति थे। जैसा आपने कहा हममें से कई उनकी मूलगामी विचारधारा से सहमत नहीं थे परन्तु उन्होंने अपने अनुयायियों पर गहरा प्रभाव निर्माण किया था।[1]

आध्यात्मिक विभूति

श्री गुरुजी आध्यात्मिक विभूति थे। यह एक बड़ा बोध है कि हम भारतीय हैं, हमारी हज़ारों वर्ष पुरानी परम्परा है, भारत का निर्माण भारतीय आधार पर ही होगा। चाहे हम कितने ही ''माडर्न'' क्यों न हो जायें, हम

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-७ऋ पृष्ठ २५५-५६.

अमरीकी, फ्रेंच, इंगलिश, जर्मन, नहीं कहला सकते। हम भारतीय ही रहेंगे। यह ''बोध'' है राष्ट्रीयता का बोध, जिसे सहस्रों नवयुवकों में जगाया था पूज्य गुरुजी ने। मैं आशा करता हूं कि श्री बाला साहब देवरस पूज्य गुरुजी की परम्परा को निभाएंगे। **-जय प्रकाश नारायण**

(पटना की शोक सभा में व्यक्त उद्‌गार)

आधुनिक युग के विवेकानन्द

गुरुजी आधुनिक युग के स्वामी विवेकानन्द थे जो महान् व विशाल भारत के निर्माण के लिए दृढ़ संकल्प व निष्ठा के साथ प्रयत्नशील थे। देश के लाखों युवकों के लिए गुरुजी अटल देशभक्ति और नि:स्वार्थ त्याग के प्रेरणादायक प्रतीक थे। **- लालकृष्ण अडवाणी**

शिवाजी की शक्ति और रामदास की भक्ति के संगम

श्री गुरुजी के महान् व्यक्तित्व में समर्थ स्वामी रामदास की भक्ति तथा शिवाजी महाराज की शक्ति का अपूर्व संगम था। उनमें राम-कृष्ण की तपस्या और विवेकानन्द के तेज का समन्वय था। आत्मविस्मृत हिन्दू समाज को स्वत्व का साक्षात्कार कराके श्री गुरुजी ने उसे संगठित शक्तिशाली तथा आत्म विश्वास से परिपूर्ण बनाने के राष्ट्र कार्य के लिये अपने शरीर का कण-कण और जीवन का क्षण-क्षण समर्पित कर दिया। लाखों युवकों ने उनके तपस्वी तथा तेजस्वी जीवन से प्रेरणा लेकर अपना घर बार छोड़ा और समूचे भारत में प्रखर एवं विशुद्ध राष्ट्रवाद का अलख जगाया।

- अटल बिहारी वाजपेयी

राष्ट्रीय नेता

भारत ने सरसंघचालक श्री गोलवलकर की मृत्यु से एक ऐसा नेता खो दिया है जो संगठन की योग्यता रखता था तथा जिसमें राष्ट्रीय हित को लेकर कष्ट उठाने की क्षमता थी। **-रक्षा मन्त्री, जगजीवन राम**

राष्ट्र समर्पित जीवन

जब राष्ट्र को उनकी सबसे ज़्यादा आवश्यकता थी तब वे चल दिए। यह हमारा और देश का दुर्भाग्य है। राष्ट्र के लिए समर्पित उस महान् जीवन से हम देश के लिए पल-पल तिल-तिल जलने की प्रेरणा लें।

-राजमाता विजियाराजे सिंधिया
उपाध्यक्षा, जनसंघ

हिन्दुत्व निष्ठ शक्ति के मानबिंदु

भारत की हिन्दुत्वनिष्ठ शक्ति का मानबिन्दु चला गया है, हिन्दू राष्ट्र की इससे अपरिमित क्षति हुई है। **-श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर**

संचालिका, राष्ट्र सेविका समिति

आर्य जगत की क्षति

श्री गुरुजी आर्य समाज के सामाजिक उत्थान के कार्य के प्रबल समर्थक थे। आर्य समाज द्वारा संचालित ईसाई मिशनरी विरोधी गतिविधियों को उनकी पूरी सहानुभूति प्राप्त थी। उनके निधन से आर्य जगत की भारी क्षति हुई है। **-ओम प्रकाश त्यागी**

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

सिक्ख सम्प्रदाय की क्षति

श्री गुरुजी एक महापुरुष थे। उन जैसे व्यक्ति अमर होते हैं। श्री गुरुजी के देहावसान से सिक्ख सम्प्रदाय को भारी क्षति हुई है। उनके सामने खड़े होकर हिन्दू सिक्ख का भेद-भाव खत्म हो जाता था। **-संतोष सिंह**

जत्थेदार, अकाली दल

कुशल नायक

किसी जहाज़ के नायक की भांति श्री गोलवलकर जी संघ को अनेक संकटों में से कुशलतापूर्वक आगे बढ़ाते ही गये।

-बाल ठाकरे (शिव सेना)

उज्ज्वल भविष्य के द्रष्टा

यद्यपि मैंने श्री गुरुजी के कभी दर्शन नहीं किए तथापि देश के उज्ज्वल भविष्य के उनके आदर्श में विश्वास रखने वालों में गुरुजी की प्रेरणाशक्ति को मैंने अनुभव किया है। **-कामरेड तकी रहीम**

मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट पार्टी

धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षधर

वे वास्तव में महापुरुष थे। दूर से देखने वाले लोग उनके बारे में गलत धारणा बना लेते थे। वे साम्प्रदायिक नहीं थे, वे मुस्लिम विरोधी भी नहीं थे। मुस्लिम विरोध के नाम पर आज तक मुसलमानों को संघ के नाम पर बरगलाया जाता रहा है। श्री गुरुजी समान अधिकारों और धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। **-हाफीजुद्दीन कुरैशी, कांग्रेसी नेता, पटना**

श्रद्धावनत साहित्यकार

श्री गोलवलकर भारत के प्रभावशाली तथा प्रतिभावान सुपुत्रों में से थे। उनका व्यक्तित्व तथा वक्तव्य अनूठा था। उनके निधन से भारत एक रत्न से वंचित हो गया। **-जैनेद्रकुमार जैन**

मुझे इस समाचार से भारी आघात लगा है। इस अभाव की पूर्ति होना कठिन है। **-गुरुदत्त उपन्यासकार**

सम्पादकीय श्रद्धांजलियाँ

निष्ठावान कर्मयोगी

इस सामान्य विश्वास के विपरीत कि दीक्षा से व्यक्ति योगी बन जाता है, श्री गुरुजी को भी दीक्षा मिली। उसने उन्हें देश-सेवा में ही दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया, लेकिन योगाभ्यास या ध्यान लगाने या आध्यात्मिक साधना से विमुख नहीं किया। वास्तव में वे अध्यात्म के मार्ग पर तीव्र गति से बढ़ते रहे और इन वर्षों में उनका जैसा आचरण और व्यवहार रहा, उससे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने परमानंद की अनुभूति कर ली थी। किंतु इस अनुभूति में भी वे अपने उस मिशन के प्रति पूरा ध्यान देते रहे जिसके अंतर्गत वे लोगों को उन बातों का स्मरण कराते रहे जिन्हें लोग विस्मृत कर गये थे, और इसी प्रकार से इन लोगों को भारत की प्राचीन परम्परा से सम्बन्ध बनाने के लिये जागरूक करते रहे- इस सबसे यही सिद्ध होता है कि वे संन्यासी के रूप में एक निष्ठावान कर्मयोगी थे। उनका यह विश्वास था कि जन-मानस में इस सत्य के बीज के आरोपण से बढ़कर कोई कार्य नहीं कि वे सभी मिलकर एक राष्ट्र हैं ओर उनका राष्ट्र निर्माणावस्था में नहीं है बल्कि पहले से ही फल-फूल रहा है, और सबसे बढ़कर यह कि यह भूमि मात्र मिी या धूल नहीं है, बल्कि यह उन सबकी पवित्र माता है।

-नागपुर टाइम्स

विलक्षण नेता

श्री गोलवलकर में ऐसा कुछ ज़रूर था जो प्राचीन भारत के ऋषियों में ही मिलता है। उनकी लम्बी दाढ़ी, उनका संयमित व्यक्तिगत जीवन, उन मूल्यों के प्रति उनकी गहरी आस्था जिसका प्रतिनिधित्व हिन्दू समाज युगों-युगों से करता आया है- इन बातों के कारण भारत के सर्वाधिक

अनुशासित संगठनों में से एक राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ के विलक्षण नेता के रूप में उन्हें एक सबसे अलग और विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

-इण्डियन एक्सप्रैस

विलक्षण व्यक्तित्व

यदि व्यक्तित्व किसी आदमी के लिए वैसा ही है जैसे पुष्प के लिये सुरभि तो स्वर्गीय श्री गोलवलकर का व्यक्तित्व विलक्षण था। दिखने में वे दुबले पतले और कठोर संयम के प्रतीक लगते थे।

उन्हें अपनी इमेज बनाने के लिये रेडियो, फिल्म या प्रेस की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे आत्म प्रक्षेपण (सेल्फ प्रोजेक्शन) को अनावश्यक मान कर इसकी उपेक्षा कर सकते थे और इसके बावजूद अपने योग्य प्रतिष्ठा का स्थान बना सके थे। **-ट्रिब्यून**

संगठन की दुर्लभ क्षमता

गांधीजी की हत्या के उपरांत जो जन-रोष उमड़ा, उसके परिणाम स्वरूप यह (रा.स्व.संघ) बिल्कुल अस्तव्यस्त हो गया था। अगर (प्रतिबंध के शक्तिक्षय) कुछ वर्षों के बाद यह फिर से क्रियाशील हुआ तो यह केवल श्री गुरुजी के संगठन की दुर्लभ क्षमताओं के कारण ही।

पच्चासोत्तरी दशक में रा.स्व.संघ के विकास में श्री गोलवलकर की कठोर और संयम युक्त जीवन पद्धति का योगदान किसी भी रूप में कम नहीं था। **-टाइम्स आफ इण्डिया**

संघ के संगठन और सिद्धांत के दाता

श्री एम.एस. गोलवलकर का दिवंगत हो जाना रा.स्व.संघ के एक युग की समाप्ति का द्योतक है। 1940 में रा.स्व.संघ के संस्थापक डा. हेडगेवार द्वारा सरसंघचालक के रूप में नियुक्त होने के बाद श्री गोलवलकर ने इसको (रा.स्व.संघ) एक सिद्धांत और संगठन रूप प्रदान किया जो तत्कालीन परिस्थितियों का एक उत्तर हो सकता था। संघ राष्ट्रवाद के प्रति समर्पित होकर एक सुगठित और ज़बरदस्त (मिलिटेंट) सांस्कृतिक निकाय के रूप में विकसित हुआ। **-हिन्दुस्तान टाइम्स**

आदर्शों की साधना

विचार और आदर्शों से मतभेद रखनेवाले लोग भी स्व. गुरु

गोलवलकर जी के जीवन के तेजस्विता, त्याग और तपस्या को हार्दिक स्वीकृति देते हैं, गुणों का हमारे राष्ट्रीय जीवन से लोप हो रहा है, आदर्शों की व्यक्तिगत साधना आज के सतही विचारकों के हाथों उपहास का विषय बनाई जाती है, लेकिन यह एक ऐतिहासिक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी राष्ट्र का एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में तब तक निर्माण नहीं किया जा सकता, जब तक उसमें उन्हीं गुणों का समावेश नहीं होगा जिनका श्री गोलवलकर जी के जीवन में आविष्कार हुआ था, इन महान गुणों के सामने धर्मनिरपेक्षता और लौकिकतावादी चमक फीकी पड़ जाती है।

-नवभारत टाइम्स

सदैव स्मरणीय

गुरुजी शक्ति के उपासक तो थे ही, विवेकानन्द एवं शंकराचार्य भी भांति शक्ति और चरित्र के मंत्रदाता भी थे। पथ उनका अवश्य भिन्न था, किन्तु इतिहास पथ से व्यक्ति का मूल्यांकन नहीं करता है, पथ पर चलने की लगन और पौरुष-पुरुषार्थ के साथ अपराजित निष्ठा से निखरे चरित्ररूपी स्वर्ण को कसौटी पर चढ़ाकर करता है। व्यक्ति और व्यक्ति के क्षेत्र में गुरुजी प्रदीप्त स्वर्ण थे। अपनी पीढ़ी के विशिष्ट विभूतियों में वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। **-हिन्दुस्तान**

नेता गुरुजी का अनुसरण करें

उनका व्यक्तिगत जीवन सादगीपूर्ण था। संगठन क्षमता अद्वितीय थी। उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ था ही नहीं और अपने आदर्शों के पालन में उनके हृदय में कोई दुर्बलता नहीं थी। उनकी वाणी में कमज़ोरी नहीं थी। उनके माथे पर थकान की कोई झलक नहीं थी। अच्छा हो यदि राजनीतिक नेता उनके समर्पित जीवन के उदाहरण का अनुसरण करें। **-'ब्लिट्ज़'**

अंग्रेजी साप्ताहिक[1]

कार्यरत रहना ही सच्ची श्रद्धांजलि

श्री गुरुजी के देहावसान के तेरहवें दिन श्री बालासाहब देवरस अपने भाषण में कहते हैं, ''हम स्वयंसेवक अपने व्यवहार को निर्दोष बनाकर तथा अपने कर्मक्षेत्र में अपने कर्तव्य को प्रामाणिकता से पूर्ण करते हुए समाजजीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। जीवन में हम विभिन्न भूमिकाओं में काम करते हैं। जीवननिर्वाह के लिए कोई नौकरी करता है, पारिवारिक

१. चरैवतिऋ कैलाश ना. सारंग, भोपालऋ १.७.१९७३ऋ पृष्ठ १४-१९.

जीवन में पिता, भाई, पुत्र आदि संबंधों से बंधा रहता है। परिवार में तथा कर्मक्षेत्र में, नागरिक के नाते हम सबका व्यवहार आदर्श रहना चाहिए। दैनंदिन शाखा में जाने से अपनी संघ-शक्ति बढ़ेगी तथा अपने आचरण से समाज-जीवन में हम इष्ट परिवर्तन ला सकेंगे।

''बड़ा तूफान आने के बाद जो हानि होती है उसी प्रकार प.पू. श्री गुरुजी की मृत्यु से एक बहुत बड़ा आघात हुआ है। आज गुरुजी हमारे बीच नहीं हैं। उन्होंने जो मार्गदर्शन किया है उसके अनुसार चलने का हम दृढ़ संकल्प करेंगे तो ही उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि सच्ची होगी।''[1]

•••

१. श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड-७ऋ पृष्ठ-२६३.

12 बहती जीवन-भागीरथी

श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी 'आरती आलोक की' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते हैं, ''श्री गुरुजी का पूरा जीवन सबके लिए खुले ग्रन्थ के समान था। अपनी रुचि के अनुकूल या पचन के योग्य जितना हो पढ़ें और ग्रहण करें। हर एक की रुचि और पाचनशक्ति भिन्न-भिन्न ज़रूर होगी, परन्तु यह जीवनग्रन्थ सबके लिए पूर्णत: खुला ही था और हर एक को अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ के आकलन की स्वतन्त्रता थी। जैसे वृक्ष एक ही, सबको देखने की छूट, किन्तु दृश्य का स्वरूप भिन्न-भिन्न। आधी रात के अन्धेरे में, सन्धिप्रकाश में, मध्याह्न की कड़ी धूप में देखने वालों को खुली आंखों से, सादे चश्मे से, रंगीन गागल्स से या दूरबीन से देखने को - वस्तु एक, दर्शन भिन्न-भिन्न। परन्तु वस्तु का कोई हिस्सा किसी से छिपा या ढका हुआ नहीं था।

''फलत: प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति को यह विश्वास होता था कि श्री गुरुजी के समग्र दर्शन हुए हैं और उनकी अपनी-अपनी दृष्टि से ऐसा सोचना गलत भी न था।''[1]

अहोभाग्य

दिनांक 17 जून 1973 को श्री गुरुजी की तेरहवीं पर दिए गए श्रद्धांजलि भाषण में श्री बालासाहब देवरस कहते हैं, ''मेरा यह अहोभाग्य रहा कि मेरा संघ के दो महापुरुषों - संघ निर्माता डा. हेडगेवार जी तथा उनके पश्चात् अपने प.पू. श्री गुरुजी के साथ बड़ा निकट का सम्बन्ध रहा। प.पू. श्री गुरुजी के सरसंघचालक बनने से पूर्व, मेरे समान ही मेरे अन्य साथियों का, जो आज भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रमुख के नाते कार्य कर रहे हैं, उनके साथ सम्बन्ध आया था। परन्तु उनके सम्बन्ध में उस समय हमारी कोई निश्चित धारणा नहीं बन पायी थी। वैसे वे बुद्धिमान तथा बहुश्रुत हैं, यह हम लोगों ने सुना था तथा उन गुणों का हम अनुभव भी करते थे। परन्तु उन्होंने अपने भावी जीवन की दिशा निश्चित नहीं की थी। उनकी रुचि हमें आध्यात्मिकता की ओर दिखाई दी। तत्पश्चात् सन 1939 की सिन्दी बैठक में उनके निकट सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। उस बैठक में हम लोगों ने श्री गुरुजी की वाद-विवाद-पटुता, बुद्धिमत्ता तथा अभिनिवेश के साथ

1. आरती आलोक की; हरि विनायक दात्ये; ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुर; पृष्ठ-12-

स्वमत प्रतिपादन की विशेषताएं देखीं। साथ ही बैठक में एक निर्णय हो जाने पर उसे शिरोधार्य मानकर चलने की उनकी संघ-वृत्ति (टीम वर्क) का भी परिचय हुआ।

विनम्र उग्रता

''देश के विभाजन तथा प्रतिबन्ध के समय उनकी क्रमश: क्षमावृत्ति का अनुभव मैंने स्वयं किया है। नवम्बर 1947 से जनवरी 1948 तक मुझे प.पू. श्री गुरुजी के साथ दौरा करने का अवसर मिला था। विभाजन के कारण हिन्दुओं पर जो संकट आया था उसमें संघ के स्वयंसेवकों ने अपने बन्धुओं को बचाने में जो साहस प्रकट किया था, उसके कारण श्री गुरुजी जहां भी जाते, वहां लाखों लोग उनका भाषण सुनने के लिए एकत्रित हुआ करते। लाखों लोगों का सभाओं में आना, उनका श्रद्धा से नतमस्तक होना, देखकर दूसरा कोई व्यक्ति होता तो अहंकार से फूल उठता परन्तु श्री गुरुजी ने लोगों से कहा कि वे अपने ही लोगों पर क्रोध न करें। श्री गुरुजी के मन में विभाजन की पीड़ा थी, अपने भाषणों में वे उसकी आलोचना भी करते थे, फिर भी वे लोगों को संतुलन न खोने का परामर्श देते थे।

''संघ पर लगाई गई पाबन्दी हटाने के विषय में उन्होंने सरकार का कड़े शब्दों मे निषेध किया। श्री गुरुजी क्रोध का शमन करने वाली मधुर भाषा नहीं जानते थे, ऐसा नहीं था। संघ की प्रतिष्ठा रखने के लिए उन्होंने उस समय अत्यन्त कड़ा रुख अपनाया था।

देश भ्रमण

''प्रतिबन्ध काल और कैन्सर के आपरेशन के बाद का 3-4 मास का समय छोड़ दें तो लगभग 32 वर्ष लगातार, प्रतिवर्ष एक बार संघ शिक्षा वर्ग के निमित्त और दूसरी बार छोटे या व्यापक दौरे के निमित्त वे सम्पूर्ण देश का दौरा करते रहे। उनका अन्तिम प्रवास मार्च (1973) के मध्य में समाप्त हुआ और उसके ढाई महीने बाद उनकी मृत्यु हुई। उन जैसा अपने देश का इतना विस्तृत दौरा विश्व के किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया होगा। इस दौरे में किसी न किसी व्यक्ति के घर में वे ठहरा करते थे तथा उस घर के सभी व्यक्तियों को अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से आकर्षित कर लेते थे। इस प्रकार उनका सम्बन्ध लाखों परिवारों के छोटे-बड़े व्यक्तियों से आया तथा वे श्री गुरुजी को अपने परिवार का ही एक निकट व्यक्ति मानने लगे थे। वे उनके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी रखते थे और दुबारा भेंट होने पर,

प्रत्येक के विषय मे नाम लेकर जानकारी प्राप्त करते थे। उनकी मृत्यु के बाद जो शोक संवेदना-पत्र यहां आए हैं, उनमें कइयों ने लिखा है कि हम अनाथ हो गए हैं।''[1]

सच्चा एवं सही मार्गदर्शन

चतुर्थ सरसंघचालक प्रो. राजेन्द्र सिंह जी (श्री रज्जू भय्या) श्री गुरुजी से प्रथम भेंट के बारे में लिखते हैं, ''सन 1943 में कुछ अधिक सीखने के लिए मैं वाराणसी में लगे हुए उस वर्ष के संघ-शिक्षा शिविर मे गया। उस शिविर में ही श्री गुरुजी से प्रथम भेंट हुई। मैने उनका भाषण 'श्री शिवाजी महाराज का जयसिंह को पत्र' विषय पर सुना। पूरे अढाई घण्टे मैं मन्त्रमुग्ध सा बैठा रहा और ऐसा लगा कि आज सच्चा और सही मार्गदर्शक मिल गया है।''[2]

प्रेरक दिशादर्शन

अपने एक संस्मरण में श्री हो. वे. शेषाद्रि लिखते हैं, ''दिनांक 29 अक्तूबर, 1953 को पहली बार श्री गुरुजी उडुपी (कर्नाटक) आए थे। वहां के सुप्रसिद्ध श्रीकृष्ण मन्दिर में मठाधिपतियों ने उनका यथोचित, भावपूर्ण, भव्य स्वागत किया। श्री गुरुजी ने भी मंदिर की गतिविधियों की जानकारी ली और वहां के विद्यार्थियों को संस्कृति और योगासन की शिक्षा देने का सुझाव दिया। मंदिर मे भगवान् के दर्शन करके श्री गुरुजी वापस लौटे।

''मंदिर में अष्ट मठाधिपतियों की व्यवस्था है। प्रत्येक मठाधिपति को बारी-बारी से दो वर्ष पूजा करने का अधिकार मिलता है। उस समय पेजावर मठाधीश श्री विश्वेशतीर्थ पीठाधीश पूजा-अधिकारी थे। उनकी आयु केवल 29 वर्ष की थी। बाद में एकान्त में श्री पेजावर स्वामी जी ने श्री गुरुजी से कहा, ''मैं धर्मप्रचार अधिक से अधिक कर सकूं, इस विषय में मुझे आप सुझाव दें।

''श्री गुरुजी ने कहा- 'अपने शिष्यों को अपनी पीठ के तत्त्वज्ञान का शिक्षा-संस्कार दिया जाय। परन्तु सार्वजनिक रूप में हिन्दूधर्म के व्यापक विचारों का प्रचार करना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। अपने धर्म के सर्वसाधारण सिद्धान्तों का हिन्दुओं के अलावा ईसाइयों में भी आप प्रचार

१. हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीतिऋ बालासाहब देवरसऋ जागृति प्रकाशन, नोएडा (उ.प्र.)ऋ पृष्ठ १७-२०.

२. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-२ऋ राधेश्याम बंकाऋ लोकहित प्रकाशन, लखनऊऋ पृष्ठ-१६७.

कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंस जिस ढंग की विशिष्ट शैली से अपने विचारों का प्रतिपादन किया करते थे, उस प्रकार की शैली अपनाने से ईसाइयों के मन में विरोधी भाव उत्पन्न नहीं होगा और हम लोग उन्हें क्रमशः अपने में ला सकेंगे।'

''स्वामी जी के लिए यह प्रसंग इतना प्रेरक था कि तब से स्वामी जी धर्म के प्रचार-विस्तार-कार्य में लगातार प्रयत्नशील हैं और हिन्दू समाज की एकात्मता के कार्य में वे आज अत्यन्त प्रभावशाली हैं।''[1]

स्वभाषा का आग्रहपूर्वक उपयोग करें

श्री गुरुजी के निजी सचिव एवं पूर्व अखिल भारतीय प्रचारक प्रमुख डा. आबाजी थत्ते अपने एक संस्मरण में लिखते हैं, ''मदुराई (तमिलनाडु) में हुई प्रतिष्ठित सज्जनों की बैठक में एक वकील महोदय ने कहा -'हिन्दी का उपयोग करने से तमिल भाषा की हानि होगी। उसका विकास नहीं होगा और तमिल का महत्व भी कम होगा।' इस बात को सुनने पर श्री गुरुजी बोले - 'ऐसा होने का तो कोई कारण नहीं, परन्तु यदि हिन्दी के उपयोग का आग्रह न रहा तब तो आप पर अंग्रेज़ी सवार होगी।' वकील महोदय इससे सहमत नहीं हो पाये। कुछ ही समय पश्चात् श्री गुरुजी ने कहा 'क्या आपकी कचहरी (कोर्ट) में तमिल भाषा में कामकाज चलाना सम्भव हो सकता है?' वकील महाशय के 'हां' कहने पर श्री गुरुजी ने पूछा - ''कितने वकील तमिल भाषा में काम करते हैं?' 'एक भी नहीं।' यह उत्तर सुनकर श्री गुरुजी ने कहा- 'तमिल के तो आप स्वयं ही शत्रु हैं। हिन्दी भाषा तमिल की शत्रु नहीं है।''[2]

विचार शून्य मस्तिष्क- अनुपम अभिव्यक्ति

दिनांक 14 अगस्त 1972 को सौभाग्यवश श्री गुरुजी से एकान्त में वार्तालाप करने का सुअवसर वर्तमान सरसंघचालक श्री कुप्.सी.सुदर्शन जी को मिला था। सम्बन्धित वार्तालाप निम्नांकित है:-

श्री सुदर्शन जी - श्री लेले ने श्री अरविन्द घोष को जब योग की दीक्षा दी थी, तब उन्हें बताया गया था कि वे जब भाषण देने के लिए खड़े हों, तब अपने मस्तिष्क को सब प्रकार के विचारों से मुक्त कर लें। उसके बाद अन्तःकरण में जो विचार उठें, उन्हें ही बोलना प्रारम्भ कर दें। वही

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-२ऋ पृष्ठ १००-०२.

२. अविस्मरणीय श्री गुरुजीऋ श्री कौशलेन्द्रऋ लोकहित प्रकाशन, लखनऊऋ पृष्ठ १२६-३०.

ईश्वरीय वाणी होगी।

श्री गुरुजी – मस्तिष्क को विचारों से शून्य कर लेने के पश्चात् जो कुछ शेष रहता है, वह परमात्मा ही है और इसीलिए उस अवस्था में जो विचार आयेंगे, वे उसकी ही प्रेरणा से होंगे।

अरविन्दाश्रम की श्री मां से शब्दातीत वार्तालाप

श्री सुदर्शन जी – क्या श्री मां को सिद्धि प्राप्त हो गई है? (अब श्री मां का शरीर नहीं है)

श्री गुरुजी – हां, यदि महर्षि अरविन्द पर विश्वास है तो उन्हें सिद्धि अवश्य प्राप्त है। महर्षि ने तो उनके बारे में बड़ी श्रेष्ठ भावना प्रकट की है। अब श्री मां की आयु 96 वर्ष की है। शरीर अत्यन्त कृश हो गया है किन्तु मुखमण्डल पर अपूर्व तेज है। देखकर मन को बड़ी प्रसन्नता होती है। आश्रम की प्रत्येक गतिविधि पर उनका नियन्त्रण है।

श्री सुदर्शन जी –आपकी तो उनसे भेंट हुई थी?

श्री गुरुजी – हां, मैं उनसे मिलने गया था।

श्री सुदर्शन जी – क्या बातचीत हुई?

श्री गुरुजी – प्रकट बातचीत कुछ नहीं हुई। मुझे लगा कि बातचीत न करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। हम दोनों एक दूसरे की ओर अनिमेष देखते रहे, काफी देर तक देखते रहे।

श्री सुदर्शन जी – आपको ऐसा क्यों लगा कि न बोलना ही कल्याणकारी है?

श्री गुरुजी – अन्दर से ऐसा विचार अपने आप आया कि न बोलना अधिक ठीक रहेगा।

श्री सुदर्शन जी – अधिक ठीक रहेगा, इसका क्या अर्थ है?

श्री गुरुजी – अरे भाई, जब प्रत्यक्ष बातचीत होती है, तब अनेक व्यवहारिक बातें बीच में आ जाती हैं और ज़्यादा बात नहीं हो पाती। वैसे हम लोगों ने काफी बातचीत कर ली।[1]

तीव्र स्मरण शक्ति

दिनांक 8.6.2003 को संघ शिक्षा वर्ग, तृतीय वर्ष के, 'श्री गुरुजी का विचार विश्व' नामक विषय पर, अपने बौद्धिक वर्ग में श्री सुदर्शन जी ने बताया कि ''श्री गुरुजी की तीव्र स्मरण शक्ति के बारे में मुझे जिस घटना ने सर्वाधिक प्रभावित किया वह केरल प्रान्त की है। इस प्रान्त की पट्टाम्बी

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-१ऋ पृष्ठ ३८-३९.

तहसील के कार्यवाह डा. ए.के.वारियर अल्पाहार लेकर श्री गुरुजी को षोरनूर रेलवे स्टेशन पर मिलने हेतु गए। एक अधिवक्ता स्वयंसेवक (अपनी शिशु सुपुत्री 'वत्सला' सहित) भी उनके साथ थे। जब डा. वारियर ने श्री गुरुजी को अल्पाहार का सामान दिया तो वत्सला को उनके पिताजी कह रहे थे – 'चुप रह –चुप रह'। वह श्री गुरुजी की दाढ़ी व मूंछें देखकर बार-बार पूछ रही थी कि 'ये खाएंगे कहां से?' कालान्तर में वत्सला का विवाह विभाग प्रचारक पी. माधवन जी के भाई पी. गोपीनाथ जी से हो गया। पी. माधवन जी के पिता जी का देहावसान हो जाने पर श्री गुरुजी अपने कालीकट प्रवास के समय उनके घर गए। वत्सला जलपान लेकर जब श्री गुरुजी को देने आई तो वे उसे देखकर बोले, ''अब तो तुझे पता चल गया न कि मैं कहां से खाता हूं?'' वत्सला तुरन्त शरमा कर अन्दर भाग गई। घटना की पूरी जानकारी मिलने पर वहां उपस्थित बन्धु खूब हंसे। लगभग 10-12 वर्ष बाद भी श्री गुरुजी को षोरनूर रेलवे स्टेशन का प्रसंग स्मरण रहा।''[1]

निर्धारित कार्यक्रम के प्रति आग्रह

भूतपूर्व सरकार्यवाह एवं तत्कालीन पंजाब प्रांत प्रचारक श्री माधवराव मूले सन 1947 के अपने एक संस्मरण में लिखते हैं, ''सितम्बर मास की बात है। भारत का विभाजन हुआ ही था। सिन्ध और पंजाब के हिन्दुओं पर भीषण विपत्तियां आईं थीं। विस्थापित चले आ रहे थे। उनकी दुर्दशा सुनकर श्री गुरुजी पंजाब के दौरे पर आये। ज़ोरदार वर्षा हो रही थी। नदी-नाले उफन रहे थे। प्रवास के क्रम में श्री गुरुजी को जालन्धर का कार्यक्रम सम्पन्न कर लुधियाना जाना था। मार्ग पर पानी भरा होने के कारण, कार द्वारा वहां पहुंचना सम्भव नहीं था किन्तु श्री गुरुजी का आग्रह था कि निर्धारित कार्यक्रमानुसार लुधियाना पहुंचना ही चाहिए।

''रेलवे वालों से पूछताछ की तो पता लगा कि एक ट्राली का प्रबन्ध हो जाएगा। श्री गुरुजी के साथ मैं और श्री धर्मवीर जी उस ट्राली पर बैठे। ट्राली ढकेलने वाले बड़ी फुर्ती और सावधानी से लुधियाना की ओर रेल पटरियों पर दौड़ने लगे। फिर भी हम ट्राली से चहेड़ू तक पहुंचे। चहेड़ू में एक बड़ा नाला था, जो लबालब भरा था और पानी बहुत तेज़ गति से बह रहा था। बाढ़ के पानी ने चहेड़ू के रेलवे-पुल का खम्भा बहा दिया था।

1. ध्वनि मुद्रिका से उद्धृत.

पुल का ऊपरी भाग (ढांचा) तो ज्यों-का-त्यों खड़ा था, किन्तु रेल-पटरी के नीचे की भूमि बह जाने से रेल-पटरी स्लीपरों के आधार से झूलते पुल की तरह लटक रही थी। ट्राली वाले ने आगे जाना अस्वीकार कर दिया।

''हम सोचने लगे कि अब क्या किया जाए। कुछ उपाय सूझ नहीं रहा था। हम लोग सोच विचार में उलझे हुए थे कि इतने में हमारे देखते ही देखते श्री गुरुजी ने झूलती हुई उस रेल पटरी और स्लीपरों पर अपने कदम आगे बढ़ा दिए। वे फुर्ती से आगे बढ़ने लगे। हमारे दिल धड़कने लगे। हमें भी साहस करके पीछे चल देना पड़ा। झूलती हुई रेल-पटरियों के दो-तीन फुट नीचे से ही पानी का प्रवाह तेज़ गति से बह रहा था। वह दृश्य बड़ा ही भयावह था, फिर भी श्री गुरुजी ने पुल पार कर लिया और हम भी उनके पीछे पार हो गए।

''हम लोग चहेड़ू रेलवे स्टेशन पर पहुंचे। रेलवे के लोगों को पुल पार करने की सारी गाथा सुनाई। वहां एक इंजन खड़ा था जो गुराया स्टेशन तक जानेवाला था। इंजन में बैठकर श्री गुरुजी और हम लोग गुराया पहुंचे। भाग्य की बात, गुराया में एक मालगाड़ी लुधियाना जाने के लिए तैयार खड़ी थी। गार्ड के डिब्बे में बैठकर हम तीन घण्टे में लुधियाना पहुंच गए। इस प्रकार प्रातःकाल सात बजे चल कर सायंकाल पांच बजे हम लोग जालन्धर से लुधियाना (दूरी 57 किलोमीटर) पहुंचे और वहां का कार्यक्रम ठीक प्रकार से सम्पन्न हो पाया। ऐसे कठोर निश्चय के थे हमारे श्री गुरुजी।''[1]

शरीर पर नियन्त्रण

संघ के प्रथम प्रचारक श्री बाबासाहब आपटे, श्री गुरुजी के बारे में लिखते हैं, ''सन 43 या 44 के आसपास की बात है। श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में अत्यन्त कष्टदायी पीड़ा होने लगी। एलोपैथ डाक्टरों ने सलाह दी कि दर्द का कारण दांत हैं, अतः उन्हें उखड़वा देना चाहिये। होम्योपैथ्स ने कहा कि दांत उखड़वाने की आवश्यकता नहीं। इसी झंझट में दो वर्ष व्यतीत हो गए और श्री गुरुजी को उसी प्रकार कष्ट सहते रहना पड़ा।

''अन्ततः दांत निकलवा देना ही उचित समझा गया। इसके लिए वे काशी गए। डाक्टरों ने इन्जेक्शन लगाकर मसूड़ों को सुन्न करने का प्रस्ताव रखा किन्तु श्री गुरुजी ने कहा - सुन्न करने के लिए इन्जेक्शन लगाने की ज़रूरत नहीं। उन्होंने बिना इन्जेक्शन लगवाये ही समस्त दांत उखड़वाए।

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-१ऋ पृष्ठ ६०-६१.

कल्पना कीजिए, कितनी वेदना हुई होगी, परन्तु उनके मुख पर किंचित भी विषाद की रेखा दिखाई नहीं पड़ी। इतना ही नहीं जबलपुर के समीप गाड़खारा शिविर में वे पधारे और सबकी आशा के विपरीत दो घण्टे तक लगातार भाषण दिया।''[1]

गीता के प्रत्यक्ष आचरण का समक्ष दर्शन

भूतपूर्व सह सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस जी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है, ''श्री गुरुजी के मुम्बई में कर्करोग के दिनांक 1.7.1970 के आपरेशन के 24 घण्टे बाद ही हम उन्हें मिलने गए। ओह! कितना आश्चर्य! सुहास्य वदन से उन्होंने हमारा स्वागत किया। चेहरे पर सदैव के समान स्मित, सदैव के समान शान्ति। डॉक्टरों ने केवल छाती के ऊपर की गांठ ही नहीं अपितु सावधानी और भविष्य का विचार करके बांई कांख में से भी गांठें निकाल दीं। इतना बड़ा आपरेशन, शरीर पर इतनी बड़ी पट्टियां परन्तु चेहरे पर कष्ट का कोई भाव नहीं। समक्ष दर्शन हो रहा था गीता के प्रत्यक्ष आचरण का 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि।'

''दि. 10 जुलाई से केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल की बैठक मुम्बई में ही आरम्भ हुई। सरकार्यवाह के द्वारा प्रतिदिन जाकर बैठक का वृत्त उन्हें (श्री गुरुजी को) देने का काम चलता था। दि. 12 जुलाई को बैठक का अन्तिम दिन था। कितना आश्चर्य! श्री गुरुजी को अस्पताल से कुछ समय के लिए अवकाश मिला, जिससे वे समारोप में उपस्थित हो सके और हमारे साथ प्रार्थना कर सके। तदुपरान्त सभी के साथ भोजन भी।''[2]

भारत की एकात्मता के प्रकाशस्तम्भ

मासिक पत्रिका 'जाह्नवी' के श्री गुरुजी श्रद्धांजलि अंक (अगस्त-सितम्बर, 1973) के 'वह प्रकाश' नामक लेख में श्री हो.वे. शेषाद्रि ने लिखा है, ''हम श्री गुरुजी के सम्बन्ध में जितना अधिक सोचते हैं, उतना अधिक स्पष्ट रूप से हमारे अन्तःचक्षुओं के सम्मुख एक महोज्ज्वल राष्ट्रीय व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत होता है। वह ऐसा राष्ट्रस्वरूपी निर्मल उज्ज्वल चित्र है जिस पर निजी-व्यक्तिगत किसी इच्छा-अनिच्छा, भावना-विकारों की छाया तक नहीं पड़ती। स्वामी रामतीर्थ ने एक परिपूर्ण देशभक्त का वर्णन करते हुए कहा था- 'तुम देशभक्त बनना चाहते हो? तो

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-१ऋ पृष्ठ-७७.
२. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग भाग-२ऋ पृष्ठ २५६-५७.

अपने देश व जनता के साथ प्रेम से समरस बन जाओ। तुम्हारे एवं तुम्हारी जनता के बीच तुम्हारे व्यक्तित्व की अलग छाया भी न पड़े।'

''श्री गुरुजी का जीवन मानो इस आदर्श का रक्त व मांस से भरा सजीव हृदय था। किसी भी राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक समस्या ने देश को घेरा हो, उसके मध्य भारत की एकात्मता के प्रकाशस्तम्भ के रूप में श्री गुरुजी की वाणी मुखरित होती थी।''[1]

ध्येय के साथ तादात्म्य

पं. दीनदयाल उपाध्याय एक संस्मरण में लिखते हैं, ''हम लोग समाचार पत्र पढ़ रहे थे। आदि से अन्त तक करीब-करीब सभी पढ़ डाला। इतने में श्री गुरुजी ने कमरे में प्रवेश किया और सहज भाव से समाचार पत्र उठाकर इधर-उधर निगाह डाली। सुर्खियां देखीं, पन्ने उलटे और समाचार पत्र रख दिया। बातचीत शुरू हो गई। बातचीत के दौरान संघ सम्बन्धी समाचार का ज़िक्र आ गया, जो उसी समाचार पत्र में छपा था। मैने पूछा -'परन्तु पत्र में वह समाचार है कहां?' श्री गुरुजी ने कहा- 'इसी अखबार में तो है।'

''मैने पूरा अखबार पढ़ा था। मुझे वह समाचार कहीं नहीं दिखा। अखबार लेकर फिर पन्ने उलटे, पर वहां संघ का कहीं भी नाम नहीं मिला। श्री गुरुजी ने मेरी हैरानी देखकर अखबार हाथ में लिया और बताया - 'यह है वह समाचार।' बाज़ार-भावों के पन्ने पर एक ओर वह छोटा-सा समाचार छपा था। मैं मन ही मन सोचने लगा-'कहां छाप दिया है? हम लोग क्या व्यापारी हैं, जो इस पन्ने पर निगाह जाती?' दूसरे ही क्षण विचार आया -'श्री गुरुजी भी तो व्यापारी नहीं। वे तो कोसों दूर हैं मोल-तोल और भाव-ताव से। फिर उनकी निगाह कैसे गयी? और फिर अखबार भी मेरी तरह पूरा नहीं पढ़ा। सुर्खियां ही इतनी थी कि जितनी देर वह पत्र उनके हाथ में रहा, पूरी नहीं पढ़ी जा सकती थीं।' मैने अपनी शंका रखी भी नहीं, पर शायद वे समझ गए। उन्होंने इतना ही कहा- 'भीड़ में भी मां को अपना बच्चा दीख जाता है और कोलाहल में भी अपने आत्मीय जनों के शब्द साफ समझ में आते हैं। मेरी समझ में आ गया। ध्येय के साथ तादात्म्य है जिसके कारण वे उस समाचार को देख सके।''[2]

१. जाह्नवी मासिक, नई दिल्लीऋ श्री गुरुजी श्रद्धांजलि अंक, अगस्त-सितम्बर १९७३ऋ पृष्ठ १२८-१२९.

२. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग, भाग-१ऋ पृष्ठ ७४-७५.

मैं नहीं, तू ही

एक अन्य संस्मरण में पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने लिखा है, ''सबके प्रति आत्मीयता ही श्री गुरुजी की महानता और उनके प्रति व्यापक श्रद्धा का कारण है। उनकी महानता इसमें है कि वे इस आत्मीयता को लेकर चल सके हैं। एक बार 'धर्मयुग' साप्ताहिक ने भारत के अनेक महापुरुषों के जीवन के ध्येयवाक्य छापे थे। छपे ध्येय वाक्यों मे श्री गुरुजी का ध्येयवाक्य सबसे छोटा किन्तु बोधप्रद था। 'मैं नहीं, तू ही।'

''इन चार शब्दों में श्री गुरुजी का सम्पूर्ण जीवन समाया हुआ है। यह 'तू' कौन है? संघ, समाज, ईश्वर, वे इन तीनों को एकरूप करके चलते थे। तीनों की सेवा में विरोध नहीं, विसंगति नहीं। 'एकहि साधे सब सधे' के अनुसार वे संघ की साधना करके सब की साधना में लगे रहे हैं और उनका जीवन ही साधना बन गया था।''[1]

पत्र-व्यवहार

दिनांक 17 जून 1973 के श्रद्धांजलि भाषण में श्री बालासाहब देवरस कहते हैं, ''जैसा श्री गुरुजी का प्रत्यक्ष सम्पर्क अद्‌भुत था, वैसा उनका पत्र व्यवहार भी था। जब पूजनीय डाक्टर जी पत्र लिखते थे तब पत्र के एक-एक शब्द पर वे हम लोगों के साथ चर्चा करते थे। उस समय देश की परिस्थिति और संघ कार्य का फैलाव अधिक पत्र लिखने वाला नहीं था, परन्तु श्री गुरुजी के कार्यकाल में पत्र लेखन के क्षेत्र की कल्पना करते ही किसी एक व्यक्ति द्वारा यह होना असम्भव लगता है।

अपने हाथ से पत्र लेखन

''श्री गुरुजी स्वयं पत्र लिखते थे। आस-पास चारों ओर मिलने आए हुए स्वयंसेवक बैठे हुए हैं, वार्तालाप चल रहा है, हास्य विनोद हो रहा है और उसी बीच श्री गुरुजी पत्र लिखते जा रहे हैं। यह दृश्य हम सब के लिए परिचित था। प्रतिदिन यदि पांच पत्र लिखने का भी हिसाब करें तो वर्ष में 1500 से 2000 पत्र वे लिखते होंगे और इस प्रकार से 33 वर्षों की पत्र संख्या का आकलन कर आश्चर्यचकित होना पड़ेगा। पत्र लिखने का भी यह एक 'विश्व विक्रम' (World-Record) हुआ, कहना पड़ेगा।''[2]

श्री बालासाहब देवरस के उपरोक्त कथन को उद्धृत करते हुए संघ

१. श्री गुरुजी जीवन प्रसंग, भाग-१ऋ पृष्ठ-६९.

२. हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीतिऋ बालासाहब देवरसऋ पृष्ठ-२०.

शिक्षा वर्ग, तृतीय वर्ष में दिनांक 5-6-1997 को 'श्री गुरुजी का पत्र व्यवहार' नामक विषय पर व्यक्त विचारों में श्री दत्तोपंत ठेंगडी ने कहा, ''महात्मा गांधी जी का पत्र व्यवहार भी काफी बड़ा था परन्तु उनमें टंकलिखित, चक्रमुद्रांकित एवं दूसरों को बताकर लिखवाए गए पत्र भी रहते थे। श्री गुरुजी प्रत्येक पत्र अपने हाथ से लिखते थे। श्री गुरुजी को एक बार जो लिखा गया, उसे काटने की आवश्यकता नहीं हुई। एक शब्द के स्थान पर दूसरा अच्छा शब्द रखने की इच्छा नहीं हुई। वाक्य रचना विषयानुकूल छोटी अथवा बड़ी रहती थी। बड़े वाक्यों के कारण अर्थहानि या अर्थविपर्यास कभी नहीं हुआ। पत्रोत्तर में, भेजे गए पत्र में लिखे गए हर छोटे बड़े मुद्दे का उत्तर रहता था। जो लिखा जाता था वह असंदिग्ध होता था, उसमें से दो अर्थ निकलने की सम्भावना नहीं रहती थी।

मित्र-भाव से उत्तर

''श्री गुरुजी के प्रवास में रहने के कारण सामान्यत: अप्रैल मास में वे शेष अनुत्तरित पत्रों के उत्तर लिखते थे। उत्तर लिखते समय उन्हें कई मास पूर्व आए हुए पत्रों के विषय (contents) तथा मास ध्यान रहता था। कभी-कभी तिथि उन्हें पूछनी अथवा देखनी पड़ती थी। कुछ पत्रों में श्री गुरुजी को मार्गदर्शन हेतु भी प्रार्थना की होती थी, परन्तु उत्तर देते समय वह मार्गदर्शक अथवा उपदेशक भाव से नहीं अपितु मित्रभाव से ही उत्तर लिखते थे। 'दीन दु:खियों के लिए थी द्रवित करुणाधार मन में' - गीत की पंक्ति के अनुरूप दु:ख के प्रसंगों पर उनके पत्रोत्तर में मातृहृदय का प्रकटीकरण होता था।

शान्त मन से उत्तर देने में सक्षम

''कुछ लोग श्री गुरुजी का मार्गदर्शन करने हेतु पत्र लिखते थे। ज्ञान वृद्धि हुई है, सहयोगी कार्यकर्ताओं से आप के मूल्यवान सुझावों की चर्चा करूंगा आदि वाक्य प्रयोग करते हुए वे कृतज्ञता प्रकट करते हुए ऐसे लोगों को उत्तर लिखते थे। कुछ पत्र उद्धत भाषा में आते थे। 'वाणी से, लेखन से नए व्यक्ति को यदि जोड़ नहीं सकते तो कम से कम तोड़ना नहीं चाहिए', 'आज नहीं तो कल वे साथ आ सकते हैं,' यह सोच कर उन्हे सौम्य भाषा में उत्तर दिया जाता था। आरोप लगाने वाले (offending), गधे को भी बुखार आ जावे - ऐसी भाषा में भी कुछ पत्र आते थे। पश्चिम में जिन का पत्रोत्तर देने में लोहा माना जाता था ऐसे श्री अब्राहिम लिंकन भी इस प्रकार

के पत्रों को प्राप्त कर उद्वेलित हो जाते थे तथा उत्तर देने हेतु उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ती थी परन्तु श्री गुरुजी शान्त मन रखकर स्वाभाविक रूप से उत्तर देने में सक्षम थे।

अध्यात्म सम्बन्धी जिज्ञासा-समाधान

''जो नीति जीवन में निर्धारित की थी, श्री गुरुजी के पत्र लेखन में भी उस का प्रतिबिम्ब प्रकट होता था। वे प्रात: एवं सायं अपने गुरु स्वामी अखण्डानन्द जी के चित्र के सामने बैठकर साधना करते थे परन्तु सार्वजनिक भाषण अथवा वैयक्तिक (प्राइवेट) बैठक में इस सम्बन्ध में चर्चा नहीं करते थे। अध्यात्म सम्बन्धी प्रश्नों की जिज्ञासा, इस विषय के जानकार लोगों से पूछने हेतु, वे सम्बन्धित पत्रों के उत्तर में कहते थे। श्री गुरुजी की प्रतिभा विविधांगी, सर्वांगीण थी परन्तु वे विद्वता का प्रकटीकरण कभी नहीं करते थे। सरसंघचालक पद की मर्यादाएं, सीमाएं, गरिमा उन्हें हमेशा ध्यान में रहती थी। विद्वानों को वे इस ढंग से उत्तर देते थे कि, उत्तर को लम्बा खींचने की इच्छा न जागृत हो।''[1]

बहुमुखी प्रतिभा

श्री गुरुजी शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकार थे। घोष (बैंड) विभाग के वाद्यवृंद के लिए शास्त्रीय संगीत की रागदारी पर जब विभिन्न रचनाओं का सृजन हुआ तब श्री गुरुजी ने बहुत बारीकी से जो सुझाव दिए उन्हें सुनकर तो सभी दंग रह गए थे। विभिन्न शास्त्रीय शाखाओं के बारे में उनका ज्ञान कितना अथाह और अद्यावधिक था यह दर्शानेवाला श्री रज्जू भैया द्वारा बताया गया निम्नलिखित संस्मरण बहुत उद्बोधक है -

''एक बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में श्री गुरुजी के एक कार्यक्रम के लिए विभिन्न ज्ञान शाखाओं के विद्वान प्राध्यापकों की निमन्त्रित किया गया था। एक-एक टेबिल को घेरकर एक-एक फेकल्टी के प्राध्यापक बैठकर थोड़ा समय श्री गुरुजी से बातचीत करें, ऐसी योजना थी। उसके अनुसार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उसके पश्चात् श्री गुरुजी ने एम.एस.सी. उपाधि किस ज्ञान शाखा में प्राप्त की होगी, इस विषय में सब प्राध्यापकों में चर्चा शुरु हो गई। प्रत्येक ज्ञान शाखा के प्राध्यापक कहने लगे कि वे उनकी ही 'फेकल्टी' के होने चाहियें क्योंकि चर्चा में प्रत्येक शास्त्र में श्री गुरुजी की अभिज्ञता दिखाई दी थी। बिल्कुल आधुनिकतम ग्रन्थ और

1. ध्वनि मुद्रिका से उद्धृत.

सिद्धान्त के सम्बन्ध में उन्होंने चर्चा की थी। अंत में जब उन्हें अधिकृत रूप से बताया गया कि प्राणिशास्त्र उनका विषय था तब सबको बहुत अचम्भा हुआ। इसी तरह का अनुभव कितने ही विषयों के सम्बन्ध में उनसे बातचीत करते समय अनेकों को आता था। फिर चर्चा चिकित्सा शास्त्र की हो, वंशशास्त्र की हो या मन्त्रशास्त्र की।''[1]

प्रसिद्धिपराङ्मुख व्यक्तित्व

दिल्ली के रामलीला मैदान में श्री गुरुजी के इक्यावनवें वर्ष के प्रवेश के समय (दि. 8-4-1956) एक समारोह आयोजित किया गया था। प्रेस तथा दूसरे फोटोग्राफरों की एक पूरी फौज उनके फोटो लेने को उत्सुक थी, किन्तु श्री गुरुजी पूरे कार्यक्रम में मुंह को ढक कर बैठे रह ताकि कोई उनका चित्र न ले सके।

दिनांक 2-4-1973 को लिखे तीन पत्रों में से दूसरे पत्र में श्री गुरुजी ने लिखा, ''अपना कार्य राष्ट्रपूजक है। ध्येयपूजक है- व्यक्तिपूजा को उसमे कोई स्थान नहीं है। वैसे ही संघ का ध्येय और उस ध्येय का दर्शन करानेवाले संघ-निर्माता इनके अतिरिक्त और किसी व्यक्ति का, व्यक्ति इस नाते से महत्त्व बढ़ाना उसके स्मारक बनाना आवश्यक नहीं है। मैंने तो ब्रह्म कपाल में अपना स्वत: का भी श्राद्ध कर रखा है, जिसके बाद में किसी पर श्राद्धादि का बोझ न रहे।''[2]

मां की सेवा का प्रचार क्यों?

सन 1972 का मई मास। मध्य भारत प्रान्त का संघ शिक्षा वर्ग ग्वालियर में चल रहा था। श्री गुरुजी को 'राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर' नाम की पुस्तक भेंट की गई। भारत पाक युद्ध के समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों की सेवाओं की जानकारी उक्त पुस्तक में दी गई थी। पुस्तक के पन्ने उलटकर श्री गुरुजी ने कहा, ''इस प्रकार की पुस्तक को मैं स्वीकार नही कर सकता। यदि कोई पुत्र अपनी मां की सेवा करने का समाचार प्रकाशित करे, तो क्या उसे योग्य माना जाना चाहिए? स्वयंसेवकों ने अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य को पूर्ण किया है। फिर उसका प्रचार किस लिए?''[3]

नाम सम्मिलित न करने का अनुरोध

'टाईम्स आफ इण्डिया' वाले चाहते थे कि वे श्री गुरुजी के बारे में

१. नवयुग प्रवर्तक श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ३१४-१५.

२. आरती आलोक कीऋ पृष्ठ-३१६.

३. प्रेरणा के अमर स्वरऋ पृष्ठ-३६.

अपनी इयर बुक में लिखें। इस पर श्री गुरुजी ने उनको लिखा, *''I am not interested in having myself included in any list of outstanding personalities in the country for the simple reason that I do not belong to that category. Allow me, therefore to request you to drop my name and any reference to my 'biography'. I hope you will do me this favour."[1]

निरहंकारिता

ऊंचा व्यक्तित्व होने के बावजूद भी श्री गुरुजी ने कभी अपने को बड़ा नहीं माना। अहंकार को अपने समीप उन्होंने आने नहीं दिया। सरसंघचालक बनने के बाद अपने प्रथम प्रवास से ही श्री गुरुजी कहते रहे, ''मैं तो संघ में बाद में आया। परन्तु परम पूजनीय डाक्टरजी कैसा सोचते थे और कैसा व्यवहार करते थे, श्री बालासाहब देवरस की ओर देखने पर ध्यान में आ जाएगा।''[2]

श्री शंकराचार्य पद के लिए मैं योग्य नहीं हूं

श्री महाबल भ, मुम्बई (श्री जगद्गुरु श्री शंकराचार्य महाराज, श्री शारदा पीठम मुम्बई) को दिनांक 11-4-1960 के पत्र में श्री गुरुजी लिखते हैं, ''ब्रह्मीभूत परमश्रद्धेय श्री भारती कृष्ण तीर्थ की अन्तिम इच्छा के सम्बन्ध में प्रकाशित पत्रक में उत्तराधिकारी की नामावली में अपना भी नाम मैंने देखा।

''उस पीठ पर आरूढ़ होने की इच्छा न कभी मेरे मन में निर्माण हुई और न है, यह सविनय सूचित करने को मैंने यह पत्र लिखा है। जगद्गुरु की पीठ पर आरूढ़ होने के लिए अत्यावश्यक पांडित्य, वैराग्य, तपश्चर्या आदि गुणों का मुझ में अभाव है। ऐसे गुण समुच्चय से सम्पन्न कोई महापुरुष ही उस अखिल विश्व में श्रद्धेय जगद्गुरु पीठ को सुशोभित करने योग्य होगा।''[3]

* अर्थात् ''देश के उच्च श्रेणी के विशिष्ट व्यक्तियों की सूची में मेरा नाम अंकित किया जाए, इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। कारण स्पष्ट है कि मैं उस श्रेणी की सूची के लिए योग्य नहीं हूँ। इसलिए आपसे विनम्र अनुरोध है कि मेरा नाम अथवा मेरे जीवन प्रसंग के संबंध में कोई भी सन्दर्भ उसमें न छापें। मुझे आशा ही नहीं विश्वास भी है कि इस संबंध में आपका अनुग्रह अवश्य मिलेगा।

१. प्रेरणा के अमर स्वरऋ पृष्ठ-४०.

२. प्रेरणा के अमर स्वरऋ पृष्ठ-४२.

३. पत्रारूप श्री गुरुजीऋ पृष्ठ ४७-४८.

भगीरथ तपश्चर्या

संघ शिक्षा वर्ग, तृतीय वर्ष में, दिनांक 5-6-2002 को प.पू. श्री गुरुजी के जीवन पर बोलते हुए, संघ के पूर्व प्रवक्ता श्री बाबूराव वैद्य कहते हैं, ''33 वर्षों तक श्री गुरुजी के मार्गदर्शन में संघ कार्य चला। बाहर से, अन्दर से कई भीषण संकट के प्रसंग आए। इन सभी संकटों को मात कर, संघ का आज का जो विशाल स्वरूप है, सम्पूर्ण जीवनव्यापी दर्शन है, हिन्दू समाज में जो एक नई चेतना का संचार हुआ हम देखते हैं, इसका श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को देना हो तो उसके अधिकारी श्री गुरुजी हैं।

''कपिल मुनि के शाप से दग्ध साठ हजार सगर पुत्रों के उद्धार के लिए, भगीरथ ने कठोर तपश्चर्या करके, स्वर्ग में बहने वाली गंगा को पृथ्वी पर लाया और भारत वर्ष को सुजल, सुफल बनाया। यह भगीरथ का अपने देश पर बहुत बड़ा उपकार है। वैसे ही प.पू. डाक्टरजी ने मोक्ष के रास्ते पर प्रस्तुत प.पू.श्री गुरुजी के जीवन प्रवाह को भारतीय जनता के कल्याण के लिए, धरातल पर लाकर हिन्दू समाज को संगठित और सशक्त बनाने के स्वयं द्वारा प्रारम्भ किए कार्य को सफलता की ओर बढ़ाया।

शान्ताकारं भुजगशयनम्

''मैं कभी-कभी अपने ही मन में पूजनीय डाक्टरजी एवं श्री गुरुजी की तुलना करता हूं। डाक्टर जी तो बचपन से ही सार्वजनिक जीवन से जुड़े हुए थे। श्री गुरुजी की सारी पूर्वपीठिका सार्वजनिक जीवन से अलिप्त थी। फिर भी राजनीतिक घटनाओं का उनका विश्लेषण, उनकी मीमांसा, सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित उनके निर्णय इतने अचूक रहते थे कि लोग दंग हुए रहते थे। इन विषयों का तो उनका कोई पूर्वाभ्यास नहीं था, फिर भी उनकी मीमांसा तलस्पर्शी और अचूक रहती थी। इस प्रकार की एक अलौकिकता एवं असामान्यता उनमें थी।

''हमने संकट के समय श्री गुरुजी को शान्त रहते हुए देखा है। आवश्यक होने पर वे उतने ही कठोर भी हो जाते थे। इतनी शान्ति, इतना संयम व इतनी कठोरता एक ही शरीर में कैसे समा जाती होगी, इसका आश्चर्य लगता था।

'शान्ताकारं भुजगशयनम्' (सांप के ऊपर शय्या है लेकिन आकृति बड़ी शान्त है) - स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध है। पुराणों में हमने विष्णु के बारे में ऐसा सुना है परन्तु श्री गुरुजी का इस प्रकार का आचरण उनके निकटस्थ

लोगों ने प्रत्यक्ष देखा है। श्री गुरुजी निर्भयता की साकार प्रतिमा थे। प्रतिबन्ध काल के समय का उनका पत्रव्यवहार इसका साक्षी है।

शक्ति का आधार अच्छी शाखा

''सन् 1950 में वे पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में आए। गाड़ी प्रात:काल रेलवे स्टेशन पर आती थी। प्रभात शाखा के स्वयंसेवक माला लेकर स्टेशन पर पहुंचे तो उन्होंने माला ग्रहण करने से इन्कार कर दिया और कहा- 'आप शाखा छोड़ कर क्यों आए हो? क्या आप मुझे नेता मानते हो?' वे बार-बार कहते थे कि 'मुझे अच्छी शाखा चाहिए। अच्छी शाखा देखता हूं तो मेरे शब्दों में शक्ति आ जाती है।'

''श्री गुरुजी ने अति विनम्र भाव से लिखा था-'मुझ से जाने या अनजाने में यदि किसी के हृदय को ठेस पहुंची हो, दु:ख हुआ हो तो मैं हाथ जोड़कर क्षमा मांगता हूं।' अपने भाव को अधिक स्पष्ट करने हेतु उन्होंने संत तुकाराम का निम्नांकित मराठी अभंग उद्धृत किया था-

शेवटची विनवणी। संतजनी परिसावी
विसर तो न पड़ावा। माझा देवा तुम्हासी।।
आता फार बोलो कायी। अवधे पायी विदित।
तुका म्हणे पड़तो पाया। करा छाया कृपेची।।

जिसका हिन्दी भावार्थ है :

अंतिम ये प्रार्थना, संतजन सुनें सभी।
विस्मरण न हो मेरा, कहें प्रभु से सभी।।
अधिक और क्या कहूं, विदित सभी श्रीचरणों में।
तुका कहे पैरों पड़ूँ। रहूँ सदा कृपा की छाँह में।।

सबसे बड़ा समाज

''संघ के दर्शन, चिन्तन व भूमिका के कारण सारे विश्व में उसकी धाक, सत्कार, सम्मान व आदर है। 'समाज बड़ा, बाकी सब उससे छोटे' - इस आधारभूत, नींव के स्तर की भूमिका को श्री गुरुजी ने अपने जीवनकाल में आग्रहपूर्वक प्रस्तुत किया। लोगों को वह हृदयंगम हो, इस प्रकार अपने जीवन की रचना की। फिर भी इतना बड़ा महान् कार्य करने के बाद जिनको अहंकार रंचमात्र भी स्पर्श नहीं कर सका, ऐसे महापुरुष श्री गुरुजी थे।''[1]

1. ध्वनिमुद्रिका से उद्धृत.